पार्श्वदास पदावली

सम्पादक एवं शोधकर्ता
डॉ० गंगाराम गर्ग एम ए , पी एच.डी
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, टोंक (राज०)

प्रस्तावना
डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल एम ए, पी एच डी शास्त्री

प्रकाशक
दिगम्बर जैन समाज
अमीरगंज टोंक

मुख्य प्राप्ति-स्थान—

१. साहित्य शोध विभाग,
महावीर भवन,
चौड़ा रास्ता, जयपुर।

२. भारती पुस्तक मन्दिर,
चौबुर्जा, भरतपुर।

३. पवन पुस्तक सदन,
अमीर गंज बाजार,
टोंक।

संस्करण प्रथम

भ_ुत पंचमी
जेष्ठ शुक्ला ५
शुक्रवार, १६ मई | १०००
सवत् २०२६
१९७२ | मूल्य—दस रुपये

मुद्रक
महेन्द्र प्रिन्टर्स
मनिहारो का रास्ता,
जयपुर।

समर्पण

जैन भक्तिकाव्य धारा के
समस्त ज्ञात-अज्ञात कवियो
को

सादर

आचार्यरत्न श्री १०८ श्री देशभूषणजी महाराज का

शुभाशीर्वाद

डॉ० गंगाराम गर्ग पिछले कई वर्षों से जैन साहित्य के अनुसंधान में रत हैं। कविवर पार्श्वदास तथा उनके साहित्य की खोज इनका महत्वपूर्ण प्रयास है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'पार्श्वदास पदावली' में पार्श्वदास के पदों के पाठ-सम्पादन के अतिरिक्त उनकी काव्य-गरिमा का निरूपण भी शोधपूर्ण ढंग से किया गया है।

दिगम्बर जैन समाज अमीरगंज, टोंक ने पार्श्वदास पदावली के प्रकाशन में रुचि प्रदर्शित कर शोधार्थी एवं भक्तजनों का हित किया है।

आशा है, जैन समाज एवं साहित्यानुरागियों द्वारा यह ग्रन्थ अवश्य समादृत होगा।

इत्याशीर्वाद :

—देशभूषण आचार्य
जयपुर

अपनी बात

हिन्दी का मध्ययुगीन भक्ति साहित्य अपनी विपुलता और व्यापकता की दृष्टि से गौरवपूर्ण स्थान रखता है। आराध्य के स्वरूप को प्रमुख मानकर भक्ति काव्य सगुणकाव्य एव निर्गुणकाव्य मे विभाजित किया गया है। इन दोनो काव्य-परम्पराओ के साथ-साथ मध्ययुग मे तीसरी काव्य परम्परा और विकसित हुई, वह थी 'जैन भक्ति काव्य परम्परा'। जैन भक्तिकाव्य मन्दाकिनी का प्रवाह रीतिकाल मे अधिक वेगमय रहा। जैन कवि अठारहवी-उन्नीसवी शताब्दी मे शृ गारी कवियो की कविता-कामिनी के उन्मादकारी ससर्ग से बचाकर समाज को भक्ति-सीकरो का पान कराते रहे तथा उसे आत्मोन्नयन की ओर प्रेरित करते रहे। द्यानतराय, भूधरदास, बुधजन आदि ऐसे अनेक कवियो मे पार्श्वदास का उल्लेखनीय स्थान है।

कविवर पार्श्वदास विपुल पद साहित्य और कई रचनाओ के प्रणेता होने पर भी हिन्दी साहित्य मे अज्ञात रहे हैं। लगभग २५ वर्ष पूर्व जयपुर निवासी पं. श्री प्रकाश शास्त्री ने 'वीरवाणी' मे पार्श्वदास की जीवनी का उल्लेख करते हुए उनके श्रेष्ठ कवि होने का सकेत दिया था, तथापि 'पार्श्व विलास' की सम्पूर्ण प्रति के अभाव मे विद्वानो और शोधको का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट नही हो सका। सन् ६८ मे जब मैंने टोक के हस्तलिखित ग्रन्थ-भडारो को देखना प्रारम्भ किया तो दिगम्बर जैन मन्दिर अमीरगज, टोक मे यकायक ही 'पार्श्व विलास' की सम्पूर्ण प्रति प्राप्त हो गई। तभी मैंने 'पार्श्वदास-पदावली' के प्रकाशन और कविवर पार्श्वदास के काव्यत्व का अध्ययन करने का निश्चय कर लिया। कुछ समय बाद 'पार्श्व-विलास की एक और प्रति टोक के ही तेरापथी मन्दिर मे प्राप्त होगई। मैं उक्त दोनो ही मन्दिरो के प्रबन्धको श्री घासीलाल जी सर्राफ, नाथूलाल जी आडरा, सौभाग्यमल विलासपुरिया, और रतनलाल विलासपुरिया का विशेष आभारी हूँ, जिन्होने 'पार्श्व-विलास' की पाण्डुलिपिया प्रदान कर 'पार्श्वदास पदावली' के प्रकाशन मे अपनी रुचि अभिव्यक्त की। 'पार्श्व-विलास' की तीसरी महत्वपूर्ण प्रति निगोत्यान मन्दिर जयपुर मे पार्श्वदास के वशज चिरजीलाल निगोत्या के सौजन्य से पिछली साल प्राप्त हुई थी।

प्रस्तुत रचना मे 'पार्श्वदास पदावली' का पाठ-सम्पादन उक्त तीन प्रतियों के आधार पर ही निर्धारित किया गया है। प्राक्कथन के रूप मे लिखित दो अध्यायो में से प्रथम अध्याय मे पार्श्वदास की जीवनी और काव्यत्व पर प्रकाश डाला गया है। पार्श्वदास के काव्यत्व के विवेचन का आधार उनकी समस्त रचनाए न होकर केवल 'पदावली' है। दूसरे अध्याय में 'पार्श्वदास पदावली' में स्वीकृत पाठो की भूमिका प्रस्तुत की है।

'पाठालोचन-प्रक्रिया' की व्यावहारिक कठिनाइयो को सुलझाने मे राजस्थानी के विश्रुत विद्वान् डॉ हीरालाल माहेश्वरी के ग्रन्थ 'जाम्भो जी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य' से बडी सहायता मिली है। मैं श्रद्धेय डॉ साहब का अनुगृहीत हू।

'पार्श्वदास' सम्बन्धी अनुसधान मे मुझे सर सेठ भागचद सोनी, श्री रतनलाल छाबडा, प भवरलाल पोल्याका, प गुलाबचन्द जैन, दर्शनाचार्य, प कपूरचन्द पापडीवाल, प भवरलाल 'न्यायतीर्थ', प अनूपचन्द 'न्यायतीर्थ', श्री प्रेमचन्द रावका, मिलापचन्द बागायतवाले, प राजकुमार 'शास्त्री' आदि विद्वानो एव विद्या-रसिको से समय-समय पर बडी सहायता मिलती रही है, मैं सभी के प्रति कृतज्ञ हूँ। श्रद्धेय डॉ कस्तूरचद कासलीवाल ने इस ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखकर महती अनुकम्पा की है।

मैं इस अवसर पर दिगम्बर जैन समाज अमीरगज, टोक एव उसके पदाधिकारी श्री नाथूलाल भाडरा, भवरलाल छामुण्या, मिट्ठनलाल जैन तथा श्री लालचन्द जी जैन के साहित्यानुराग का स्मरण करना नही भुला सकता, जिनके उत्साह के कारण इस ग्रन्थ का शीघ्र प्रकाशित होना सभव हो सका है।

मैं निगोत्यान मन्दिर के व्यवस्थापक श्री चिरजीलाल निगोत्या का विशेप आभारी हूँ, जिनके सौजन्य से कविवर पार्श्वदास के इष्टदेव तीर्थंकर 'पार्श्वनाथ' की प्रतिमा का चित्र प्राप्त हो सका है।

पूज्य गुरुदेव डॉ सोमनाथ गुप्त के प्रति किन शब्दो में आभार व्यक्त करू, जिनके निर्देशन और आशीर्वाद का सम्बल पाकर ही मैं कुछ खोज पाने में थोडा सा समर्थ हुआ।

परमपूज्य आचार्यरत्न श्री १०८ श्री देशभूषण जी महाराज ने आशीर्वादात्मक सम्मति लिखकर मुझे बडा उत्साह और प्रेरणा प्रदान की है। उनके महान् व्यक्तित्व के प्रति कुछ औपचारिकता व्यक्त करना समुचित न होगा।

सम्पादक—

प्रकाशकीय

राजस्थान के अन्य नगरो की भाति टोक नगर और उसका समीपवर्ती क्षेत्र जैन साहित्य और संस्कृति का प्राचीन स्थान है । इस क्षेत्र के निवाई, टोडारायसिंह, सासना, झिलाय, दूणी, आवा, नगर आदि कई स्थान जैन सस्कृति के इतिहास में उल्लेखनीय रहे हैं । सभी स्थानो मे प्राचीन शास्त्र भडार है, जिनमे सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श, हिन्दी एव राजस्थानी की अनेक रचनायें सगृहीत । प्राचीनकाल मे जिस तत्परता और लग्न के साथ श्रावकों ने जैन साहित्य को सगृहीत किया और आज तक सुरक्षित रखा, आज उसी तत्परता और लग्न के साथ समाज को उसके प्रकाशन की ओर ध्यान देना चाहिए । दिगम्बर जैन समाज, टोक ने इसी भावना से प्रेरित होकर इस ग्र थ का प्रकाशन किया है ।

जैन सस्कृति के प्राचीन केन्द्र टोक एव उसके समीपवर्ती क्षेत्र में धार्मिक प्रभावना पिछले ३०-४० वर्षो मे अधिक बढ़ी है ।(४० वर्ष पहले टोक नगर के बाहर स्थित किले के मैदान मे ३ प्राचीनतम जिन प्रतिमाए और ढाई फुट ऊंचा एक "सहस्त्रकूट चैत्यालय" भूगर्भ से प्राप्त हुआ था । किले के मैदान मे ही २१-६-५३ को भूगर्भ से २६ जिन–प्रतिमायें और प्राप्त हुई । इनमे १४ मूर्तियां सम्वत् १४७० और तीन मूर्तिया सवत् १५०३ में प्रतिष्ठापित हुई थी । बादामी, कत्थई, मू गिया, गेहुआ और श्वेतवर्ण की इन प्रतिमाओ को "किले के मैदान की नसिया" और "अमीरगज मन्दिर" मे विशाल समारोह के साथ विराजमान किया गया, तब से समाज की धार्मिकोत्सव-प्रियता उत्तरोत्तर बढती रही । टोक मे २१ अक्टूबर १९७० को रात्रि के दो बजकर २५ मिनट पर परम पूज्य आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज के सघस्थ वयोवृद्ध तपस्वी मुनिराज शीतलसागर जी महाराज का समाधि-मरण हुआ । उनकी समाधि–साधना का दर्शन कर सहस्त्रो जैन–अजैन भाईयो ने अपने को धन्य समझा । 'समाज' ने दि० ४ फरवरी ७१ से ८ फरवरी ७१ तक 'पच कल्याणक प्रतिष्ठा' का उत्सव भी आयोजित किया । इस उत्सव पर 'ज्ञान कल्याणक दिवस' को 'जैन साहित्य सेमीनार' का आयोजन समाज का अनूठा प्रयास था । 'जैन साहित्य सेमीनार' की व्यवस्था मे डॉ गगाराम गर्ग, श्री भागचन्द एडवोकेट एव श्री हर्षचन्द्र एडवोकेट का

सराहनीय योगदान रहा। 'पच--कल्याणक प्रतिष्ठा के उपरान्त धार्मिकोत्सवो के आयोजनो के अतिरिक्त समाज-सेवा और 'साहित्य-प्रकाशन' की ओर निरन्तर ध्यान देने के लक्ष्य भी समाज ने निर्धारित किये।

दिगम्बर जैन समाज अमीरगज, टोक की साहित्य-प्रकाशन के प्रति निष्ठा १०५ श्री क्षुल्लक शीतलसागर जी महाराज की प्रेरणा से हुई। उन्ही की प्रेरणा से समाज ने सर्व प्रथम बाबू कामताप्रसाद जी जैन के प्रकाशित ग्रन्थ "दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि" को जनवरी, १९७० मे पुन प्रकाशित किया। "पार्श्वदास पदावली" 'समाज' का दूसरा प्रकाशन है।

दिगम्बर जैन समाजो में विविध धार्मिक उत्सवो, पर्वों और 'जागरण' के अवसर पर पद-गायन की परम्परा प्राचीन है किन्तु आजकल यह पद-गायन की परम्परा बहुत कम हो गई है। श्रावकशिरोमणि साहू शान्तिप्रसाद जैन ने "तृतीय वृषभदेव सगीत पुरस्कार समर्पण समारोह" मे अपने अध्यक्षीय भाषण में जैन समाज का ध्यान इन कमी की ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया था—

"अब से लगभग ४०-५० वर्ष पूर्व भोजगी जैन मन्दिरो में भक्तिरस की गगा बहाया करते थे। वह परम्परा समय के अनुसार बदल गई। उस भक्ति-गगा का स्थान भक्तों की पूजन-पाठ की बेसुरी, अव्यवस्थित चीख-पुकार ने लिया, परिणाम-स्वरूप परम्परित मान्यताओ मे बँधे लोगो को छोडकर शेष लोगो मे भक्ति की रुझान घट गयी।[1]

'जागरण' के अवसर पर कुछ गीत यदि गाये भी जाते हैं तो वे सिनेमा के गीतो की तर्जों पर बने होते हैं। द्यानतराय, भूधरदास, जगजीवन, बुधजन, पार्श्वदास आदि भक्तो के विशाल पद साहित्य की थोडी सी उपेक्षा भी समाज के लिये 'शोभनीय' नही है। इस उपेक्षा का प्रमुख कारण जैन भक्तो के समूचे पद साहित्य का प्रकाशित न होना है। सन् १९०८-०९ मे जैन ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई ने कुछ कवियो के 'पद सग्रह' एक-एक प्रति के आधार पर प्रकाशित करवा दिये थे, किन्तु आज वर्षों से वे भी अनुपलब्ध हैं। 'पार्श्वदास पदावली' का प्रकाशन इस अभाव को दूर करने का प्रयत्न है। 'पार्श्वदास पदावली' के

---

१ तीर्थंकर। जून। १९७२। १३-१४।

रचयिता कविवर पारसदास ने ४३ राग-रागनियों में सर्वाधिक पद लिखे हैं। इनके पद बहुत समय से जयपुर, सवाई माधोपुर, टोंक, अजमेर आदि स्थानों के श्रावकों में बड़े लोकप्रिय रहे हैं, अनेक भी अवश्य गाये जाते रहे होंगे। हिन्दी साहित्य और जैन जगत में 'पारसदास पदावली' सम्मान और लोकप्रियता पा सकी, तो हम अपने प्रयास को सफल मानेंगे।

इस पुस्तक पर आचार्य रत्न श्री देशभूषण जी महाराज ने अपनी आशीर्वादात्मक सम्मति लिखकर हम पर महती अनुकम्पा की है। दिगम्बर जैन समाज, अमीरगंज टोंक उनका बड़ा आभारी है।

मिट्ठन लाल जैन
मंत्री

नाथूलाल आंडरा
अध्यक्ष
दिगम्बर जैन समाज
अमीरगंज, टोंक

विषय-सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठांक
१.	प्रस्तावना	एक से आठ तक
२.	पार्श्वदास और उनका काव्यत्व	१ से २० तक
३.	भूमिका, पदावली . पाठ-सम्पादन	२१ से ५६ तक
४.	पार्श्वदास पदावली	१ से २२४ तक
५.	अनुक्रमणिका	२२५ से २४१ तक

प्रस्तावना

हिन्दी के विकास के जैन विद्वानो का प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस भाषा की प्रारम्भिक शताब्दियो मे जैन विद्वानो का ध्यान आकृष्ट करने मे महापण्डित राहुल साकृत्यायन का नाम सबसे अधिक उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपनी एक पुस्तक "हिन्दी-काव्य-धारा" मे स्वयम्भू को हिन्दी का प्रथम महाकवि घोषित किया और उसके द्वारा निबद्ध 'पउमचरिउ' को हिन्दी भाषा का प्रथम महाकाव्य। स्वयम्भू ८-९वी शताब्दि के कवि थे। राहुल जी के पश्चात् आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डॉ० सत्येन्द्र एव डॉ० रामसिह तोमर जैसे हिन्दी के शीर्पस्थ विद्वानो ने जैन विद्वानो द्वारा निबद्ध हिन्दी साहित्य के महत्व को हिन्दी जगत के समक्ष प्रस्तुत किया और उन्हे साहित्य के इतिहास मे समुचित स्थान देने का आग्रह किया। गत कुछ वर्षो में हिन्दी की सैकडो कृतिया प्रकाश मे आ चुकी हैं। इसके अतिरिक्त राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची के पाच भाग प्रकाशित हुए हैं, उनमे हजारो हिन्दी रचनाओ का विवरण प्राप्त हुआ है और महाकवि स्वयम्भू पुष्पदन्त, धवल, नयनन्दि, वीर, रइधू जैसे अपभ्र श कवियो के अतिरिक्त हिन्दी जैन कवियो की हजारो कृतिया सामने आयी हैं। ये कृतिया हिन्दी साहित्य की समृद्धि मे चार चाद लगाने वाली हैं। रल्हकवि का 'जिणदत्त चरित' (स० १३५४) तथा सधारु कवि का 'प्रद्युम्न चरित' (स० १४११) जैसी हिन्दी की प्राचीन रचानाओ के प्रकाश मे आने से हिन्दी के क्रमिक विकास को समझने मे पूरा योग मिलता है। यही नही, साहित्य की प्रत्येक विधा मे गत कुछ वर्षो मे जो अनेक रचनायें मिली हैं, उनकी उपेक्षा नही की जा सकती है। काव्य चरित, एव रास, सतक काव्यो के अतिरिक्त फागु, वेलि, गीत, विवाहलो, बारहमासा, विलास आदि कुछ ऐसी विधाए हैं जो हिन्दी का जनप्रिय स्वरूप सिद्ध करने मे सहायक होती हैं।

देहली, आगरा एव राजस्थान के विभिन्न प्रदेश हिन्दी जैन कवियो के प्रमुख केन्द्र रहे। महाकवि बनारसीदास, कौरपाल, भूधरदास, भगवतीदास जैसे प्रतिभा-

सम्पन्न कवियो ने आगरा नगर को सुशोभित किया। महाकवि बनारसीदास ने 'अर्द्ध-कथानक' लिखकर हिन्दी भाषा को प्रथम जीवन-वृत्त दिया। इसी तरह भूधरदास ने पार्श्व पुराण के रूप मे हिन्दी को एक सुन्दर महाकाव्य भेंट किया। (राजस्थान के बागड प्रदेश ने १५वी शताब्दी से १८वी शताब्दी तक हिन्दी की जितनी सेवा की, वह इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठो में अ कित रहेगी। इन चार सौ वर्षों मे यहा हिन्दी रचनाओ का साम्राज्य रहा और भट्टारको, साधुओ एव गृहस्थो ने इस भाषा मे अपार साहित्य लिखा। इस प्रदेश मे जैन विद्वानो ने हिन्दी के उत्कर्ष के लिए पूर्ण लगन से कार्य किया। ब्रह्म जिनदास, सोमकीर्त्ति, ज्ञानभूषण, बूचराज, यशोधर, शुभचन्द्र, रत्नकीर्त्ति, कुमुदचन्द्र जैसे विद्वानो ने साहित्य की विविध विधाओ मे अपार साहित्य लिखा। ब्रह्म जिनदास जैसे अकेले विद्वान् ने ३५ से भी अधिक रास सज्ञक कृतिया लिखकर इस दिशा मे एक नया कीर्त्तिमान स्थापित किया।)

बागड प्रदेश के पश्चात् राजस्थान के हिन्दी के विकास में जिस प्रदेश का सबसे बडा योगदान रहा, वह प्रदेश है जयपुर। जयपुर नगर के बसने के पूर्व आमेर इस प्रदेश की राजधानी थी और आमेर एव सागानेर साहित्य-निर्माण के प्रमुख केन्द्र सैकडों वर्षों तक रहे। आमेर के नेमिचन्द, अजयराज, दीपचन्द, सुरेन्द्रकीर्त्ति, खुशालचन्द, थानसिंह एव देवेन्द्रकीर्त्ति जैसे विद्वानो ने हिन्दी साहित्य की अपार सेवाए की। इसी तरह सागानेर मे होनेवाले हिन्दी विद्वानों मे जोधराज गोदीका, किशनसिंह, ब्रह्म रायमल्ल जैसे कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियो के हृदयो मे हिन्दी के प्रचार की जो उत्कट भावना थी, उसी के कारण साहित्य-निर्माण का इतना महत्वपूर्ण कार्य हो सका।

जयपुर नगर अपने स्थापना काल से ही साहित्य-निर्माण की पावन भूमि रहा। नगर के प्रारम्भिक १०० वर्षों मे यहा जितने विद्वान् हुए, उतने राजस्थान के किसी अन्य प्रदेश मे नहीं हो सके। हिन्दी ग्रन्थो के निर्माण की यहा होड सी लग गयी। जहा देखो, वही पण्डितगण एक के बाद दूसरे ग्रन्थ लिखने लगे। साहित्य-निर्माण मे जनता के आग्रह ने और भी विशेष योग दिया तथा उनके प्रचार एव प्रसार मे अपना अपूर्व सहयोग दिया। जैन विद्वानो ने चरित काव्य, कथा काव्य, पुराण एव सिद्धान्त ग्रथो की भाषा-वचनिका के अतिरिक्त आध्यात्मिक एव भक्ति-परक साहित्य भी खूब लिखा। यही कारण है कि सवत १८०० से लेकर १६४० तक यह नगर साहित्य-निर्माण की दृष्टि से भारत का प्रमुख नगर माना जाता

रहा। यही नही, विद्वानो की कृतियो को जितना अधिक आदर जनता द्वारा मिला, वह भी एक उल्लेखनीय कहानी है। जैन विद्वानो द्वारा लिखे गए ग्रन्थो का प्रचार देश के प्रमुख नगरो मे हो गया और उनकी प्रतिलिपिया करने की व्यवस्था जयपुर मे ही नही, किन्तु अन्यत्र भी हो गई।

जयपुर के इन विद्वानो में कुछ विद्वान क्रान्तिकारी एव सुधारक विचारो के थे। कुछ विद्वान प्राचीन परम्पराओ को ही सर्वोत्तम मानकर उनमे कोई भी परिवर्त्तन नही करना चाहते थे। कुछ विद्वान् मध्यस्थ विचार वाले भी थे। ऐसे विद्वान् केवल साहित्य सेवी थे। समाज-सुधार के बारे मे उन्हे विशेष चिन्ता अथवा रुचि नही थी। लेकिन वे सभी भक्त कवि थे और अर्हद् भक्ति मे अपना विशेष जीवन लगाते थे। इनमे से कुछ कवियो ने पद एवं कुछ कवियो ने स्तोत्र, स्तुति आदि लिखकर अपनी मनोभावनायें व्यक्त की हैं। सभी विद्वान् राजस्थानी भाषा के विद्वान् थे और उसमे निष्णात थे। कथा, पुराण एव टीका सभी धारा-प्रवाह लिखते और लिखकर तत्कालीन समाज को स्वाध्याय के लिए प्रेरित करते थे।

जयपुर के इन विद्वानो मे महाकवि दौलतराम का नाम सर्वोपरि आता है। ये नगर के प्रथम महाकवि थे। गद्य और पद्य दोनो मे ही इन्होने खूब लिखा है। कवि ने अपने कई ग्रन्थो के माध्यम से आने वाले विद्वानो के लिए शैली-निर्धारण का कार्य किया। इनका जन्म बसवा ग्राम मे हुआ। शिक्षा-दीक्षा के पश्चात् युवावस्था की प्रथम किरण में ही ये आगरे व्यापार के लिए चल दिये। वहीं पर इन्हें महाकवि भूधरदास का समागम मिल गया। कुछ समय पश्चात् वहा के श्रावको के आग्रह से सवत् १७७७ में इन्होन पुण्याश्रव-कथाकोष की रचना समाप्त की। इसमें लघु किन्तु उपदेशात्मक एव धार्मिक कथाओ का सग्रह है। आगरा से ये जयपुर आ गए और तत्कालीन जयपुर नरेश की सेवा में रहने लगे। इनकी विद्वत्ता, वाक्चातुर्य, एव तर्क शक्ति को देखकर महाराजा ने इन्हे अपना विशेष दूत बनाकर उदयपुर भेजा। वहा जाकर भी ये साहित्य-निर्माण की ओर बढ़ते ही गये और जीवंधर चरित, क्रियाकोष जैसे कुछ पद्यात्मक ग्रन्थो की रचना की। उदयपुर के पश्चात् ये जयपुर आ गये और यहा महापडित टोडरमल जी के सम्पर्क मे आये। जयपुर आने के पश्चात् भी इन्होंने समाज-सुधार की अपेक्षा साहित्य-निर्माण को अधिक महत्व दिया और कुछ ही समय मे पद्मपुराण, हरिवश पुराण, आदि पुराण जैसी कृतियो के माध्यम से सारे देश मे एक नयी साहित्यिक चेतना जागृत करने में सफल हुए। जन साधारण

ने इन्ही के ग्रन्थो को पढने के लिए हिन्दी भाषा का अध्ययन किया। महाराष्ट्र एव गुजरात जैसे अहिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशो मे इन ग्रन्थो के स्वाध्याय का प्रचार हो गया, जो उनकी लोकप्रियता का स्पष्ट द्योतक है। पुराण साहित्य के अतिरिक्त इन्होने विशालकाय 'अध्यात्म बारहखडी' एव 'विवेक विलास' जैसी पद्यात्मक कृतिया भी हिन्दी जगत् को भेट की। 'विववेक विलास' दोहा-काव्य है, जिसमे ६०० से भी अधिक दोहे हैं।

इसी समय नगर-स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों मे महापण्डित टोडरमल हुए, जो सामाजिक जाग्रति के प्रमुख विद्वान् थे। वे अत्यधिक मेधावी, प्रतिभासम्पन्न एव कलम के धनी थे। उनकी वाणी और लेखनी दोनो मे ही जादू था और जन सामान्य को वे स्वत· ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। वे अधिक वर्षा तक नही जिए। अब तक उनकी आयु सामान्यत. २६-२७ वर्ष ही मानी जाती रही है, लेकिन इधर कुछ अन्य प्रमाण भी मिले हैं। यदि उनके आधार पर उनकी आयु ४७ वप की भी मान ली जावे तो भी वे अधिक जीवित नही रहे। थोडे से जीवन मे उन्होने साहित्य का जितना भारी कार्य किया, वह बडे बडे विद्वानो को चकित करने वाला है। यद्यपि उन्होने टीका-ग्रन्थ ही अधिक लिखे, लेकिन इन्ही ग्रन्थो के माध्यम से उन्होने समाज मे एक नव चेतना जागृत की। समाज मे अलख जगाने के कारण ही उन्हे अपने जीवन का बलिदान भी देना पडा। टोडरमल ढूढारी भाषा के महान् विद्वान् थे। उन्होने गोम्मटसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार की गद्यटीकाये तथा मोक्षमार्ग प्रकाशक जैसे स्वतत्र ग्रन्थ का निर्माण किया।

एक ओर राजस्थानी गद्य-पद्य के महान् विद्वान् प० टोडरमल, दौलतराम साहित्य-निर्माण मे व्यस्त थे तो दूसरी ओर कविवर बखतराम साह इतिहासात्मक कृति "बुद्धि विलास" लिखने में लगे हुए थे। बखतराम पुरानी परम्परा के विद्वान थे। दोनो की विचारधारायें अलग-अलग थी। "बुद्धि विलास" में जयपुर राज्य के शासकों का वर्णन, जयपुर-स्थापना के समय का वर्णन एव जैन-इतिहास का इतिवृत्त मिलता है। इसी में महापण्डित टोडरमल के बलिदान का भी उल्लेख मिलता है। बखतराम भक्त-कवि थे, इसलिए उनके भक्तिरस से ओतप्रोत हिन्दी पद भी मिलते हैं।

चौथे विद्वान् जिन पर जयपुर नगर को गर्व है, वे हैं जयचन्द छावडा। वे पण्डित टोडरमल की परम्परा के विद्वान् थे। प्राकृत, संस्कृत एवं राजस्थानी भाषा पर इनका पूरा अधिकार था। उनकी कृतियो को पढने से ज्ञात होता है कि ये ऊँचे दार्शनिक विद्वान् थे। इनकी ११ से भी अधिक रचनायें एवं कुछ पद मिलते हैं। इनके ग्रन्थ भी सहज में ही लोकप्रिय हो गए और सारे देश में उनका स्वाध्याय होने लगा।

इन विद्वानो के अतिरिक्त जयपुर नगर के जैन विद्वानों में डालूराम, मन्नालाल पाटनी, नन्दलाल छावडा, सदासुखदास, स्वरूपचन्द बिलाला, बुधजन एवं केशरीसिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी विद्वान् हिन्दी के महान् प्रेमी थे। और अपनी रचनाओ के माध्यम से जन जन में उनके पठन-पाठन को लोकप्रिय बनाना चाहते थे। इन्होंने सभी तरह का साहित्य-निर्माण करके उसे गतिशील बनाने मे योग दिया तथा जन साधारण की भावनाओ का आदर किया। बुधजन ऊँचे कवि थे। बुधजन सतसई इनकी उच्चकोटि की रचना है, जिसमे उन्होने आध्यात्मिकता की उडान के साथ अन्य विषयो पर भी अच्छी कविता लिखी है। इनके पद आध्यात्मिक एवं भक्ति रस से ओतप्रोत हैं। आत्मा और परमात्मा का पूरा चित्र इनके पदो में उपलब्ध होता है। जगत् की अस्थिरता पर इन्होने खूब लिखा है। तत्वार्थसूत्र पर 'अर्थप्रकाशिका' हिन्दी टीका के रूप में दर्शनशास्त्र को प० सदासुख की बहुत बडी देन है। इनका 'मृत्यु महोत्सव' एक रूपक कृति है।

१९वी शताब्दी मे निगोत्या परिवार जयपुर नगर का एक सम्भ्रान्त जैन परिवार था। साहित्य-निर्माण एवं जिन-भक्ति मे इसकी विशेष रुचि थी। जयपुर में निगोत्या का मन्दिर इसी परिवार के सदस्यो द्वारा निर्मित किया गया था और इसमे ऋषभदास निगोत्या परिवार के उल्लेखनीय सदस्य थे। महाकवि दौलतराम, टोडरमल और जयचद का अपार साहित्य उनके समक्ष था, इसलिए साहित्य-निर्माण की ओर इनका मनोयोग स्वत ही हो गया। विचारक एवं चिन्तक होने के कारण ये ग्रन्थ स्वाध्याय मे अपना अधिक समय लगाते थे। नन्दलाल छाबडा इनके घनिष्ठ मित्रो मे से थे। नन्दलाल ने मूलाचार की भाषा वचनिका ६ अधिकार और ५ गाथा तक लिखी। उसके अवशिष्ट भाग को ऋषभदास निगोत्या ने कार्तिक शुक्ला ७ संवत् १८८८ मे पूरा किया। मूलाचार मे मुनियों के चरित्र का वर्णन किया गया है।

कविवर पारसदास निगोत्या प० ऋषभदास के पुत्र थे। ये तीन भाई थ; जिनमे पारसदास सबसे छोटे थे। ये भी प्रतिभासम्पन्न विद्वान् थे और इनको तत्कालीन विद्वानो का विशेष सहयोग प्राप्त था। इन्होंने सारचतुर्विंशतिका एव 'पारस विलास' की रचना की थी। 'पारस विलास' में कवि की काव्य-रचनाओ अतिरिक्त एक गद्य ग्र थ "ज्ञान सूर्योदय नाटक की भाष'-वचनिका" है। सार चतुर्विंशतिका भी एक 'भाषा-वचनिका' है। यह कवि की सबसे बडी कृति है। इसका रचनाकाल कार्तिक सुदी द्वितीया, संवत् १९१८ है। कवि ने इस कृति में तत्कालीन जयपुर का जो परिचय दिया है, वह निम्न प्रकार है :—

"उस समय जयपुर में महाराजा रामसिंह का शासन था। महाराजा के दो मत्री थे। एक का नाम प० शिवदीन तथा दूसरे का नाम लक्ष्मणसिंह था। नगरमे सब ओर सुख-शान्ति थी। नगर मे एक बहुत बडी अध्यात्म शैली थी, जो यहाँ के तेरह-पथी बडा मन्दिर मे चलती थी। शैली मे गोम्मटसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार एव समयसार नाटक की स्वाध्याय होती थी। इन ग्र थो की चर्चायें अत्यधिक रुचिपूर्वक सुनी जाती थी। लोग सब चर्चायें करते थे तथा स्व-पर भेद की गहन चर्चा मे मस्त रहते थे। इसके अतिरिक्त शैली मे काव्य, कोश, व्याकरण, गणित, न्याय-सिद्धान्त आदि विषयो के ग्र थो का भी अध्ययन होता था। कवि ने लिखा है कि उस शैली मे सभी ज्ञानी पुरुष थे। अज्ञानी का कही नाम भी नही था। कवि ने उस शैली के भूतपूर्व एव तत्कालीन विद्वानों के नाम दिये हैं— इनमे टोडरमल्ल, जयचद छाबडा, नदलाल, रिषभदास, महाराय, रायमल्ल, गुमानीराम, शिवजीलाल, सुखराम, जीवण राम, मन्नालाल, माणकचद और घासीलाल। ये सभी स्वर्गस्थ विद्वान थे। कवि ने अपने समय के विद्वानो के नाम भी गिनाये हैं, जिनमें सदासुख एव छाजूलाल को ज्ञान-गगन के सूर्य एव चन्द्रमा के रूप मे उल्लिखित किया गया है। नाथूलाल को सार त्रय (गोम्मटसार, समयसार एव त्रिलोकसार) का विशेष विद्वान लिखा गया है। विजयलाल का तर्क एव व्याकरण के ग्रन्थो के विद्वान के रूप में स्मरण किया गया है। मन्नालाल चारो ही अनुयोग-ग्रन्थों के विद्वान थे तथा इसी तरह बख्तावर लाल की भी चारो ही अनुयोगो मे अच्छी गति थी। चैनसुख, तनसुख, मोतीलाल, गुलाबचद, अमीचद, अभैचद भी अत्यधिक पडित जन थे। पडित बाजूलाल मत्रविद्या एव काव्यविद्या मे अत्यधिक विद्वान् थे।"

पद साहित्य :

वैष्णव कवियो के समान जैन कवियो ने भी भावपूर्ण पद लिखे हैं। ये पद भक्तिपरक, अध्यात्मिक, दार्शनिक, शृंगार एव विरहात्मक आदि विविध विषयो से सम्बन्धित हैं। यद्यपि जैन दर्शन में ईश्वर को उसी रूप में स्वीकार नही किया गया है जिस रूप में वैष्णव कवियो ने उसके सम्बन्ध में लिखा है, लेकिन जैन कवियो ने भी तीर्थंकरो का खूब गुणानुवाद किया है। उनसे सासारिक वैभव के लिए याचना न करके ससार के दुखो से छुटकारा प्राप्त करने की माग की है। जैन भक्त जन्म-मरण के बन्धन से छूटना चाहते हैं, क्योकि मोक्ष अथवा निर्वाण की प्राप्ति से ही ससार के दुखो से छुटकारा मिल सकता है। इसी तरह आध्यात्मिक पदो मे आत्मा एव परमात्मा के सम्बन्ध मे वर्णन किया गया है। प्रत्येक आत्मा मे परमात्मा बनने की शक्ति है, लेकिन यह आत्मा अपनी शक्ति को भूले हुए है। इसलिए जैन कवियो ने अपने पदो में इस आत्मा को वास्तविक स्थिति से अवगत कराया है। शृंगार और विरहात्मक पद राजुल-नेमि को लेकर रचे गए हैं। भट्टारक रतनकीर्ति एव कुमुदचन्द्र ने ऐसे कितने ही पद लिखे हैं जिनमे नेमिनाथ के विरह में राजुल की मनोदशा का वर्णन मिलता है। इस प्रकार जैन कवियो द्वारा रचित पद शुष्क तथा नीरस नही है। उनमे पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट करने की पूर्ण क्षमता है। किन्तु अभी तक उनका मूल्याकन नही होने से उन्हे अपने महत्व से वचित होना पड रहा है।

जैन कवियो द्वारा रचित हिन्दी पदो की सख्या के बारे में कुछ निश्चित नही कहा जा सकता, किन्तु इन कवियो द्वारा रचित हिन्दी पदो की सख्या दस हजार से कम नही होनी चाहिए। दो हजार से अधिक पदो का सग्रह तो हमारे पास ही है, जबकि उसमे बहुत से कवियो के पद अभी आये ही नही है। पदो के निर्माण की परम्परा १६ वी शताब्दि से अधिक विकसित हुई है और उसके पश्चात् तो प्रायः प्रत्येक कवि ने पद अवश्य लिखे हैं। बागड प्रदेश मे होने वाले भट्टारको एव उनके शिष्यो ने अपने गुरुजनो की प्रशसा मे भी पद लिखे हैं। कबीर, मीरा, सूरदास, तुलसीदास जैसे कवियो के पदो का जिस तरह अध्ययन और प्रकाशन हुआ है, उसी तरह जैन कवियो के पदो का अध्ययन तथा मूल्याकन भी होना चाहिए। महाकवि बनारसी-दास, रूपचन्द, जगजीवन, जगतराम, द्यानतराय, भूधरदास जैसे कवियो के पदो की हिन्दी के अन्य कवियो से तुलना की जा सकती है। जैन कवियो के पद भी उतने ही मरम

एव भावपूर्ण हैं जितने अन्य कवियो के। साहित्यिक क्षेत्र मे अलगाव की भावना जितनी जल्दी मिट सकेगी, उतनी ही शीघ्रता से हमारा हिन्दी साहित्य समृद्धि की ओर आगे बढ सकेगा।

इस दृष्टि से पार्श्वदास पदावली का प्रकाशन स्वागत-योग्य है। डॉ० गगाराम गर्ग ने १९ वी शताब्दी के कवि पार्श्वदास के पदो का सम्पादन करके हिन्दी जगत् का भारी उपकार किया है। डॉ० गर्ग उत्साही शोधार्थी विद्वान् हैं। जैन भण्डारो मे बिखरी हुई प्राचीन कृतियो को प्रकाश मे लाने मे उनकी अत्यधिक रुचि है। प्रस्तुत पदावली का उन्होने ६ प्रतियो के आधार पर सम्पादन किया है तथा पाठ-सम्पादन मे आधुनिक पद्धति का उपयोग किया है। आशा है, वे प्राचीन कवियो को प्रकाश मे लाने के कार्य मे इसी तरह आगे बढते रहेगे। मैं एक बार पुनः इस कार्य के लिए उन्हे हार्दिक बधाई देता हू।

इस अवसर पर मैं दिगम्बर जैन समाज टोक की भी हार्दिक अभिशसा करता हू कि उन्होने पार्श्वदास पदावली के प्रकाशन मे डॉ० गर्ग को पूरा सहयोग दिया है। टोक समाज भविष्य मे साहित्य-प्रकाशन मे इसी तरह विद्वानो को सहयोग देती रहे, यही मेरा उससे नम्र निवेदन है।

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

—:❀:—

पार्श्वदास और उनका काव्य

पार्श्वदास का जीवनवृत्त :

पार्श्वदास जयपुर निवासी ऋषभदास निगोत्या के पुत्र थे। पार्श्वदास के दो बडे भाई मानचन्द और दौलतराम थे। पिता के अतिरिक्त पार्श्वदास के दोनो भाई भी अध्यात्म-रमिक थे। पार्श्वदास को प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से मिली। शास्त्र-पठन और परमार्थ तत्व की ओर इनका झुकाव प० सदासुखदास के सम्पर्क से हुआ। पार्श्वदास बडे श्रद्धालु व्यक्ति थे। इनका साधना-स्थल शान्तिनाथ जी का बडा मदिर जयपुर था। वहा उनके प्रवचन सुनने के लिए काफी जैन-समुदाय एकत्र होता था। पार्श्वदास के परिवार ने अपनी आय के मुताबिक धन लगाकर ऋषभदेव जी का मंदिर बनवाया, जो आज जयपुर मे निगोतियान मन्दिर के नाम से जाना जाता है। पार्श्व-दास के शिष्यो मे बखतावर कासलीवाल प्रमुख थे। उसे ही ये अपना पुत्र व मित्र समझते थे।

प० श्री प्रकाश के लेख "श्री पारसदास निगोत्या"[1] तथा अन्य ज्ञातव्य तथ्यो के आधार पर सुनिश्चित है कि पार्श्वदास अपने जीवन के अन्तिम वर्षों मे अजमेर रहने लग गए थे। सवत् १९१० मे निर्मित प्रसिद्ध सोनी जी के मन्दिर मे उत्कीर्णित लेख मे मन्दिर-निर्माण के प्रेरक प० सदासुखदास बतलाये गए हैं, इसमे सेठ मूलचन्द सोनी और प० सदासुखदास का घनिष्ठ सबध स्पष्ट है। प० सदासुखदास के घनिष्ठ सम्पर्क मे रहने के कारण उनके विद्वान शिष्य पार्श्वदास भी सेठ मूलचद सोनी के आदर के पात्र बने होंगे। जनश्रुति और श्रावको मे पार्श्वदास के पदो के परम्परागत प्रचार के कारण सेठ साहब के प्रपौत्र सर सेठ भागचन्द सोनी भी पार्श्वदास का अजमेर-प्रवास स्वीकार करते हैं।

प० पार्श्वदास ने अजमेर मे ही सेठ मूलचन्द सोनी के सान्निध्य मे वैसाख सुदी ५ सवत् १९३६ को समाधि मरण लिया।[1]

काव्य-रचनाएं —

पार्श्वदास का एक गद्य ग्रन्थ 'ज्ञान सूर्योदय नाटक की वचनिका' तथा समस्त

काव्य-रचनाए 'पारस विलास' मे सगृहीत हैं। काव्य रचनाओ का विवरण इस प्रकार है .

१. पद-सग्रह.— अष्ट पद्या' 'उणतीस पद' चौबीस महाराज का 'चौबीस पद' तथा 'पद' चार रचनाओ के रूप मे लिखे गए पाश्र्वदास के ४२५ पद हैं। पाश्र्व-दास के पदो को पाच भागो मे विभाजित किया जा सकता है-आध्यात्मिक, भक्तिपरक विरहात्मक, भक्तिपरक और नीति-परक। पाश्र्वदास ने अपने पद ४३ से अधिक रागो मे लिखे हैं। इनमे उनकी काव्य-प्रतिभा का पूर्ण निर्देशन है।

२. अष्टोत्तर शतक —इसमे १२ चौपाई छन्दो में जिनेन्द्र के १०८ नाम गिनाए गए हैं। कवि ने जिनेन्द्र को विघ्नहरण, पतित पावन, ज्ञानी, ध्यानी, कामधेनु कहने के अतिरिक्त शिव, ब्रह्मा, विष्णु और विनायक भी कहा है, जो कवि की व्यापक और समन्वयवादी दृष्टि का परिचायक है।

३ द्वादशांग दर्शन पाठ - इस ग्रन्थ की रचना कार्तिक कृष्णा १० सवत् १९१८ को हुई। इसमे कुल ७५ छद हैं। इस रचना मे जैन दर्शन के आचार, सूत्र, समवाय, व्याकरण आदि १२ अगो का विवेचन सुबोध-गम्य रीति से किया गया है।

४ ब्रह्म छत्तीसी —यह ग्रन्थ श्रावण कृष्णा ५ सम्वत् १९१२ को लिखा गया। इसमे मगलाचरण के उपरान्त कवि ने छह ढालो मे ससार की नश्वरता, यौवन और धन को क्षणभगुरता का सकेत देते हुए मिथ्यात्व के खंडन की शिक्षा देकर आत्मानुभव की प्रेरणा दी है।

५ सुमति बत्तीसी —ग्रन्थ का वर्ण्य सुमति का चेतन को जिन भक्ति, ज्ञान, ध्यान, बारहभावना, रत्नत्रय और दशलक्षण का लोभ दिखलाकर अपनी ओर आकृष्ट करना है।

६ अर्हन्त-भक्ति —इसका रचना काल सवत् १८९५ है। इसमे तीर्थंकरो के पच कल्याणको की चर्चा करते हुए जिन भक्ति की महिमा कही है। ग्रन्थ मे केवल १३ छन्द हैं।

७. सम्यक्त-बहत्तरी ग्रन्थ के प्रारम्भ मे तीर्थंकरो के मूल गुणो व सद्-गुरु के भेदो की चर्चा करके सम्यक्त को व्रत, भावना, तप, सयम सबका आधार बतलाया है। इसमे मुनि और श्रावक के धर्मो का अलग-अलग विवेचन भी है। ग्रन्थान्त मे रचनाकाल भादो कृष्णा ५ सवत १८९६ मे दिया हुआ है।

(१) सिद्धान्त परक रचनाएँ —

१ द्वादशाग दर्शन पाठ २. ब्रह्म छत्तीसी ३ सम्यक्त वहत्तरी
४ जिनागम पाठ ५ वारह भावना ६ सुगुरु दशक

(२) भक्ति परक रचनाए —

१ अष्टोत्तर शतक २ सरस्वती अष्टक ३ अर्हंन भक्ति ४ आरती
५ तेरापथ स्तुति ६ ऋषभदेव स्तोत्र ७ दर्शन स्तुति
८ दर्शन पच्चीसी

(३) नीति परक रचनाए —

१. सुमति छत्तीसी २ उपदेश पच्चीसी ३ वारह खडी ४ कुगुरु निषेध पच्चीसी ५ चेतना सीष ६ हितोपदेश पाठ

(४) चरित्र प्रधान रचनाएँ —

१ राजुल वत्तीसी २ रावण विभीषण रासो

(५) पूजा सम्बन्धी रचनायें:—

१. रत्नत्रय पूजा २ पार्श्वनाथ पूजा ३ देवसिद्ध पूजा
४. नित्य नियम पूजा ५ जम्बूस्वामी पूजा ६ सरस्वती पूजा
७. सोलह कारण जयमाल ८ जत्रराज की जयमाल
९. दशलक्षणा जयमाल १० रत्नत्रय जयमाल

(६) फुटकर रचनायें —

१, हथणापुर की जात

आध्यात्मिक सिद्धांत

जैन धर्म के अनुसार विश्व दो भागो मे विभाजित है, एक जीव तत्व और दूसरा अजीव या जड तत्व। अजीव या जड तत्व भी पाँच भागो मे विभाजित हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। तत्वचिन्तक पार्श्वदास ने अपने पदो मे जीवतत्व और पुद्गल का शास्त्रानुकूल विवेचन किया है।

जैन दर्शन के अनुसार जीव चैतन्यात्मक है। ज्ञान और दर्शन जीव के गुण और स्वभाव हैं। प्रत्येक जीव अपने उत्थान-पतन के लिए स्वय उत्तरदायी है। जीव

विभिन्न जन्मो के किये गये अपने कर्मों का कर्त्ता एव फलभोक्ता भी स्वय ही है। जैन मत प्रत्येक ससारी जीव को अनादिकालीन कर्मो से सम्बद्ध मानता है। मुक्ति की स्थिति मे यही आत्मा तप्त स्वर्ण के समान निर्मल होकर पूज्यता को प्राप्त करता है। पार्श्वदास के आत्मा विषयक विचार भी इसी प्रकार हैं —

कर्म को कर्त्ता भोग को भोक्ता या कथनी जा माय निकाम।
जा मैं एकेंद्री पचेंद्री, ऐसे भेद नही अभिराम।
है निरदोष वध नहिं मोचन, सदा ज्ञानमय है आराम।
ज्ञान गम्य दरसन है जाको, लोकातीत पूज्य है धाम ।।५०।।

जैन दर्शन जीवो की अनेकात्मकता तथा स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करता है। प्रत्येक जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न शरीरो को धारण करता हुआ सुख या दुःख पाता है। कविवर पार्श्वदास ने अपने कई पदो मे कर्म बन्धनो के कारण जीवात्माओ के बार बार शरीर धारण करने की चर्चा की है :—

अनत काल पूरो कियो जी, रुल्यो निगोद मझार।
एक सास मैं जनमियो अरु मर्यो अनन्ती वार ।।२७६।।

पार्श्वदास पदावली मे दूसरा विवेच्य तत्व पुद्गल है। जैन शास्त्रो मे पुद्गल का लक्षण रूप, रस, गध और स्पर्श वाला बतलाया गया है। मोटे तौर जो पर कुछ देखा जाता है, छुआ जाता है, सूंघा जाता है अथवा खाया जाता है, वह पुद्गल है। पुद्गल अनेकरूपात्मक है तथा व्यक्त होने के कारण हल्का, भारी, नरम या कठोर है। पार्श्वदास कहते हैं :—

जो दीसै सोही पर पुद्गल नाना रूपमयी रे।
सपरस रस और गध वरण गुण पुद्गल की परणई रे।
हलको भारी नरम कठिनता, लूखो औ चिकनई रे।
ये सब हैं पुद्गल की परणति, तेरी कछु न कही रे ।।१५८।।

जैन धर्म के अनुसार पुद्गल आदि सभी द्रव्य अनादि हैं। उनके गुण नित्य होते हैं, किन्तु उनकी पर्यायें बदलती रहती हैं। जिस प्रकार सोना किसी एक विशिष्ट

आकार से पिण्ड रूप होता है किन्तु उसके पिण्ड रूप का विनाश कर माला तथा माला का विनाश करके कोई अन्य आभूषण बनवा लिया जाता है, उसी प्रकार एक ही द्रव्य विभिन्न वस्तुओ मे परिवर्तित होता हुआ भी किसी न किसी रूप मे अपना अस्तित्व अवश्य रखता है। शङ्कराचार्य के मिथ्यावाद मे आस्था न रखते हुए भी पार्श्वदास ने पुद्गलमयी देह, सपत्ति आदि को उसकी परिवर्तनशीलता के कारण ही असत् कहा है —

मात तात और बन्धु तिया सुत, सुख सपत्ति सुपना।
आय अचानक जम ले जासी, करि मुख जिन जपना ॥४६॥

आत्मा पुद्गल का ससर्ग पाकर अपना स्वाभाविक स्वरूप भूल जाता है। जन्म-जन्मातरो मे भटकते रहने से वह विविध कर्मों के मैल से आवृत्त भी हो जाता है। यदि आत्मा कर्मों से छुटकारा पाकर पुद्गल से ममत्व त्याग दे, तो उसके समस्त दुःखो का अन्त हो जाये। पार्श्वदास भी आत्मा के प्रति यही भाव व्यक्त करते हैं —

जड सङ्गति करि बहु दुख भोगे आखर रह गये कोरा।
जड सङ्गति तजि निज रति धरि 'पारस' ऐसा करत निहोरा ॥११९॥

जैन दर्शन मे ईश्वर को कल्पना सृष्टि के कर्त्ता-हर्त्ता, 'सर्व शक्तिमान्' 'वैभवशाली', 'स्वामी' 'अधिकारी' आदि रूपो मे नही की गई है। सृष्टि स्वय सिद्ध है। जीवो को कर्म-फल देने से ईश्वर का कोई सम्बन्ध नही है, क्योकि वे जैसा करते हैं, वैसा भोगते हैं। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वथा रहित, चेतन एव अविनाशी अवश्य है। जैन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक आत्मा अपनी स्वतत्र सत्ता के लिए मुक्त हो सकता है। ये मुक्त जीव ही जैन धर्म के ईश्वर हैं। पार्श्वदास भी आत्मा के मूल स्वरूप मे ईश्वर के दर्शन करते हैं

अनन्त ज्ञान सुख वीरज तुझि घर, पर जड मैं मति थोगि।
जीवन मुक्त होवु या विधि सैं, पारस रहु उपयोगि ॥१६९॥

दार्शनिक तत्व 'मुक्ति' का सामान्य अर्थ है—स्वतत्रता या छुटकारा। आत्मा के समस्त कर्मबन्धनो से छूट जाने को मोक्ष कहा गया है। जैन धर्म के अनुसार आत्मा

एक स्वतन्त्र द्रव्य है। यह ज्ञाता और दृष्टा है, किन्तु अनादिकाल से कर्मबन्धन मे बंधा हुआ होने के कारण अपने किये हुए कर्मो का फल भोगता रहता है। कर्मबंधन के क्षय हो जाने पर उसे मुक्ति मिल जाती है। जैनाचार्यो के कथनानुसार कर्मबंधनो का क्षय सम्यक्ज्ञान से होता है। सम्यक्ज्ञान का अर्थ है– ज्ञान दर्शनमय अविनाशी आत्मा को अपना समझना तथा शुभाशुभ कर्मों के संयोग से उत्पन्न हुए बाकी सभी पदार्थों को आत्मा से भिन्न जानना। कविवर पार्श्वदास ने भी आत्मा के कर्मरूपी कुरगो से बचकर सम्यक्ज्ञान रूपी रङ्ग मे विलीन हो जाने को मोक्ष कहा है :—

विनासीक पर कर्म कुरङ्ग रङ्ग, कहा रच्यो है अज्ञानी।
सम्यक् ज्ञान सास्वतो निजरगमय, होवै तब है ज्ञानी।
याही रङ्ग रङ्गीले तिनकू, आप वरत है शिवनारी।
वसुविधि कर्म कुरङ्ग रगे जिय, दुरगति मे भोगै रवारी ॥२६७॥

आराध्य :

पार्श्वदास पदावली मे यद्यपि भगवान् आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर चार तीर्थंकरो के प्रति अधिक भावाजलिया प्रस्तुत की गई हैं, किन्तु कवि के प्रमुख इष्ट भगवान् पार्श्वनाथ ही हैं। पौराणिक मान्यता के अनुसार भगवान् पार्श्वनाथ जैनो के चौवीस तीर्थंकरो मे से तेईसवें तीर्थंकर हैं। इनके पिता विश्वसेन इक्ष्वाकुवशी क्षत्रिय थे। पार्श्वनाथ की माता का नाम वामादेवी था। राजकुमार पार्श्वनाथ ने तीस वर्ष की अवस्था के बाद पौष कृष्ण एकादशी को तीन सौ राजाओ के साथ वीतरागी दीक्षा ली तथा केवल ज्ञान की प्राप्ति से आर्हन्त्य पद को प्राप्त किया। पार्श्वदास ने अपने पदो मे भगवान् पार्श्वनाथ के वीतरागता ग्रहण की चर्चा की है।

जैन दर्शन मे भगवान् पार्श्वनाथ आदि सभी तीर्थंकर ४६ मूल गुणो से युक्त और अठारह दोषो से रहित होते हैं। ४६ मूल गुण हैं–३४ अतिशय, ८ प्रातिहार्य तथा ४ अनन्त चतुष्टय। तीर्थंकर १० अतिशय सहित जन्म लेते हैं। केवल ज्ञान की प्राप्ति के अवसर पर उनके दस अतिशय होते हैं। शेष चौदह अतिशय देवकृत होते हैं। ८ प्रातिहार्यों के अनुसार तीर्थंकर समोवशरण के अवसर पर अशोक वृक्ष के नीचे रत्नमय सिंहासन पर विराजते हैं। उनके शिर पर छत्र फिरता है। यक्ष चौंसठ चवर

ढोरते हैं तथा देवता पुष्पवृष्टि करते हैं। पार्श्वदास के आराध्य भी अतिशयो और प्रातिहार्यो से युक्त हैं तथा अठारह दोषो से रहित हैं —

दोष अठारा रहित विराजै, गुण अनन्त जा मायी।
चौतीसू अतिसै जुत सोहै, मध्वनि को सुखदायी।
प्रातिहार्य करि जगमन मोहै, अनन्त चतुष्टय रायी।
जाका तन की छवि कू निरखत, कोटि भान हू लजायी। १५०॥

भगवान् पार्श्वनाथ मे अनन्त ज्ञान एव शक्ति है। वह सर्वज्ञ तथा सुख-निधान है —

अनन्त ज्ञान सुख वीरज जामैं, जा मैं रङ्क न रूपा जी।
वीतराग सरवज्ञ जिनोत्तम, भजै राज तजि भूपा जी।
सुख निधान कृतग्य जिनोत्तम, जा मैं छाह न धूपा।
अष्टादश नहि दोस जास मैं, पारस है सुखकूपा॥६५॥

भगवान पार्श्वनाथ राग, द्वेष, मद, मोह, क्रोध आदि दोषो से रहित होने के कारण निर्विकार तो हैं ही, शान्ति-मूर्ति भी हैं।[२] किन्तु जिनेन्द्र की शान्ति-छवि मे भक्तो के कर्मों को नष्ट करने का अद्भुत चमत्कार है।[3] अग्निकुण्ड मे जलती हुई सीता का बच जाना तथा सिंहोदर से वज्रकरण के मान की रक्षा होना आदि अनेक घटनायें इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।[४]

भगवान पार्श्वनाथ बडे छवि-सम्पन्न हैं। उनकी छवि का अवलोकन कर करोडो सूर्य लज्जित होते हैं।[५]

भगवान पार्श्वनाथ महिमावान है। इन्द्रादि देव उनके चरण-कमलो मे नमन करते हैं।[६] चन्द्रमा और मेघ को चाहने वाले चकोर और मोर के समान ही ऋषि और मुनि भी जिनेन्द्र का एकटक ध्यान करते हैं।[७] उन्हे सुरपति, फणपति और नृपति सभी पूजते हैं। सत्य तो यह है कि जिनेन्द्र तीनो जगत्पतियो (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) के भी स्वामी हैं :—

सुरपति फणपति नरपति पूजैं इक निज पद की चायी ।
तीन जगतपति के पति स्वामी, सांचै हैं जिनरायी ॥१५१॥

जिनेन्द्र ने कर्मो पर विजय प्राप्त कर ली है, इसलिए ही उनका नाम 'जिनवर' है ·

अन्य देव विकराल मूर्ति, तैं हू कर्म वसावै हो ।
कर्म विजय तैं जिनवर नाम कू तू ही पावै हो ॥१८०॥

वैष्णव परम्परा मे भगवान भक्तो की रक्षा के लिए जन्म लेते हैं । अपनी लीलाओ से भक्तो को प्रसन्न करते हैं तथा दुष्टो को मारकर उनकी रक्षा करते है । जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक जीव अपने कर्मों के अनुसार स्वय ही सुख-दु ख भोगता है । कोई अन्य मुक्तात्मा का उससे कोई सम्बन्ध नही । पार्श्वदास ने अन्य देवो के विकारो व अवतारवाद की चर्चा करते हुए जिनेन्द्र को निर्विकार के अतिरिक्त निरवतारी भी बतलाया है —

सील सतोष विवेक न जिन मैं, ना समतामय रहना ।
दया सत्य अरु सौच न जिन मैं जिनकै जनम रु मरना ।
नीके सकल लषे मत हम नै, इन विन नांहै तरना ।
पारस' जानि कामदेव सव, भजि सन्मति के चरना ॥२९१ ॥

जैन दर्शन के अनुसार तीर्थंकरो मे जन्म, जरा, तृष्णा, क्षुधा, विस्मय, आरति, शोक, निद्रा, रोग आदि कोई भी अवगुण नही होना । ये अवगुण तो संसार लिप्त आत्मा मे होते हैं । तीर्थकर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि पाच व्रतो तथा उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, सयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य आदि दश धर्मों की प्राप्ति साधु एव आचार्य की स्थिति मे ही कर चुके होते हैं ।

कवि पार्श्वदास ने भी अपने आराध्य भगवान् पार्श्वनाथ को अनन्त गुणो का भण्डार कहा है—

हे गुणनिधि कछु गुण नहिं मो मैं ।
अब तो तुमारे हैं, स्यानें वावरे ॥५६॥

तुलसी आदि सगुणोपासकों ने अपने आराध्य को सङ्कट-हर कृपालु जगतारक लोकपति, दीन-रक्षक उपकारी आदि गुणो से विभूषित किया है। पार्श्वदास के आराध्यदेव भी ससार के नायक तथा भक्तों के विघ्नो को नष्ट कर उसे अभीष्ट फल प्रदान करने वाले हैं —

विघन विनासक हो जगनायक, भव्यनि कू मन वाछित दाय ।।७०।।

जिनेन्द्र भगवान् भक्तो के दु खो को दूर कर उन्हे सुख देने वाले हैं।[८] वे भक्त-वत्सल तथा पतितपावन हैं। उन्होने कच्छप, अ जन, वारिषेण आदि अनेक प्राणियो के दु खो को दूर किया है।[९] ससार मे भ्रमणशील आत्मायें पीडा और सताप से ग्रस्त हैं। सासारिक कष्टो रूपी आतप को शात करने के लिए ज्ञान, सौंदर्य और सुख की राशि जिनेन्द्र ही समर्थ हैं —

अनन्त ज्ञान लक्ष्मी के सागर परमातम सुखकारो।
भव आताप नसावण जलमुच, मेटो ताप हमारो ।।१६१।।

जैन दर्शन मे तीर्थंकरो को कर्त्ता तथा भोक्ता नही माना, फिर भी जैन भक्त उनके निमित्तजन्य कर्त्तृत्व मे विश्वास करता रहा है। आचार्य पूज्यपाद लिखते है— जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न तथा कल्पवृक्ष आदि अचेतन हैं, तो भी पुण्यवान पुरुष को उनके पुण्योदय के अनुसार फल देते है, उसी प्रकार भगवान अरहत या सिद्ध राग-द्वेष रहित होने पर भी भक्तो को उनकी भक्ति के अनुसार फल देते हैं।[१०] इसी विश्वास के कारण जिन भक्त जिनेन्द्र को कर्त्ता और दाता न जानते हुए भी यह अवश्य मानता है कि लौकिक और परलौकिक वैभव उसी की कृपा से प्राप्त होता है। मध्यकाल मे जैन भक्ति साहित्य की चरम परिणति तक जिनेन्द्र के प्रेरणाजन्य कर्त्तृत्व की भावना अधिक मुखरित हो गई थी।

निर्गुण कवियो की तरह जिन भक्तो ने भी अपने आराध्य को अजर, अमर, अक्षत, चिदानन्द, अलष, अमूर्त, नित्य, निरजन इन्द्रियातीत कहा है। पार्श्वदास के आराध्य भी अस्पृश्य, अदृश्य, अविनाशी, चिदानन्द तथा चैतन्यस्वरूप हैं —

सपरस कीये हाति न आवै, नैनन तै न लषावै।
'पारस' देषन जानन हारो, ताही कू सिर नावै ।।२१६।।

जा में पाप कसाय न दीसे सुख को नाही छेह छै।
अविनाशी चिद्रूपी 'पारस' काहे आन नमें छै ॥१४४।

जिनेन्द्र को अनेकरूपात्मक मानना जैन भक्तो की महत्वपूर्ण विशिष्टता है। विचार-प्रतिपादन के क्षेत्र मे व्यक्तिगत हठवादिता, दुराग्रह एव एकान्तिकता के परिहार के लिए जैन दर्शन के अनेकान्तवाद को बडा उपयोगी माना गया है। विभिन्न-धर्मा वस्तु का बहुमुखी ज्ञान वस्तुत अनेकान्तवाद मे ही समझा जा सकता है। इसी अनेकान्तवाद से प्रभावित जैन भक्तो ने अपने आराध्य मे सभी धर्मावलम्बियो के आराध्यो के दर्शन किये हैं, जिससे जैन-भक्ति-साहित्य साम्प्रदायिक सद्भाव की कसौटी पर खरा उतरा है। पार्श्वदास कहते हैं कि ईश्वर का स्वरूप एकान्ती भाव मे नही लाना जा सकता, क्योंकि 'जिन' 'बुद्ध', 'ब्रह्मा', 'शिव', 'नारायण', 'कर्त्ता', 'कर्म', 'अलख' और निरजन सब कुछ वही है—

तू ही बुद्ध जिनपति ब्रह्मा शिव नारायन कहलावै।
न्यायवाद करतार कहत तोयें, कर्म मीमासक गावैं।
अलख निरजन रूपी अरूपी, अज जन्मा दरसावैं।
एकान्ती तेरो रूप नहि पावें, 'पारस' ध्यावै सो ही पावैं॥१०६॥

भक्ति :

अपने इष्ट के प्रति अनन्य अनुराग को भक्ति कहा गया है। इष्ट के अलौकिक होने पर भी उसके प्रति अनुराग अभिव्यक्त करने के लिए भक्तो ने लौकिक भाव ही अपनाये हैं—दास्य भाव, वात्सल्य भाव, सख्य भाव, माधुर्य भाव तथा शान्ता भाव। शान्ता भाव प्रथम चार भावो मे अन्तर्भूत रहता है। हिन्दी के रामभक्तिकाव्य मे दास्यभाव तथा कृष्णभक्ति साहित्य मे वात्सल्य, सख्य, और माधुर्य भावो की प्रधानता रही है। दास्यभावी भक्ति में भक्त अपने को आराध्य का सेवक मानकर उसे अपना स्वामी मानता है। आराध्य का महिमा-गान, स्वदोषो की अनुभूति, प्रभु कृपा की याचना, अनन्यता आदि दास्यभावी भक्ति की विशेषताए हैं। पार्श्वदास की दास्यभावी भक्ति मे ये सभी विशेषताए विद्यमान हैं।

पार्श्वदास भगवान पार्श्वनाथ के प्रति श्रद्धाभाव रखते हुए अनेक बार उनकी महिमा का गान करते हैं —

भजि मन श्री जिन श्री जिनदेव।
राग दोष मद मोह क्रोध वसि, आन देव मति सेव।
ब्रह्मा विष्णु महेस काम बसि, ताहि हर्यो इन एव।
दोष अठारा रहित विराजै, गुण छयालीस स्वमेव।
सब कुदेव दीसत विकारमय, साति मूर्ति जिनदेव।
'पारस' मुक्तिपथ दरसावक श्री जिनेंद पद ध्येव ॥६६॥

अपने दोषो की अनुभूति भक्त मे भगवत्प्रेम की वृद्धि करती है, इसी कारण श्रेष्ठ भक्त आत्मालोचन करते देखे जाते हैं। पार्श्वदास को तप और सयम को छोड कर विषयो और पापो मे लिप्त रहने से बडी आत्मग्लानि है —

ए तो जनम विषयन मैं खोयो, प्यास मिटी नही भोगन की।
तप सजम की राह न जानी, थिरता मानी जोवन की।
पाच पाप दुरगति के दायक, तिन मैं लगि रही मो मन की।
'पारस' चरण सरण गहि जाचत, प्राप्ति दीजिये मो धन की ॥१००॥

पार्श्वदास अपने आराध्य स यह स्वीकार करने मे कोई दुराव नही रखते कि उन्होने न तो कोई जप, तप और ध्यान किया है, और न पूजा तथा दान मे ही कोई रूचि ली है —

पूजा दान कियो कछु नाही, जप तप ध्यान न धारो।
तृष्णा वसि सोय जग भटक्यो, मैं झूठा मोह को मारो।
दोष तरफ नहिं दृष्टि दीजिये, अपनो विरद सम्हारो।
दीनानाथ विरद सुनि 'पारस' सरन गहत अब थारो ॥१६०॥

आराध्य को अपने उद्धार के लिए शीघ्र प्रवृत्त करवाने के लिए भक्त उनके द्वारा तारे गए भक्तो की नामावलि प्रस्तुत कर देते हैं। तुलसी आदि वैष्णव भक्तो ने व्याध, निषाद, जटायु, पिंगला आदि के उद्धार की चर्चा करते हुए उपास्य से अपना शीघ्र उद्धार चाहा है। जिनेन्द्र भगवान् भी जमाली, श्रेणिक, अजन, वारिषेण, गौतम आदि कितने ही भक्तो का उद्धार कर चुके हैं। अत जैन भक्तो ने उनके

'विरद' का ध्यान दिलाते हुए अपने शीघ्रभावी उद्धार की इच्छा प्रकट की है। पार्श्वदास कहते हैं :—

हम हैं पतित, पतित–पावन तुम, करुणा धर्म तिहारो।
हम हैं भक्त भक्तवच्छल तुम, अपनो जानि उबारो।
चित्त निरोधि कै निज लय लागे, कमठ कियो अघ भारो।
मन अडोल मेर सम कीनो, परम षिमा उर धारो।
अजन को अघ भजन कीनो, वारिषेण दुख टारो।
मरकट स्वान सुरग सुख थायो, अब कै हमारी है वारो ॥७७॥

अपने आराध्य के प्रति अनन्यता भक्ति भाव की चरम परणति है। इस पर आने के बाद भक्त को अपने आराध्य के अतिरिक्त दूसरा कतई नही भाता। पार्श्वदास जिनेन्द्र के अतिरिक्त दूसरे देवता की सेवा भूलकर भी नहीं करना चाहते—

सरन गही मुझि तारिहौ प्रभुजी।
आन देव मैं भूलि न सेवू, तुमारे वच उर धारिहौ ॥१२५॥

जिस प्रकार चकोरी को चन्द्रमा और मछली को पानी की निरन्तर चाह रहती है उसी प्रकार पार्श्वदास को भगवान् पार्श्वनाथ की—

चद कू ज्यू चकोरी लपन सुप लहै, बारि कू मच्छ तूं चाह तेरी।
पार्श्व तुम धारि उर माय भवनास करि, शिव लहू इतै करि गौरि मेरी।
॥१३८॥

अपने उद्धार मे विलम्ब जानकर भक्त भगवान् को उलाहना देने भी नही चूके हैं। तुलसी और सूर ने अनेकश उनके विरद को व्यगपूर्ण चुनौतिया दी हैं। पार्श्वदास जब देखते हैं कि उनके आराध्य ससार–सागर से पार होकर भव–बन्धनो से मुक्त हो गए हैं तथा अनतचतुष्ट्य से युक्त होकर मोक्ष–सुखका आनन्द भोग रहे हैं, तो उनकी बधन युक्त आत्मा तीर्थंकरो के समान होने के लिए उतावली हो जाती है। ऐसे अवसर पर पार्श्वदास आराध्य को उलाहना दिये बिना नही रहते—

आप तौ सय्या पार उतर गये हो, हम भी किंकर थारा ।

आ.प तौ अनत चतुष्टय जुन भये हो, हमरे अघ क्यू नै टाटा ।

आप तो सिव सुख अमृत पी रहे हो, हम कू क्यू जल खारा ।

आपको 'पारसदास' कहावत, इतनी लेहु विचारा ।। १२७ ।।

पार्श्वदास की दास्य भक्ति मे निष्कामता विद्यमान है —

मो तै कछु भक्ति वनत ताकरि फल जाचत हूँ,

जौ लू शिव होय तितै भक्ति ही रहौयो ।। १२० ।।

नवधा भक्ति

हिन्दी भक्ति साहित्य मे नवधा भक्ति को बडा महत्व दिया गया है । नवधा भक्ति के नौ सोपन है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पद-सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्म–निवेदन । श्रवण मे भक्त अपन आराध्य के गुणो को सुनता है तथा 'कीर्तन' द्वारा उन्हे प्रकट करता है । 'स्मरण' भक्ति मे भगवान् के गुणो का स्मरण करता है । 'पद-सेवा' का अर्थ है भगवान के चरणो की सेवा करना । 'अर्चन' और 'वन्दन' भक्ति का तात्पर्य भगवान् की पूजा और स्तुति करने से है । 'दास्य' और 'सख्य' का अर्थ है दास या सखा भाव से भगवान की पूजा करना । आत्म-निवेदन का अर्थ है आराध्य के सन्मुख अपना हृदय खोल देना । पार्श्वदास की रचनाओं मे नवधा भक्ति के लगभग सभी प्रकार मिलते हैं—

श्रवण

आन वैन न सुहावत मोकू भावै जिन गुन गान ।

पार्श्वदास जिन वच रस रसिया, पावै केवल ज्ञान ।।३१४।।

कीर्तन

थाका वार वार गुण गावा नाथ म्हा नै तारया हो सरै ।

शिवा नदन जिनराज सावरा, तुम बिन करुणा कौन करै ।।३०० ।।

स्मरण -

सुमरि सुमरि मन श्री नौकार ।

जिन सुमरे तिन ही सुख पायौ उतरे भवदधि पार ।।३०६।।

'पद सेवा' एवं 'अर्चन'

'भोर भयो मन वच तन करि श्री जिन चरणन चित ल्यावो ।
नेज त्यागि करि अंग शुद्धता विधि तैं द्रव्य बनावो ।
जल चंदन कूं आदि देय कैं, जिन पद पूज रचावो ॥५॥

वन्दन

अरजी करहूं मकाल ठाडो जिनवर मैं,
मोह कर्म अचि खैंचि काटत निज वर मैं ॥२३१॥

दास्य :

पार्श्वदास निरविघ्न भक्ति इक तो सैं चावैं हो,
तो ही जाचि दूजो किम जाचैं दास कहावैं हो ॥१८०॥

आत्म-निवेदन

मेरी तो लाज सब तुम्हारे हाथ है,
जैसे चावो तैसे राखो साँवरे ॥५६॥

दशधा भक्ति :

जैनाचार्यों ने भक्ति के बारह भेद माने हैं -सिद्ध भक्ति, श्रुत भक्ति, चारित्र भक्ति योगी भक्ति, पंचगुरु भक्ति, तीर्थंकर भक्ति, शान्ति भक्ति, समाधि भक्ति, निर्वाण भक्ति, नन्दीश्वर भक्ति और चैत्य भक्ति। उक्त भक्तियो मे से तीर्थंकर भक्ति और समाधि भक्ति को अन्य भक्तियो मे अन्तर्भूत मान लेने के कारण भक्ति के दस ही भेदो की व्यापक मान्यता है। डा प्रेमसागर जैन ने "जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि" मे आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य पूज्यपाद, आचार्य समन्तभद्र, आचार्य सोमदेव आदि जैनाचार्यों के काव्य मे उपलब्ध दशधा भक्ति का उल्लेख किया है। सिद्ध भक्ति और नंदीश्वर भक्ति के अतिरिक्त दशधा भक्ति के अन्य सभी भेद जैन पद साहित्य मे विद्यमान हैं। पार्श्वदास की पदावली मे दशधा भक्ति के कुछ पद द्रष्टव्य हैं —

श्रुत भक्ति :

जैन पद साहित्य मे श्रुत भक्ति श्रुतदेवी अथवा श्रुतधरो की वन्दना की अपेक्षा जैन शास्त्रो के प्रति पूज्य भाव के रूप मे ही दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन काल से ही जैनो मे भगवान् जिनेन्द्र की मूर्ति के समान शास्त्रो की भी प्रतिष्ठा होने लग गई थी। मध्यकाल मे प्रादुर्भूत तारण पथ नामक आम्नाय ने तो अर्हन्त की मूर्ति को न पूजकर शास्त्रो की पूजा मे ही विश्वास किया। तेरहपथ आम्नाय मे अर्हन्त और शास्त्रो की भक्ति समानान्तर होकर चले। द्यानतराय, जयचन्द आदि कवियो की तरह महाकवि पार्श्वदास ने अपने कई पदो मे मिथ्यात्व का निवारण और मोक्षमार्ग का प्रदर्शन करने वाली जिनवाणी की वन्दना की है—

वदू जिनवाणी परमानन्द निधानी।
अरथ समग्र धारि जिन मुख तै, गणधर गू थि वखानी।
स्यादवाद निरवाधित पर तै, नय परमाण जुतानी।
स्यो मारग की राह बतावै,सप्त तत्व दरसानी ॥१७०॥

चारित्र भक्ति :

चारित्र की महिमा का वर्णन करना, चारित्र भक्ति है। महाकवि पार्श्वदास ने 'चारित्र जयमाल' शीर्षक से लिखे अपने २६ पदो मे चारित्र के विभिन्न अगो सम्यक् दर्शन, शील, ज्ञान, सवेग, तप आदि की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उनके आचरण को मुक्तिदाता कहा है। सम्यक दर्शन की उपयोगिता के सम्बन्ध मे वे कहते हैं —

सम्यक् दर्शन शुद्धता शिव की दातार।
याही तै पार्श्व सही, निज ब्रह्म विचार।
या विन पर परिणति मई, भरमे ससार।
कारी नागिन समान है, सब विषय विकार।
ताय बुझावण मेघ है, आताप निवार ॥१॥२॥

योगी-भक्ति :

आत्म स्वरूप मे अवस्थित होना योग है। डा प्रेमसागर जैन ने 'जैन भक्ति

काव्य की पृष्ठभूमि' मे 'समाधि' और 'ध्यान' तथा 'योगी' और 'ध्यानी' की एकता प्रतिपादित करते हुए 'धनञ्जय नाममाला' के आधार पर ऋषि, मुनि, यति, भिक्षु, तापस, सशित, व्रती तपस्वी, सयमी, वर्णी और साधु को योगी के ही पर्यायवाची शब्द होने का उल्लेख किया है। इनके प्रति किया गया भक्ति-निवेदन अथवा महिमा-गान योगी-भक्ति है। आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य पूज्यपाद ने प्राकृत और सस्कृत भाषा मे लिखी गई अपनी 'योगी भक्ति' मे क्रमश योगियो की महिमा और उनके द्वारा किए गए विविध तपो का वर्णन किया है। जैन पद साहित्य मे मुनियो की महिमा और कष्टकारी तप दोनो का ही वर्णन मिलता है। महाकवि पार्श्वदास मुनि-चरणो के वन्दन मे वडा आत्मसुख अनुभव करते है—

मुनिवर वदन जावू , जावू रे तिहुँ वेना ।
मुनिवर वदत सब दु ख भजत, आत्मीक सुख पावू ।
अनादिकाल तैं कबु न लख्यो कोवू, सो सुखमय दरसावू ।
'पारस' त्रभुवन वदत मुनि पद, पाय न जग भरमावू ॥४४॥

आचार्य भक्ति:

आचार्य कुन्दकुन्द ने ज्ञानी, सयमी, सुवीतरागी तथा साधारण मुनियो के शिक्षक आचार्यों को जिनेन्द्रदेव के सदृश माना है। इन आचार्यों मे शुद्ध भाव से अनुराग रखना आचार्य–भक्ति कही गई हैं। आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य पूज्यपाद और श्री यतिवृषभ ने आचार्यों के विशद गुणो का वर्णन करते हुए उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की हैं। पार्श्वदास ने आचार्य की महिमा गाते हुए उनके दर्शन, गुण-गान और उपदेशश्रवण मे अपनी अभिलाषा प्रकट की है—

श्री आचार्य भक्ति मैं भाव कबू नहि कीनो, अब करि भायी ।
एक वार मन वच तन कीया, फिर न भ्रमैं निठ मिल्यौ दाव ।
श्री आचार्य प्रत्यक्ष न दीसै, तो धरि उनके वचन मैं चाव ।
आचारिज गुण को न कहि सकै, वेग हि करै मुक्ति को राव ।
'पारस' जग मे आचारिज वच, को करतो कुगति बचाव ॥१०॥२॥

पंच परमेष्ठी-भक्ति :

अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और लोक के सर्व-साधु पचपरमेष्ठी कहलाते हैं। जैनो के प्रसिद्ध 'णमोकार मत्र' मे पचपरमेष्ठी को ही नमस्कार किया गया है। जैन पद साहित्य मे णमोकार मन्त्र द्वारा तारे गए प्राणियो की चर्चा करते हुए उसकी महत्ता प्रतिपादित की गई है। इस 'णमोकार मन्त्र' के अनवरत स्मरण मे ही पचपरमेष्ठी की भक्ति समाहित है। पार्श्वदास कहते हैं—

सुमरि सुमरि मन श्री नौकार।
जिन सुमरे तिन ही सुख ही पायौ, उतरे भवदधि पार।
अन्जन अन्जन सुमरत भयो तिरज, स्वान, सिंघ मजार।
और सुनैं आगमैं वहु जिय सुमरण ही आधार।
बिन सुमरणें भरमण ही करिहै, रुलिहै भवदधि लार।
'पारस' सुमरण सार एक है या ससार मझार ॥३८६॥

तीर्थंकर भक्ति :

डॉ. प्रेमसागर जैन ने धनञ्जय, आचार्य श्रुतसागर, योगीन्दु आदि कई जैनाचार्यों की तीर्थंकर सम्बन्धी परिभाषाओ पर विचार करते हुए संसार के आवागमन से मुक्त कराने वाले निमित्त के विधाता को तीर्थंकर कहा है।[11] जैन परम्परा के अनुसार भूत, भविष्य और वर्त्तमान तीन कालो मे से प्रत्येक मे २४ तीर्थंकर होते हैं। भारत की वर्त्तमान काल की चौवीसी मे से अपेक्षाकृत भगवान् आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के चरणों मे जैनभक्तो की अधिक श्रद्धा रही है। जैन पद-रचयिताओ मे महाकवि पार्श्वदास ही किसी एक तीर्थंकर के एकनिष्ठ भक्त रहे हैं। उनका सर्वाधिक पद साहित्य भगवान् पार्श्वनाथ के महिमागान तथा उनके प्रति भक्तिनिवेदन मे समर्पित हुआ है।

जिनदजी विरद सुन्यो थाको वाको
उपकार करो क्यू ना म्हाको। टेक॥
अ जन से तुम अधम उधारे, कीनो सब अघ साको।
चाडाल दह माय पर्‌या को, अतिसय प्रगट्यो वाको।

रघुपति रानी परी अग्नि विच, नाम लेय इक थाको।
अग्निकुन्ड सब जलि डार्यो, जस प्रगटायो ताको।
त्यारे बहुत सुनी आगम मैं, कहता अन्त न जाको।
'पारसदास' कहाय कोण पै, जाय कहावू काको ।। ११६ ।।

शांति भक्ति :

शांति भक्ति, शांति प्राप्त करने के लिए की गई भक्ति है। २४ तीर्थंकरो में से सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ विशिष्ट रूप से शांति प्रदायक माने गए हैं। अतः शान्तिभक्ति परक पद भगवान् शान्तिनाथ की स्तुति मे ही अधिक कहे गए हैं। पार्श्वदास भगवान् शान्तिनाथ की महिमा का गान करते हुए कहते हैं—

श्री सांतिनाथ महाराज के पद पूजो रे भाई।
सातिनाथ को नाम लेत अघ, सात होत जगमाहीं ।।१५२।।

समाधि-भक्ति :

समाधिपूर्वक प्राणों का विसर्जन करना अर्थात् समाधि मरण की याचना समाधि-भक्ति कहलाती है। आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य पूज्यपाद, शिवार्यकोटि ने अपनी रचनाओ मे विशुद्ध समाधि-मरण चाहा है। जैन पद साहित्य मे समाधि-भक्ति सम्बन्धी सर्वाधिक पद पार्श्वदास पदावली में ही हैं। महाकवि पार्श्वदास ने अपनी इच्छानुसार अजमेर निवासी सेठ मूलचद सोनी के यहा समाधि-मरण लिया था। उनकी दृष्टि मे समाधि अशुभ का विनाश कर जन्म-मरण से छुटकारा दिलाने का महत्वपूर्ण साधन है। अत वह समाधि-मरण के लिए कृतसकल्प हैं —

अन्त समय निज पद मय ह्वै सब तजि मरना अति भारी है।
मरे अनतवार गाफिल ह्वै, या तो भूल हमारी है।
मरना है अवश्य न रहैंगे, गाफिल रहना ख्वारी है।
'पारस' प्रभु सेवा फल जा कछु, धरी धरोहर म्हारी है।
अन्त समय पडित मृति चाहू, अब कै मदत तुमारी है।

निर्वाण भक्ति :

तीर्थंकरो तथा उत्तम कोटि के वीतरागियो का निधन 'निर्वाण' कहलाता है। जैन शास्त्रो मे 'निर्वाण' 'मोक्ष' 'शिवत्व' पर्यायवाची शब्द ही हैं। मोक्षप्राप्ति वीत-रागियो एव उनके मोक्षस्थलो की स्तुति करना अथवा मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा करना निर्वाण भक्ति है। जैन पद साहित्य में मोक्षस्थलो अथवा तीर्थों की अधिक चर्चा नही हुई, किन्तु मोक्ष के प्रति जिनेद्र भगवान् के सामने ही श्रद्धा अभिव्यक्त की गई है। महाकवि पार्श्वदास शिवमार्ग को पाने के लिए बड़े अधीर हैं —

ऊजरो पथ है शिव ओरी को, जिन ओरी को।
पाच पाप का त्याग जास मैं, संग्रह समता गोरी को।
समिति गुप्त सू प्रीति वढावै।
तज्यो असजम ' थोरी 'को।
दुल्लभ मिल्यो तजू नही 'पारस'
ज्यों चिन्तमणि जोहरी को ।।५६।।

चैत्य भक्ति :

डा० प्रेमसागर जैन के अनुसार चैत्य वृक्ष, चैत्य सदन, प्रतिमा, बिम्ब और मन्दिरो की पूजा-अर्चा चैत्य भक्ति कहलाती है। चैत्य भक्ति का प्रारम्भ गौतम गण-धर के 'जयति भगवान्' से माना जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य पूज्यपाद, श्रीमच्छान्तिसूरि, श्रीदेवेन्दसूरि आदि सभी जैनाचार्यों ने कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्या-लयो एव जिनप्रतिमाओ की वदना की है।

जैन पद साहित्य मे चैत्य सदन, प्रतिमा, बिम्ब अथवा चैत्य वृक्ष की अपेक्षा मन्दिरो की भक्ति से सम्बन्धित पद ही अधिक हैं। मध्य युग मे अध्यात्म शैली के वीतरागी गृहस्थ मन्दिरो मे एकत्र होकर ज्ञान-चर्चा तथा साहित्य रचना किया करते थे, अत जिन-मन्दिर भी उनके आराध्य बन गये। पार्श्वदास को तेरहपथी मन्दिर जयपुर के अतिरिक्त चिमत्कार मन्दिर सवाईमाधोपुर बड़ा भाया, अत उनकी स्तुति मे उन्होने सस्कृत मे भी स्तोत्र लिखे। जिन मन्दिरो की महिमा उन्होंने इन शब्दो मे प्रकट की है—

जिन मन्दिर चलि सुभ उपजावै, अघ विनसावै ।
छ सूना के पाप मिटावै, षोटा विकलप टलि जावै ।
आवस्यक पट् कर्म सधै जहा, बहु श्रुति सग मिलि जावै।
कलह हास्य कौतक निद्रा सब, अयू आप हो रुकि जावै ।
'पारस' निज हित सहज बनत जहा, ज्ञान ध्यान दृग बढि जावै ।।३२६।।

जीवन दर्शन :

लोक-जीवन का उन्नयन भारतीय साहित्यकारो का सदैव ही आदर्श रहा । मनु, चाणक्य, भर्तृहरि आदि सस्कृत के अनेक कवियो का तो प्रमुख लक्ष्य ही लोक-जीवन रहा है, तुलसी, रहीम और सूर आदि हिन्दी के कवियो की रचनाओ में भी लोकोपयोगी सूक्तियां पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान हैं । भगवान् महावीर ने अपने धर्म की प्रतिष्ठा ही चारित्र के बल पर की । इसी कारण हिन्दी के अन्य कवियो की अपेक्षा जैन कवियो ने जीवन को अधिक परखा है । कविवर पार्श्वदास का व्यक्तित्व अनेक गुणो से समन्वित था । वे चाहते थे कि मानव-जीवन श्रेष्ठ बने । सुखी एव लोकोपयोगी जीवन का निर्माण करने वाले सिद्धात उनके काव्य मे यत्र तत्र बिखरे पडे हैं ।

जैनाचार का प्राण अहिंसा धर्म है । यही मानव का सच्चा कर्म है । जैन मत 'जीओ और जीने दो' के सिद्धात मे विश्वास करता हुआ सुखी जीवन के लिए यह अनिवार्य मानता है कि ससार के समस्त जीवो को सुखपूर्वक जीने दिया जाये । पार्श्वदास भी सभी जीवो पर दया रखने तथा हिंसा न करने का निर्देश देते हैं :—

हा रे ज्ञानवारे जरा मेरी सुनते जय्यो, हिंसा सेती डरते रय्यो ।
जैन धरम मे हिंसा बरजी, दया भाव अनुसरते रय्यो ।।३६।।

जैनाचार का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धात अपरिग्रहवाद है, जिसका अर्थ है अधिक सचय न करना । वस्तुतः आज का समाजवाद अपरिग्रहवाद का ही आधुनिक रूप है । सभी प्राणियो को सुख मिलने तथा समाज मे असन्तोष न बढने की भावना से भगवान महावीर ने २५०० वर्ष पहले ही अपरिग्रह के रूप मे जीने की कला बतला दी थी । पार्श्वदास भी परिग्रह की प्रवृत्ति को दु:खदायी ठहराते हैं —

अकिंचन धरम धरि भायी।

परिग्रह की ममता दुखदायी ॥४०॥

परिग्रह अथवा सचय की प्रवृत्ति का विनाश या अभाव तभी होगा, जब भौतिक वस्तुओ के प्रति मोह नही रहेगा। यदि धन, धाम, स्त्री, पुत्र, परिजन आदि मे ममत्व रहा तो व्यक्ति निश्चिन्त होकर आत्म-सुख प्राप्त नही कर सकेगा। पार्श्वदास मोह के दुष्परिणाम को इस रूप मे प्रस्तुत करते हैं —

मोह ठग मो सिर भुरकी डारी, याही तैं भयी धुवारी।

भूलि गयो जिन भूप रूप मम, पर मैं निजता धारी।

इष्ट अनिष्ट मानि धरि रति, रिशि वृत्ति गहि अवकारी।

ताही करि परिवर्तन भुगते, यादि करत भय भारी ॥२६५॥

लौकिक वस्तुओं की क्षणभगुरता को भुलाकर उन पर झूठा गर्व करने का विरोध सभी मनीषियो ने किया है। पार्श्वदास भी परिवर्तनशील ससार में धन या शक्ति पर गर्व करना निरर्थक मानते हैं .—

काहे गभ करत है झूठा है ससार।

धनी होत खिण माय दरिद्री, निरधन धन भडार।

टेडे चालत पेच सवारत, ते डोलत पर द्वार ॥२५३॥

उनकी दृष्टि मे अभिमान व्यक्ति मे क्रोध, लोभ, छल, मोह आदि दुर्गुण तो उत्पन्न करता ही है, किन्तु उसकी बुद्धि को भी भ्रमित कर देता है[१४]। अत. निरभिमानता या मार्दव धर्म ही सच्चे सुख का स्त्रोत है।

समाज मे विश्वास और सम्मान पाने के लिए पार्श्वदास ने जैनाचार के प्रमुख तत्व सत्य की अनिवार्यता भी अनुभव की है। व्यावहारिक जीवन मे सत्य की सफलता पर उन्हें पूर्ण विश्वास भी है —

अगनि तो साम्यता पावै, सरप हू माल हो आवै।

सत्य तैं होत थल पनी, सुधा सम जहर होय जानी ॥१८६॥

जैन धर्म मे सात व्यसनो के त्याग पर बडा बल दिया है। ये सात व्यसन हैं— द्यूतक्रीडा, मासभक्षरण, मदिरापान, वेश्यागमन, शिकार, चोरी और परनारी सेवन। पार्श्वदास ने उक्त व्यसनो के सेवन करने वाले प्राणियो के भयावह कष्टो की चर्चा करते हुए इनसे बचते रहने को कडी चेतावनी दी है।[१५] इन सात व्यसनो मे भी उन्होने परनारी-गमन और चोरी के दुष्परिणामो को अधिक भयानक रूप मे चित्रित किया है। चोरी करने से व्यक्ति कितना तिरस्कार पाता है? इस विषय मे वे कहते हैं—

हितू मिलापी लखि करि लाजैं, सुख सुपनैं नहिं छाजैं।
राजा दडै लोका मडै, सज्जन पच विहडै।
पञ्च भेद जुत समझि तजो, ज्यू पद्धति थारी मडै।
प्राण समान जाणि धन परको, मति कोई हरण विचारो।
हिंसा तैं भी अधिक पाप यह, भाखी श्री गणधारो ॥२५२॥

विषय-सेवन मे रत जीवात्मा आत्म-स्वरूप को किञ्चिन्मात्र भी पहचानने का प्रयत्न नही करता, इसलिए जैन धर्म में विषयो के त्याग पर बडा बल दिया गया है। व्रत, उपवास, दान और ब्रह्मचर्य-पालन मे जैन धर्मावलम्बियों की दृढ आस्था भी इन्द्रिय-विषयो से निवृत्त होते रहने की भावना से है। पार्श्वदास कहते हैं कि स्पर्श, स्वाद, सुगन्ध-ग्रहण, दर्शन एव श्रवण पाचो विषयो मे से एक-एक का सेवन ही क्रमश रावण, मछली, भ्रमर, पतगा और मृग का विनाश कर देता है, तो पाचों विषयो का एक साथ सेवन करने वाले दुष्ट मनुष्य के विनाश मे तो कुछ भी देर नहीं लगेगी —

पाचू सेवत आनद मानत, सो सठ जानो रे भाई।
विनसत वार लगै नही इनकू, यातैं विलम न लगायी।
तजि इन पार्श्व भजो शिवरायी, फिर कब अवसर आयी ॥१८८॥

इन इन्द्रिय-विषयो से मन को विरत करने का एक ही उपाय सयम है, और वह केवल मानव-जीवन में ही समव है। पार्श्वदास देवो के लिए भी दुर्लभ मानव जीवन मे दृढतापूर्वक सयम धारण करने की प्रेरणा देते हैं :—

इन्द्र चहै या लोक कू रे जीया, सजम कारण एक।
'पारस' पायो सहज मैं रे जीया, सो धारो तजि टेक ॥२३६॥

जैन दर्शन और जैनाचार दोनो मे ही 'समता' का बडा महत्व है। बन्धनयुक्त आत्मा अपने मुक्त स्वरूप को पहचानने की ओर तभी बढ सकेगा, जब उसमे समता-भाव का उदय होगा। किन्तु समता भाव को प्राप्त करने के लिए राग द्वेष पर विजय पा लेनी होगी। पार्श्वदास कहते है —

राग द्वेष तजि होय समतामय ये वातें सुपयानी।
'पारस' निज स्वरूप ही सुखमय सम्यक गुरु तें जानी ॥३८॥

पार्श्वदास हृदय की पवित्रता के बडे समर्थक थे। यद्यपि अपने आचार-दर्शन मे उन्होने पूजा-पाठ, शास्त्र-पठन तीर्थ-यात्रा आदि की भी चर्चा की है, किन्तु इन सबको सफलता के लिए हृदय की निर्मलता अनिवार्य शर्त है। वे कहते हैं कि मुक्ति-साधना के लिए वन मे जाना, भस्म रमाना, यज्ञ, होम, तर्पण आदि करना, देव के समक्ष गाना-बजाना थोथे ही रह जायेंगे, यदि हृदय को निर्मल नही बनाया तो—

बाहिर क्रियाकाड कीयै तै पर ही पर दरसावै।
अतर सुद्ध किये बिन सब ही थोथा उडि उडि जावै। २१६॥

साधना और लोक व्यवहार के क्षेत्र मे सभी सतो ने सत्सग को बडा महत्व दिया। सत्सग के बिना जीवन ही अधूरा है। अच्छे व्यक्तियों की अवहेलना कर मूर्ख और अवगुणी व्यक्तियो के पास क्षणभर बैठने मे ही व्यक्ति के सभी गुण नष्ट हो सकते हैं। पार्श्वदास समझते हैं कि सत्सग ही विषय, कषाय एव सप्त व्यसनो से छुटकारा दिलाने वाला है। वही उनकी दृष्टि मे सम, यम और शील को बताने वाला है। सत्सग ही दुर्बुद्धि का नाश कर सुबुद्धि प्रदान करता है। यही जिनवाणी सुनने का अवसर प्रदान करता है[१६]। सत्य तो यह है

और जिते परसग ही बोवै कुगति मझार।
'पारस' तारनहार है सत्सग विचार ॥२२३॥

गीति-कला :

गीतिकाव्य की परम्परा सस्कृत एव प्राकृत के साहित्य मे विकसित होती हुई अपभ्रंश और हिन्दी मे उत्तरोत्तर बढी है। अपभ्रंश साहित्य मे 'चाचरि' 'फागु',

'वेल', 'रासो' एव 'चूनडी' सज्ञक रचनाओ मे जैन कवियो के प्रबन्धगीत पर्याप्त मात्रा मे हैं, किन्तु उनमे आत्माभिव्यक्ति की अपेक्षा किसी चरित्र अथवा धार्मिक तत्व का विवेचन है। आत्माभिव्यक्ति के लिए जैन कवियो ने भी गीतिकाव्य की सर्वोत्कृष्ट शैली पद को अपनाया है। कविवर पार्श्वदास के आविर्भाव के समय (सवत् १८७५-१९४०) तक जगतराम बुधजन, द्यानतराय आदि कवि पर्याप्त पद साहित्य लिख चुके थे, अत पार्श्वदास निगोत्या को जैन पद साहित्य की विकसित परम्परा मिली। गीतिकाव्य के सभी तत्व आत्माभिव्यजन, अनुभूति की पूर्णता, भावो का एक्य सगीतात्मकता तथा माधुर्यपूर्ण भाषा पार्श्वदास पदावली मे विद्यमान हैं।

आत्माभिव्यंजन :

व्यक्तिगत सुख-दु ख की अभूतियो को अभिव्यक्त करना गीतकाव्य की प्रमुख विशेषता है। पार्श्वदास के पदो मे तीर्थंकर पार्श्वनाथ के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा, दैन्य तथा सासारिक आसक्ति के प्रति खीझ सर्वत्र देखी जा सकती है। पार्श्वदास के-पदो मे जैनधर्म, शास्त्र, मुनियो व तीर्थों के प्रति उनके अनन्य अनुराग का भी बोध होता है। कवि की उल्लासपूर्ण अनुभूतिया आदिनाथ और महावीर भगवान के जन्म-कल्याणक के उत्सवो मे अभिव्यजित हुई हैं। राजमती के विरह-वर्णन मे कवि की अपनी ही वेदना और कसक अन्तर्निहित है।

पार्श्वदास गृहस्थ अवस्था मे भी परम जिनभक्त थे। भगवान् पार्श्वनाथ के चरणो मे उनकी अतिशय प्रीति थी। अत उनकी भक्ति मे बाधक, क्रोध, लोभ, छल, अभिमान आदि दुर्गुणो को दूर करने की ओर उनका ध्यान सदैव रहा। उनके कई पदो मे दुर्गुणो से ग्रस्त उनकी आत्मा आर्तभाव से भगवान् पार्श्वनाथ का आश्रय तकती हुई देखी जाती है—

अहो पास जिनराज दास मोय, अपनो जाणि उबारो।
मेरी निज निधि कर्म ठगत है, इनको सङ्ग निवारो।
विषय चाटि वसि करि कै मोकू, ध्यान छुडावत थारो।
मोह तत्व कू जोर भुलावत, याको सङ्ग विडारो।
क्रोध लोभ छल मान सकल तैं, मो कू तो अब टारो।
इन सगि दु ख सहे बहुतेरे, रूप न जाण्यो थारो ।।२६।।

पार्श्वदास के प्राय सभी पदो मे व्यक्तिगत तन्मयता और उल्लास के दर्शन होते हैं। तुलसी और सूर के पदो की भाति समाज-चित्रण तो पार्श्वदास के पदो मे नही, किन्तु दार्शनिक विवेचन अवश्य हुआ है। पार्श्वदास ने चेतन (आत्मा) को पति, कषाय, मायादि व मुक्ति को कुमति-सुमति नारिया कहकर रूपको के माध्यम से दार्शनिक तत्वो का विश्लेषण किया है, जिससे उनमें जटिलता और दुरूहता की अपेक्षा सरसता और रोचकता है।

अनुभूति की पूर्णता :

गीतिकाव्य की अनुभूति बडी भावमयी और सबल होती है। भावुक कवि का अन्तर्मन जब अनुभूतियो से भरपूर हो जाता है, तब अनुभूतिया छलक पडती हैं और गीतिकाव्य का जन्म होता है। पार्श्वदास अत्यन्त भावुक कवि हैं। पार्श्वनाथ जी के नामस्मरण अथवा दर्शन मात्र से वे भावनाओ के सागर मे डूब जाते हैं, अत उनके पदो मे बडा भावावेश पाया जाता है

> तुम विन तीन लोक मैं मोरो, वाली वारिस न कोयी।
> जी दीसैं सो सकल विनश्वर, वसुविधि वसि दोसैं वोयी।
> का पै जावू दीसैं न कोई, पराधीनता विन ओयी।
> ज्यो सागर विचि नव का पछी, पर सरण विन मैं सोयी।
> मैं तुम विन भरमे दुष भुगते, तुम तैं ज्ञानी ना कोयी।
> अव मम दु:ख मेटो सुष दीजे, या तैं सरण गहू योयी ॥२७२॥

प्रस्तुत पद मे अनन्य भावना अन्तर्निहित है। ससार मे भ्रमण करने के उपरान्त कवि उसकी नश्वरता और सच्चा सुख देने की असमर्थता को भली भाति जान चुका है, इसी कारण उसे तीन लोको मे एक मात्र रक्षक पार्श्वनाथ के प्रति अनन्यता की पूर्ण अनुभूति हुई है।

भावों का एक्य :

गीत के अन्तर्गत अभिव्यक्त भाव के स्थायी प्रभाव की दृष्टि से उसका अकेलापन आवश्यक है। यदि एक ही गीत मे कई भाव होंगे तो वे अपनी विशृङ्खलता के

कारण स्थायी प्रभाव नही डाल सकेंगे तथा पाठक या श्रोता के हृदय का स्पर्श नही कर सकेंगे। पाठक को तल्लीन एव भाव-विभोर करने के लिए अनिवार्य है कि गीतो में भावों का ऐक्य अथवा अन्विति हो। भावो की अन्विति पार्श्वदास के सभी पदो मे मिलेगी, कही-कही एक ही भाव की पुष्टि अनेक प्रकार से की गई है—

जिनंद जी विरद सुन्यो थाको वाको।
उपकार करो क्यू ना म्हाको ।।टेक।।
अजन से तुम अधम उधारे, कीनो सब अघ साको।
चाडाल दह माय पर्‌या को, अतिसय प्रगट्यो वाको।
रघुपति रानी परी अग्नि विचि, नाम लेय इक थाको।
अग्निकुड सब जलि डार्‌यो, जस प्रगटायो ताको।
त्यारे बहुत सुनी आगम मैं, कहता अन्त न जाको।
'पारसदास' क्हाय कोण पै जाय कहावू काको ।।११६।।

इस पद मे पार्श्वदास की उद्धार करने की भावना का समर्थन सीता, अजन और चाडाल आदि भक्तो की कथाओ के माध्यम से किया गया है, जिससे वह पर्याप्त पुष्ट हो जाने के कारण प्रभावकारी हो गई है।

संगीतात्मकता :

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का सगीत से घनिष्ठ सम्बन्ध था। कबीर, सूरदास, तुलसी और मीरा आदि कवि भक्त होने के साथ-साथ सगीत के अच्छे ज्ञाता थे। विविध मन्दिरो और धार्मिक पर्वों मे इनके पदो को गाती हुई जनता आज भी भाव-विभोर होती है। बनारसीदास, बुधजन, द्यानतराय आदि सभी जैन भक्तो का भी सगीत से बडा सम्बन्ध रहा। अकेले पार्श्वदास ने ही पार्श्वदास पदावली मे ४३ राग और विभिन्न रागनियो का प्रयोग किया है। राग-रागनियो के साथ उनके तालो की भी चर्चा की है, जो कवि की सगीत सम्बन्धी गूढ जानकारी का परिचायक है। इन रागो मे उपयुक्त भावनायें ही पिरोई गई हैं। मन-प्रबोधन कवि ने सोरठ और भैरू रागो मे अधिक किया है। उनकी विरह-भावनायें भैरवी, खमावच, कान्हडो रागो मे अभिव्यजित हुई हैं। पार्श्वदास ने अपनी दीनता और विनय का निवेदन करने के लिए अधिकतर अडाणो, विहाग और ईमन रागो का सहारा लिया है।

गीतिकाव्य के प्रमुख रस शान्त, शृङ्गार और वात्सल्व रहे हैं। पार्श्वदास पदावली के प्रमुख रस भी यही हैं। नेमिनाथ के गिरिनार चले जाने पर राजमती के विलाप के चित्रण मे कवि ने बडी मर्मस्पर्शी अनुभूतिया अभिव्यक्त की हैं—

सावरे नै कोई आनि कै मिलावै,

तोरन तै रथ फेरि चले गढ गिरनारी तूं मुडावै ।।३११।।

सूर और तुलसी की तरह अपने इष्ट की बाल-लीलाओ का चित्रण जैन भक्तो का अभीष्ट नही रहा। अत बाल्यजीवन की केलिपूर्ण भावनाओ की अभिव्यक्ति जितनी सूरदास मे है अथवा थोडी सी तुलसीदास मे है, वह जैन भक्तो मे *नगण्य* सी है। उन्होंने जन्मकल्याणक सम्बन्धी कुछ पदो मे तीर्थंकरो के माता-पिता का उल्लेख तथा जन्मोत्सव मात्र का चित्रण किया है, किन्तु पार्श्वदास की दृष्टि बालक नेमिनाथ के झूलने तक अवश्य पहुच गई है—

श्री समुदविजै जी रो ललना पलना मे झूलै री।

घनद रचित रतनन रो पलना रेसम डोरी लगाई।

सक्र सची जुत विनय देवगन, होडाहोड झुलाई।

मात तात उर हरष न मावत, उठि उठि लेत बलाई ।।३५४।।

ससार की असारता, परिजनो की स्वार्थपरता, घन-वैभव की क्षणभगुरता तथा कायाकष्टो की प्रचडता के चित्रण मे निर्वेदमूलक उक्तिया सत और वैष्णव भक्तो के समान पार्श्वदास के अनेक पदो मे बिखरी पडी हैं। भयानक और वीभत्स रस गीतिकाव्य के अनुकूल न होने के कारण पार्श्वदास के काव्य मे एक दो स्थान पर ही प्रयुक्त हुए हैं। वीर और अद्भुत रस का पार्श्वदास पदावली मे पूर्ण अभाव है।

सङ्गीत की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए भावों की मधुरता के अतिरिक्त पदो का सक्षिप्त होना भी अनिवार्य है। सूर और तुलसी के काव्य मे भी कई पद बड़े हो गए हैं, किन्तु ४२५ पदो की रचना मे भी पार्श्वदास का कोई पद विस्तृत नही हुआ।

माधुर्यपूर्ण भाषा :

गीति काव्य की श्रेष्ठता के लिए मधुर, कर्णप्रिय, सरस एव सरल भाषा का

होना आवश्यक है। अपनी मधुरता और सरसता के कारण व्रजभाषा ही समस्त गीतिकाव्य का स्तम्भ रही है। पार्श्वदास की भाषा व्रज मिश्रित ढूढाडी है। उनके कई पद पजाबी, रेखता और गुजराती मे भी लिखे गए हैं। इन भाषाओ के माध्यम से अपनी कोमल भावनाओ को अभिव्यक्त करने मे पार्श्वदास ने भारी सफलता प्राप्त की है। उन्होने अपनी भाषा को न तुलसीदास की तरह सस्कृत शब्दो के व्यापक प्रयोग से बोझिल बनाया है और न कबीर आदि निर्गुण सतो की तरह देशज शब्दो की भरमार से दुरूह और जटिल ही। सूर और मीरा की तरह पार्श्वदास की भाषा गीतिकाव्य के अनुकूल बडी प्रवाहमयी है। उनका शब्द-चयन प्रशसनीय है। सगीत-मयी लय को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए पार्श्वदास ने शब्दो को काफी तोडा-मरोडा है। कही वे शब्दो मे मधुरता का भाव भरने के लिए प्रत्यय जोडकर उन्हे विकृत करते हैं तो कही सरलता के लिए उनके सयुक्त रूप को भंग कर देते हैं। शब्दो का लोचयुक्त प्रयोग उनका अभीष्ट है। पार्श्वदास के शब्द-चयन की विशेषताओ के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

'यो' प्रत्ययान्त शब्द —खटक्यो, सटक्यो, पटक्यो।
'या' प्रत्ययान्त शब्द —अरजीया (अर्जी), गतिया, बतिया, मतिया।
'ड' 'डी' 'वा' प्रत्ययो का प्रयोग —दारुडी, सुज्ञानीडा, बीनतडी, ढिगवा, मनवा।
सयुक्त वर्णों का लोप, उछव (उत्सव), दिढता।
सयुक्त वर्णो का अमीलित रूप—सपरस (स्पर्श) सुवरण।
शब्दो का लोचयुक्त प्रयोग—मुतलब, मोरी, चावू (चाहू), पावू (पाऊ)।
अनुस्वार युक्त दीर्घ स्वरो का प्रयोग—कदमा, सुरगा।

उपयुक्त शब्द-चयन के अतिरिक्त पार्श्वदास ने अपने पदो मे संगीत की ध्वनि उत्पन्न करने वाले 'रे' 'री' 'हे री' आदि शब्दो का भी प्रयोग किया है।

समष्टि रूप मे, गीतिकाव्य के सभी तत्वो की दृष्टि से 'पार्श्वदास पदावली' गीतिकाव्य की एक सफल कृति है और अभी तक अज्ञात कवि पार्श्वदास हिन्दी के श्रेष्ठतम गीतिकारो में से एक हैं।

अध्यात्म, आराध्य, भक्ति, जीवन-दर्शन तथा गीतिकला आदि विभिन्न दृष्टि-बिन्दुओ से पार्श्वदास पदावली की समीक्षा करने पर स्पष्ट है कि पार्श्वदास अपने युग

के श्रेष्ठ कवि, तत्वचिंतक एव विचारक थे। व्यक्तिगत साधना के अतिरिक्त लोकोपकार की भावना भी उनमे व्याप्त थी। हिन्दी काव्य मे उनका व्यक्तित्व कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि विशिष्ट कवियो के समकक्ष ही महत्वपूर्ण स्थान पाने का अधिकारी है।

---

१. वीरवाणी, वर्ष १, अङ्क १७, ३ दिसम्बर, १६४७, पृष्ठ २८५।
२ सब कुदेव दीसत विकारमय, सान्तिमूर्ति जिनदेव ॥६६॥
३ पार्श्वदास पदावली पद १०१
४ वही , पद १८०
५ जाका तन की छबि कू निरखत कोटि भानु हू लजायी ॥१५०॥
६ पार्श्वदास पदावली, पद १०१
७ चंद चकोर मोर घन तिमि जल, यो ऋषि मुनि सब ध्यावै ॥१०६॥
८. वही , पद १६५
६. वही , पद ७७
१० जन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, पृष्ठ १२
११ वही , पृष्ठ १०६
१२ वही , पृष्ठ १३८
१३ वही , पृष्ठ १३८
१४ पार्श्वदास पदावली, पद १७६
१५ वही , पद १६६
१६ वही , पद ५५

— ० —

भूमिका,

पदावली पाठ-सम्पादन

अभी तक 'पारस विलास' की छह प्रतिया प्राप्त हुई हैं। पार्श्वदास की पदावली के पाठ-सम्पादन मे इनमे से से चुनी हुई तीन प्रतिया उपयोग मे लाई गई हैं। सभी प्राप्त प्रतियो का विवरण इस प्रकार है :—

१ प्रति 'त'— यह प्रति तेरह पथी मन्दिर टोक मे उपलब्ध है। प्रति का आकार ११"×६½" इ च है। इसकी पृष्ठसख्या १६२ है। प्रत्येक पृष्ठ में १४ पक्तिया हैं। प्रत्येक पक्ति मे लगभग ४० अक्षर हैं। पृष्ठो के दोनो ओर १½ इ च का हासिया छूटा हुआ है। इस प्रति मे 'पारस विलास, अपनी संम्पूर्ण स्थिति मे है' किन्तु ५२ से ६२ तक १० पृष्ठ खो जाने से "बाहर भावना" सम्बन्धी २६ पद उपलब्ध नही हैं। लिपि सुवाच्य एव सुपाठ्य है। कई जगह अधूरे पद रह जाने के कारण पुन पूरा करने की चेष्टा की गई है। प्रतिलिपि करते समय कई पदो की पुनरावृति हो जाने पर उन्हे पुन काटा गया है। एक-दो पद लिपिकर्ता द्वारा छोडे गए स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भी लिपिवद्ध किए गए हैं। यह प्रति वखतावर पाटणी ने अपनी मा के नुक्ता मे चढाई है-"यो ग्र थ वखतावरलाल पाटणी वेटा रूप जी हाला वाकी मा का नुक्ता मे श्री चद्रप्रभु जी का मदरजी तेरापथी आमनाय का मदर जी चोडो।"

२ प्रति 'न' —यह प्रति निगोत्यान मन्दिर जयपुर मे उपलब्ध है। इसका आकार १२"×८ इ च है। एक पृष्ठ मे १६ पक्तिया है। प्रत्येक मे २५ अक्षर हैं। पृष्ठो की कुल सख्या ११५ है। इस प्रति का कागज नीला है। लिपि यद्यपि सुपाठ्य है, किन्तु प्रति के अत्यन्त जीर्ण होने के कारण पृष्ठ के किनारे या मध्य के कई अक्षर गायब भी हो गए हैं।

३ प्रति अ' —यह प्रति अमीरगज मन्दिर, टोक मे विद्यमान है। इसकी पृष्ठसख्या १६३ है। प्रतिलिपि का आकार ११½"×६½ इ च है। दोनो ओर १½ इ च का हासिया है। इसकी प्रतिलिपि बादामी कागज पर की गई है। प्रत्येक पृष्ठ

पर १४ पक्तिया हैं और प्रत्येक पक्ति मे ३५ अक्षर हैं। इसका लिपिकाल माह सुदी १३, मगलवार सवत् १९३८ है। प्रति 'अ' सम्पूर्ण, सुपाठ्य और प्राचीन है।

४. प्रति 'च' :—यह प्रति निगोत्यान मन्दिर जयपुर मे उपलब्ध है। प्रति का आकार ८½" × ७ इच है। पृष्ठो के दोनो ओर १ इच का हासिया छूटा हुआ है। प्रत्येक पक्ति मे २५ अक्षर है। प्रति 'च' के प्रारम्भ में द्यानतराय और वृदावनदास की पूजा आदि हैं, तदनन्तर पार्श्वदास के १६२ पद लिखे गये हैं। प्रारम्भिक १२ पद खो जाने से अब इस प्रति मे पार्श्वदास के केवल १५० पद शेष हैं। इसकी प्रतिलिपि पार्श्वदास के भतीजे चादूलाल द्वारा की गई है।

५ प्रति 'ल' .—यह प्रति लूणकरण जी का मन्दिर जयपुर मे प्राप्त है। इसकी पत्रसख्या ३२ है। रचना मे दोनो ओर हासिया है। इसकी प्रतिलिपि भावसा गोत्रिय गुलाबचन्द्र मालपुरावालो ने पटोदी मन्दिर मे प्राप्त प्रति के आधार पर की। लिपिकाल सवत् १९५५ और सन् १८९९ दोनो ही लिखे गए हैं। यह प्रति बहुत अधूरी है। इसमे 'द्वादशाग पाठ और केवल १४ पद हैं। ये पद भी विभिन्न तिथियो को उतारे गए हैं, एक साथ नही। प्रति 'ल' की प्रारम्भिक ८। पक्तिया है-'ऊ नम. सिद्धेभ्य ' और "अथ पद पार्श्व विलास का लिप्यते ।"

प्रति ६. 'ग' :—लिपिकर्ता गुलाबचन्द्र भावसा की यह प्रतिलिपि भी लूणकरण जी का मन्दिर जयपुर मे हैं। इस प्रति मे अर्हंत भक्तिपाठ' 'आरती', 'श्री हतनापुर री जात रा पाठ' तीन रचनाए तथा कुछ फुटकर पद हैं।

उक्त छह प्रतियो मे प्रति 'ल' और 'ग' मनोयोगपूर्वक नही लिखी गई। दोनो ही प्रतिया कवि के जीवनकाल से अधिक बाद की और अत्यन्त अपूर्ण हैं। दोनो ही प्रतियो मे अशुद्धिया भी अधिक हैं। प्रति 'च' भी अपूर्ण है। यह प्रति निगोत्यान मन्दिर में ही प्राप्त पूर्ण प्रति 'न' की नकल का अल्प प्रयास है। प्रति 'न' एव 'त' एक ही वर्ग की प्रतियां हैं क्योकि दोनो मे निम्नाकित समानताए मिलती हैं—

१ 'दर्शन पच्चीसी' 'सुगुरु शतक' 'हितोपदेश पाठ' और 'सरस्वती पूजा' चारो रचनाए दोनो प्रतियो मे नही हैं। प्रति 'अ' मे ये चारो रचनाए, पारस विलास के अन्त में उल्लिखित हैं।

२. दोनो ही प्रतियो मे अन्तिम 'पद मत लखियो नारि बिरानी रै'· है। प्रति 'अ' मे बढे हुए पद दोनो मे ही नही है। बाद मे किसी ने यत्र तत्र कुछ पद जोडे

प्रति 'त' का एक पृष्ठ

प्रति 'अ' का एक पृष्ठ

प्रति 'न' का एक पृष्ठ

कविवर पार्श्वदास का हस्तलेख

३ पार्श्वदास की दो मौलिक संस्कृत रचनाए 'चतुर्विंशाति तीर्थंकर स्तुति' और 'चिमत्कार जिनपूजा' दोनो ही प्रतियो मे 'ज्ञानसूर्योदय नाटक की वर्चानिका' के वाद मे हैं।

एक ही शाखा की प्रति 'त' एव 'न', प्रति 'अ' की अपेक्षा अधिक प्राचीन और प्रमाणिक हैं। इसके सम्बन्ध मे प्रमुख तर्क प्रति 'त' एव 'न' मे पारस विलास की मूल रचनाओ का ही सग्रहीत होना है। पार्श्वदास ने अपने सग्रह ग्रन्थ पारस मे केवल सवत् १९२० तक लिखी हुई रचनाओ का ही सग्रह किया था। प्रति 'अ' मे सवत् १९२० के वाद की रचनाए भी 'दर्शन पच्चीसी' 'सुगुरु दशक' हितोपदेश पाठ, 'सरस्वती पूजा' तथा कुछ पद सम्मिलित कर लिये गए हैं। प्रति 'त' एव 'न' की तरह प्रति 'अ' की पूर्व पीठिका मे भी पारस विलास की सगृहीत रचना के रूप मे इनमे से किसी भी रचना का नामोल्लेख नही है।

प्रति 'अ' अपेक्षा प्रति 'त' एव 'न' के अधिक प्रामाणिक होने के सम्बन्ध मे दूसरा महत्वपूर्ण तर्क भाषा-स्वरूप की सुरक्षा का है। प्रति 'अ' मे भाषा का स्वरूप अपने मूल रूप से विकृत होकर परिनिष्ठत हिन्दी की ओर झुका हुआ है, जैसे —

१ प्रति 'त' एव 'न' मे 'ख' के स्थान पर सर्वत्र 'ष' का प्रयोग है किन्तु प्रति 'अ' में 'ख' ही प्रयुक्त हुआ है।

२ प्रति 'त' एव 'न' मे सयुक्त वर्णों का विगडा स्वरूप मिलता है। जैसे— 'आतमीक', 'दिढ'। प्रति 'अ' मे सयुक्त वर्ण अमीलित नही हुए हैं, जैसे—'आत्मीक दृढ सर्वज्ञ', 'निर्विघ्न' आदि

३ प्रति 'त' एव 'न' मे अनुस्वार का निरर्थक आगमन हुआ है जैसे— 'ढाक्यों', मतियां'। प्रति 'अ' मे ऐसा नही है।

४ प्रति 'त' एव 'न' मे कही कही 'क्ष' का 'प' लिखा गया है जैसे — पीण। प्रति 'अ' में सर्वत्र 'क्ष' का प्रयोग है।

५ प्रति 'त' एव 'न' मे 'श' एव 'व' के स्थान पर अधिकाशत 'स' एव 'व' ही मिलते हैं, किन्तु प्रति 'अ' में दोनो वर्ण सही रूप में उपलब्ध है।

'पार्श्वदास पदावली' के पाठ-सम्पादन के लिए सम्पूर्ण, प्राचीन, सुपाठ्य एव शुद्ध प्रतिया 'त', 'न' एव 'अ' ही अधिक उपयोग मे लाई गई हैं। प्रति 'अ' एक शाखा को एव प्रति 'त' एव 'न' तथा शेप अपूर्ण प्रतिया दूसरी शाखा की हैं। भाषा के प्राचीन स्वरूप की सुरक्षा की दृष्टि से प्रति 'त' एव 'न' के पाठ को अधिक महत्व-पूर्ण मानते हुए भी विषयानुसगति या अर्थानुसंगति के आधार पर 'त' प्रति के पाठों को भी प्रमुखता दी गई है। स्वीकृत पाठो का विवरण इस प्रकार है :—

१.१ ४. स्वीकृत पाठ है :

मतं देशित येन सुसार ।

प्रति 'अ' मे 'मत' के स्थान पर मत्त' पाठ है। यह पाठ दृष्टिभ्रम के कारण त्रुटित लिखा गया है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है "जिसने ससार को मत दिखाया है।"

२.२ १ स्वीकृत पाठ है

जिन जगदाधार तारय मा त्वरित

प्रति 'अ' मे 'जिन' शब्द से पहले श्री' प्रक्षेप है। प्रति 'अ' मे 'जगदाधार' के स्थान पर श्रुतिदोप से केवल 'जगदाधा' रह गया है। यह पाठ अर्थ की दृष्टि से असगत है। प्रति 'अ' मे 'जगदाधा' शब्द मे 'र' की अभाव की पूर्ति के लिए ही 'जिन' से पहले 'श्री' प्रक्षेप हो गया प्रतीत होता है।

३.३ ७ स्वीकृत पाठ है

निश्चै शिव पावो अविनासी **जामण** मरण विडारो ।

प्रति 'अ' मे 'जामण' के स्थान पर मिलने वाला 'जा' पाठ अर्थसगत नहीं है। छद-विन्यास की दृष्टि से भी 'जा' पाठ विकृत है।

४ ४ २ स्वीकृत पाठ है ·

जल चदन अक्षत जो अनोपम पुष्प चरू **सुमिलार** हो ।
दीप दसाग धूप फल उत्तम, अर्घ करू सुखकार हो ।

प्रति 'त' एव 'न' मे सुमिलार के स्थान पर दृष्टि भ्रम से 'सुषिलार' पाठ हो गया है,

जो प्रसग की दृष्टि से अर्थ सगत नही है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है — 'जल चदन अनुपम अक्षत, पुष्प और नैवद्य मिलाकर दीप, धूप, और उत्तम फल लेकर सुखकारी अर्घ्य करू''

५,४४ स्वीकृत पाठ है

झालरि घटा झाझि मजीरा, **भेरी** दुदुभी लार हो।

प्रति 'अ' मे भेरि के स्थान पर 'भरी' पाठ है, जो श्रुतिदोष अथवा दृष्टिभ्रम के कारण विकृत है। 'भेरि' एक वाद्य यत्र का नाम है। अन्य वाद्य यत्रो के प्रसंग मे यहा उसकी भी चर्चा हुई है। 'भरी' पाठ प्रसगानुकूल नही है।

६,५७ स्वीकृत पाठ है

दान च्यार विधि देय भक्ति तैं **दुखित कू रझिभावो**।

प्रति 'अ' मे मोटे अक्षरो मे छपी अर्द्ध पक्ति 'दुखित कू रझिभावो' के स्थान पर 'दुषित कू रजिभावो' है। यह लिपिजन्य भूल है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है — 'दुखी को प्रसन्न करो।' प्रति 'अ' का पाठ प्रसगानुकूल नही है।

७ १० ४ स्वीकृत पाठ है

पार्श्वदास सकास **बिनवू** राषि निजकरि साथ।

प्रति 'अ' मे लिपिजन्य भूल के कारण 'बिनवू' के स्थान पर 'बिनकू' पाठ है। अर्थानुसगति की दृष्टि से 'बिनवू' पाठ अधिक उपयुक्त है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है— 'पार्श्वदास के पास विनय करता हू कि मुझे अपने पास रखिये'।

८ १४ ५. स्वीकृत पाठ है

तिनकू नास करण सुमरण करि मानहु कह्या **हमेरा**

प्रति 'अ' मे 'हमेरा' के स्थान पर 'मेरा' पाठ है, जो लिपिजन्य भूल है। 'मेरा' पाठ अर्थसगत होते हुए भी मात्रा की कमी के कारण छद–सौष्ठव की दृष्टि से ग्राह्य नहीं है।

९ १५.७ स्वीकृत पाठ है

पारस जब लू शिव होवै तव लू चाहत हू जिन **मत** ही है।

प्रति 'अ' मे 'मत' के स्थान पर 'यही' पाठ है। यह दृष्टिभ्रम के कारण विकृत पाठ है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है कि 'पार्श्वदास मोक्ष प्राप्त पोने तक जैन मत का ही अनुयायी रहना चाहता है।'

१० ७०३ स्वीकृत पाठ है

मात तात सुत नाती गोती **ये सब मुतलब का पैला है।**

प्रति 'त' एव 'न' मे मोटे अक्षरो मे लिखी अर्द्धपंक्ति श्रुतिदोप के कारण त्रुटित है—'ये मुतलव का सव पैला है।' 'सब' शब्द के उपयुक्त स्थान पर रहने से स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा —'माता, पिता, पुत्र, प्रपोत्र और गोत्रिय भाई ये सभी स्वार्थ के हैं।'

११ १७ ५ स्वीकृत पाठ है.

क्रोध, लोभ, छल, मान, विपय, मद, इन सेती **लषि तू** मैला है।

प्रति 'त' एव 'न' में 'लषि तू' के स्थान पर 'तू लषि' पाठ–विपर्यय है।

१२.२२:४ स्वीकृत पाठ है :

भस्मी **सुरपति मस्तग धारे** भवि जन आये सोर सुनारे।

प्रति 'अ' मे 'सुरपति' और 'मस्तक' के मध्य लिपिजन्य भूल के कारण 'मति' प्रक्षेप है।

१३ २२.६ स्वीकृत पाठ हैं

सो उच्छव अब लू लषि पारस मुक्तिगमन श्रद्धान **धरा रे।**

प्रति 'त' एव 'न' मे 'धरा रे' के स्थान पर 'धारे' विकृत पाठ है। यह लिपिकर्त्ता के दृष्टिभ्रम के कारण हुआ है।

१४,२३ १ स्वीकृत पाठ है·

तुम गरीव के निवाज मैं गरीव तेरौ।

प्रति 'त' एव 'न' मे लिपिजन्य दोष के कारण 'तुम' के स्थान पर 'जुम' शब्द का प्रयोग है।

१५ २६ ६   स्वीकृत पाठ है

इन सगि दु ख सहे बहुतेरै रूप न जान्यो थारो ।

प्रति 'त' एव 'न' 'बहुतेरै' के स्थान पर 'बहुदिन सै' पाठ है ।

१६ २८ १   स्वीकृत पाठ है

हा रै भायी समझि करो मन मायी ।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'रै' के स्थान पर 'र' विकृत पाठ है । यह लिपिजन्य भूल है ।

१७ ३१ ५   स्वीकृत पाठ है :

भाव भक्ति सू बीनवू जी, म्हारो आवागमन मिटाया ।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'आवागमन' के स्थान पर 'जामण मरण' पाठ है ।

१८ ३६ ५   स्वीकृत पाठ है

'पारस' जिनमत सार दया लपि मुनि श्रावक सब धरते रस्यो ।

प्रति 'अ' मे दृष्टिभ्रम के कारण 'मुनि' शब्द छूट गया है ।

१९ ३७ ८   स्वीकृत पाठ है

जिनवर ज्ञानादिक के पाय

प्रति 'त' एव 'न' मे 'पाय' के स्थान पर 'थाय' शब्द है, जो दृष्टिभ्रम के कारण विकृत पाठ है । 'पाय' शब्द 'पायक' का अपभ्रष्ट है । ढूढाडी भाषा मे 'पायक' का अर्थ है 'सहायक' । स्वीकृत पाठ का अर्थ है–'जिनवर ज्ञान आदि के सहायक हैं ।' यहा 'थाय शब्द अर्थसगत नहीं है ।

२० ३७ १३   स्वीकृत पाठ है :

जिनवाणी प्रसाद लहि राज,
ज्ञान कियो प्रभू कू महाराज ।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'लहि' के स्थान पर लिपिजन्य दोप के कारण 'तहि' शब्द प्रयुक्त

है, जो अर्थसगत नही है। स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा—'जिनवाणी की कृपा से राज्य लेकर ज्ञान ने आत्मा को महाराज बना दिया।'

२१ ३८ १. स्वीकृत पाठ है

पर कूं क्यू अपनाया रे अज्ञानी।

प्रति 'त' एव 'न' मे लिपिजन्य भूल के कारण 'कू' के स्थान पर केवल 'क' शेष है।

२२ ३९.३ स्वीकृत पाठ है

कौन चूक परित्यागी **मोहि कूं,**
जीव मैं अ देसवा वहीलो रे।

प्रति 'अ' मे लिपिजन्य भूल के कारण 'मोहि कू' शब्द छूट गया है।

२३ ४३ ४ स्वीकृत पाठ है·

अनादि काल को **पर मैं रचि कै,** आतमरूप भुलायो।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'पर मैं रचि कै' स्थान पर 'राच्यो पर मैं' पाठ–विपर्यय है।

२४ ४३.५ स्वीकृत पाठ है

यह उपगार कियो प्रभु पारस, फेरू ज्योत बनायो।

प्रति 'अ' मे प्रथम अर्द्धपक्ति के स्थान पर 'ये उपकार सुगुरू को पारस' पाठान्तर है।

२५ ४९ ३ स्वीकृत पाठ है·

सुभ गति दानी **है**।

प्रति 'अ' मे दृष्टिभ्रम के कारण 'है' के स्थान पर 'छै' शब्द प्रयुक्त है।

२६.५०.३. स्वीकृत पाठ है :

कर्म को कर्त्ता भोग को भोक्ता या कथनी जा **मांय** निकाम,
जा मैं एकेन्द्री पचेन्द्री असे भेद नही अभिराम।

प्रति 'अ' मे 'माय' के स्थान पर 'न्याय' पाठ है; जो यहा अर्थसगत नहीं है। यह त्रुटि

श्रुतिदोष और दृष्टिभ्रम दोनों से ही संभव है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है—'(आत्मा का ऐसा चिन्तन करो) जिसमें एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के भेद न हों और जिसमें ऐसी कथनी भी बिल्कुल न हो जिसके अनुसार आत्मा कर्म का कर्ता अथवा भोग का भोक्ता कहा जाय।'

२७ ५१ ८ स्वीकृत पाठ है

ज्यों दर्पण में विदित भास

प्रति 'अ' में 'भास' के स्थान पर 'नाम' प्रयुक्त है, जो अर्थसंगत नहीं है। 'गुण' के अर्थ में लेखक ने 'नाम' शब्द का प्रयोग किया है।

२८ ५२.५ स्वीकृत पाठ है :

वेद पढ़े देव ब्रह्म कहत हैं,
कर्म कहत मीमांसक ताम है।

प्रति 'त' एवं 'न' में प्रथम अर्द्धपंक्ति का विकृत पाठ इस प्रकार है—वेद पढ़े सो ब्रह्म कहत सो। स्वीकृत पाठ का अर्थ है 'वेद पढ़ने वाले अपने देव को ब्रह्म कहते हैं तथा मीमांसक कर्म।'

२९.५७ ६ स्वीकृत पाठ है

अनुभव तें आनन्द विस्तार।

प्रति 'अ' में 'विस्तार' के स्थान पर 'विहार' प्रयुक्त है, किन्तु अपेक्षाकृत 'विस्तार' अधिक अर्थसंगत है। स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा—(अमृतचन्द्र सूरि के वचनों का) अनुभव करने से आनन्द की वृद्धि होती है।

३० ६३ १. स्वीकृत पाठ है :

चालो सख्यो हे नेम जी वानी सुनावैं।

प्रति 'न' में सुनावैं' के बाद 'है' प्रक्षिप्त है।

३१.६५.१. स्वीकृत पाठ है :

गयी गयी जो मिथ्या मम नीद
लषे जिनराज सही ।

प्रति 'अ' मे 'लषे' के स्थान पर विकृत पाठ 'लेषे' है, जो अर्थसगत नही है ।

३२.६५ ५. स्वीकृत पाठ है :

रागादिक कछु दोष न जामैं गुण अनन्त के कोष

प्रति 'त' एव 'न' मे 'कोष' के स्थान पर 'षानि' पाठ-पर्याय है ।

३३.६५ ८ स्वीकृत पाठ

पार्श्वदास जाचै जिनपति सू तुम मम भेद न साय,
वडी एक चाय ययी ।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'एक' के स्थान पर 'मम' पाठान्तर है ।

३४.६७ २ स्वीकृत पाठ है

मैं कैसैं कहि समझावू अव रैं मरावू ।

प्रति अ' मे 'रैं' के स्थान पर लिपिजन्य भूल के कारण केवल 'र' शेष है ।

३५ ७१.४ स्वीकृत पाठ हैं :

पारस अरज करै है भव जाल काटि हम रो ।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'हम रो' के स्थान पर 'जम रो' पाठान्तर है । यह विकृत पाठ दृष्टिभ्रम अथवा पूर्वपक्ति के प्रभाव से इन प्रतिओ मे पुनरावृत्त हो गया है ।

३६ ७२:६ स्वीकृत पाठ है .

या तैं ममत छाडि कै 'पारस' सेवा भक्ति सजो ।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'सजो' के स्थान पर 'रजो' पाठ है । यह विकृत पाठ, लिपिजन्य भूल के कारण सभव है । स्वीकृत पाठ का अर्थ है–'इससे (शरीर से) ममता छोडकर सेवा और भक्ति से साजिये ।'

३७,७४ ६ स्वीकृत पाठ है

अतिसार लिये रीति **गान** की बडी ।

प्रति 'त' एव 'न' मे गान' के स्थान पर श्रुतिदोष के कारण 'ज्ञान' पाठ है। सम्बन्वित पद मे नृत्य और सगीत की ही चर्चा होने के कारण यह पाठ अर्थसगत नही है।

३८,७५ १ स्वीकृत पाठ है

आयो नी मैं तैडे **मिदरवा** ।

प्रति 'त' एव 'न' मे मिदरवा के स्थान पर 'मदरिया' पाठ है।

३९,७५ ४ स्वीकृत पाठ हैं

सुमरण कीया तैडे **गटकत** निज सूष सूझा मैं नू तू ही शिवदायीलो ।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'गटकत' के स्थान पर 'गत' पाठ है, जो लिपिजन्य भूल के कारण त्रुटित है। 'गत' पाठ सम्बन्वित पद मे अर्थसगत नही है।

४०,७८ ६ स्वीकृत पाठ है

जड प्रवृत्ति तै शिव नही होहैं **परमारथ** किम पाना ।

झाकत रहु परमारथ मावू यू व्यवहार प्रमाना ।

प्रति 'न' मे 'परमारथ' के स्थान पर 'परसारथ' पाठ है। उक्त पक्तियो मे मोक्ष–प्राप्ति पर अधिक बल दिए जाने के कारण ही मूल पाठ 'परमारथ' ही प्रतीत होता है।

४१,७८ १२ स्वीकृत पाठ है

पार्श्वदास अध्यातम समुझो जिम होवै **सुरझाना**

प्रति 'अ' मे 'सुरझाना' के स्थान पर 'समुझाना' प्रयुक्त है। यह लिपिजन्य भूल है। स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा—हे पार्श्वदास ! अध्यात्म को समझो, जिससे (भवबधन से) छुटकारा मिले।

४२,७९ ६. स्वीकृत पाठ है

पशु पक्षी लहि सरन भये सुर, क्यो न लहै सम्यक्त सहित नर मुक्ति गमन की।

प्रति 'न' मे 'सम्यक्त' के स्थान पर 'श्रद्धान' पाठ है ।

४३,८०:५. स्वीकृत पाठ है :

विष एकान्त मूढ़ या जिव कू स्यात्पद मीठो अमृत पावैं ।

'जिव' के स्थान पर प्रति 'अ' और 'त' में क्रमश 'जीव' और 'जिन' पाठ हैं, जो लिपिजन्य भूल के कारण विकृत हुए है ।

४४,८२ ६ स्वीकृत पाठ है

हित अनहित को भेद भयो अब होसी क्यो न उधारा ।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'उधारा' के स्थान पर लिपिजन्य भूल के कारण 'उघारा' पाठ है, जो अर्थ सगत नही है ।

४५,८६ २ स्वीकृत पाठ है

ई द्र नरेंद्र फनेंद्र नमत निति, मुनि जन निज चित धारी ।

प्रति 'त' एव 'न' मे निज के स्थान पर 'नित' पाठ है ।

४६,८६ १. स्वीकृत पाठ है

अब मेरैं पारस नाथ सहायी ।

प्रपि 'अ' एव 'त' मे सहायी के स्थान पर दृष्टिभ्रम के कारण 'सदायी' पाठ है ।

४७,८६'८ स्वीकृत पाठ है ·

जबलग वसुविधि नास करू मैं, तब लग करहु सुनाई ।

प्रति 'अ' मे 'करहु' के स्थान पर 'कसहु' पाठ है, जो लिपिजन्य भूल के कारण विकृत हुआ है ।

४८,६६:३ स्वीकृत पाठ है

गगा जमना और सुरसती, तिरबेणी गिरिधामा ।

प्रति 'न' मे लिपिजन्य भूल के कारण 'सुरसती' के स्थान पर 'सुरती' पाठ है, जो निरर्थक है ।

४६,६६ १ स्वीकृत पाठ है :

करि लै जिया मै तू साचो ही सुमरन ।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'मैं तू' के स्थान पर 'म नु' पाठ है, जो लिपिजन्य भूल के कारण विकृत हुआ है ।

५०,२०० ५ स्वीकृत पाठ है

पारस चरण सरण गहि जाचत प्राप्ति दीजिये मो धन की ।

प्रति 'त' एव 'न- मे 'जाचत' के स्थान पर 'चाहत' पाठ है, किन्तु कवि की दास्य-भावना के अनुसार 'जाचत' पाठ ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

५१,१०२:४ स्वीकृत पाठ है .

पायो सफल होत मानुप गतिया,
राजादिक सेवतु हैं जातिया ।

प्रति 'अ' मे दूसरी अर्द्ध पक्ति मे 'राजादिक' के स्थान पर दृष्टिभ्रम से 'रागादिक' पाठ हो गया है, जो अर्थसगत नही है ।

५२,१०५ ३ स्वीकृत पाठ है

सप्त तत्व नव पदार्थ छहू द्रव्य कू यथार्थ,
जानि कै पिछाने जीव, पुद्गल इम घुलिहै ।

प्रति 'त' एव 'न' मे प्रथम पक्ति के 'कू' के स्थान पर 'तैं' पाठ है, जो लिपिजन्य भूल के कारण हुआ है ।

५३,१०४ ६ स्वीकृत पाठ है

पिय कै सगि अब हूगी अरजिका तप तपनें मैं होत जिया ।

प्रति 'त' एव 'न' मे इसका पाठान्तर इस प्रकार है-पिया कै सग मैं रहू अरजिका, तप तपनें मे रहत जिया ।'

५४,१०६ ६ स्वीकृत पाठ है

चेतना स्वरूप रूप सकल तैं अनूप भूप

प्रति अ मे 'रूप' के स्थान पर 'भूप' पाठ है। इस प्रति मे श्रुतिदोष के कारण 'भूप' शब्द की पुनरावृत्ति हो गई है। स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा—'हे भव्य! तुम्हारा रूप चेतनास्वरूप है, अत तुम सासारिक व वस्तुओ से भिन्न आत्मराज हो।'

५५,११२ ८ स्वीकृत पाठ है

भव वन मे जिन पार्श्व सहायो, हा रे गहि लीजे रे सरण शिवदाय।

प्रति 'त' मे मोटे अक्षरो मे छपे अ श के स्थान पर 'सरणो इक जिन पार्श्व सहायी' पाठान्तर है।

५६,११२ २ स्वीकृत पाठ है .

अष्ट करम मोहे भव भव माही, पर सुख **साटै** रक बनायो।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'साटै' के स्थान पर 'आटै' शब्द प्रयुक्त है। ढूढाडी भाषा मे 'आटै' शब्द का प्रयोग 'साटै' शब्द के साथ ही होने के कारण 'आटै' शब्द का स्वतन्त्र प्रयोग अशुद्ध है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है—जन्म जन्मान्तरो मे दूसरो के सुखो की चिन्ता करते रहने के परिणामस्वरूप अष्टकर्मों ने मुझे रक बना दिया।'

५७,११५·४ स्वीकृत पाठ है

मानुष भव मैं दुष **दलद्र** के रोग सोक विललाया।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'दलद्र' के स्थान पर 'दरिद्र' प्रयुक्त है। ढूढाडी मे व्रजभाषा का 'दरिद्र' 'दलद्र' रूप मे ही उच्चरित होता है, अत 'दलद्र' अधिक सगत पाठ है।

५८,११७.२ स्वीकृत पाठ है

जा मैं रोग रोस नहिं किंचित, **तनु** वच सरलु दयाल।

प्रति 'त' एव 'न' में 'तनु' के स्थान पर 'तन' पाठान्तर है। सम्बन्धित पद मे जिनेन्द्र की शान्त एव सौम्य मुद्रा का वर्णन होने के कारण 'तनु' पाठ प्रासागिक है। स्वीकृत पाठ मे 'तनु' 'वच के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

५९,१२२ ४ स्वीकृत पाठ है

पारस इम कहि रजमति तप करि सुरपति भई विधि जोति।

पाल मुक्ति होय तब एकहि, झूठा सब ख्याल ।

प्रति 'त' में सम्पूर्ण पंक्ति का पाठान्तर यह है —

“पारस शिव पावें तब नाहिं झूंठा जग जजाल ।

सम्बन्धित पद में 'जजाल' शब्द अन्त्यानुप्रास के रूप में पूर्ववर्ती पंक्ति से आया है ।

प्रति 'त' में दृष्टिदोष के कारण इसकी पुनरावृत्ति हुई है ।

६४ १३६ ४ स्वीकृत पाठ है :

पार्श्व तुम धारि उर भाव सब नाम भरि, शिव वधू इतै करि गोरी मेरी ।

प्रति 'त' में मोटे अक्षरों में छपे अंश का पाठ-विपर्यय इस प्रकार है—“करि इतै गौरि मेरी’ ।

६। १३६.२ स्वीकृत पाठ है —

अरज ये ही उर मानि लै।

प्रति 'अ' मे 'अरज के स्थान पर लिपिजन्य भूल के कारण 'अर' अशुद्ध पाठ मिलता है।

६६,१३६.६ स्वीकृत पाठ है :

जिनके नाम सुनि पारस उघरे फिर न **भयो** दुख ल्हेस।

प्रति 'त' मे 'भयो' के स्थान पर 'लह्यो' पाठ पर्याय है।

६७,१४४.४ स्वीकृत पाठ है .

पाच पाप औपाधिक दुख दे इनकू **काहि** गहे छै।

प्रति 'त' मे 'काहि' के स्थान पर 'गाहि' पाठ है, जो लिपिजन्य भूल है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है कि "पाच पाप औपाधिक दु ख देते हैं इन्हे तुम क्यो ग्रहण करते हो"

६८,१४४:५ स्वीकृत पाठ है

इ द्री पाच कषाय पचीसू ये परजनित **लिषै** छै।

प्रति 'त' एव 'न' मे लिषै' के स्थान पर श्रुतिदोष के कारण 'लषे' पाठ है, जो अर्थ-सगत नही है।

६६,१४४.६ स्वीकृत पाठ है

जा मैं पाप कसायन दीसै, सुख को नाही **छेह** है।

अविनाशी चिद्रूपी 'पारस', काहे आन नमैं छै।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'छेह' के स्थान श्रुतिदोष के कारण '**छे**' अशुद्ध पाठ है।

७०,१४५ ६ स्वीकृत पाठ है :

गुप्ति तीनू धरै निति अरि मित्र समताई।

प्रति 'अ' में लिपिजन्य भूल के कारण 'गुप्ति' के स्थान पर 'गुप्त' पाठ है, जो अर्थ-

सगत नही है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है : '(साधु) तीन गुप्तिया धारण करते हैं एव शत्रु तथा मित्र मे समता भाव रखते हैं।"

७१,१४६ ६ स्वीकृत पाठ है

मरण समैं जिन नाम धारि उर स्वान स्वर्ग सुप थायो रे।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'थायो के स्थान पर 'पायो' पाठ-पर्याय है।

७२,१४७ ५ स्वीकृत पाठ है

कुमति सग भव दुप भोगे, वहु नारक भये हो कुभावा।

प्रति 'अ' मे 'भव' के स्थान पर 'वहु' पाठान्तर है।

७३,१४९ १ स्वीकृत पाठ है :

दिढ़ता अपनाई अब मै जिनराज चरन की शरन मैं।

प्रति 'न' मे इस पंक्ति का पाठान्तर इस प्रकार है 'जिनराज चरन की सरन मैं द्दढता अपनायी।

७४,१५० ३ स्वीकृत पाठ है

चौंतीसू अतिसै जुत सोहै, भव्यनि को सुषदायी।

प्रति 'अ' मे 'भव्यनि को सुपदायी' के स्थान पर 'भव जीवन सुखदाई' पाठ-पर्याय है।

७५,१५० ५ स्वीकृत पाठ है :

जा का तन की छबि कूं निरखत कोटि भान हू लजायी।

प्रति 'अ' में श्रुतिदोष के कारण 'हू लजायी' के स्थान पर 'हुलसाई' पाठ है, जो प्रासागिक नही है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है—'जिसकी (जिनेन्द्रकी) छवि को देखकर करोडो सूर्य लज्जित होते हैं।"

७६,१५१:२ स्वीकृत पाठ है :

नाभिराय मोरादेवी सुत प्रगट भये जगमांयी।

प्रति 'त' एव 'न' मे लिपिजन्य भूल के कारण 'जगमायी' के स्थान पर विकृत पाठ 'जुगमायी' है।

७७,१५१ ६. स्वीकृत पाठ है

सुरपति फरणपति नरपति पूजै, इक निज पद की चायी।

मोटे अक्षरो मे छपे पाठ के स्थान पर प्रति 'त' मे यह पाठान्तर है—'सुरपति नरपति षगपति पूजै'।

७८,१५१ ८. स्वीकृत पाठ है :

सिव सकर हरि ब्रह्मा जिनपति, वृद्ध **वेद** ग्रो घुमायी।

प्रति 'अ' मे 'वेद' शब्द के स्थान पर 'वद' प्रयुक्त है, जो अर्थसगत नही है।

७९,१५२.६ स्वीकृत पाठ है

वीतराग सर्वज्ञ जिनोत्तम, भव्यनि कू **शिवदायी**।

'त' एव 'न' प्रतियो मे 'शिवदायी' के स्थान पर 'सुषदायी' पाठ है। सम्बन्धित पद मे अन्त्यानुप्रास के रूप में एक पूर्ववर्ती पक्ति मे प्रयुक्त हो जाने के कारण यह शब्द पुनरुल्लिखित नही कहा जा सकता।

८०,१५६ ३. स्वीकृत हाठ है :

विषय **षोष** साटै मनि षोवै, फिर पीछै पछितायी।

'त' और 'न' प्रतियो में 'षीष' के स्थान पर विकृति पाठ 'षाष' मिलता हैं। विकृत का कारण लिपिजन्य भूल है। 'षीस' (खीस) दूढाडी का देशज शब्द है, जिसका अर्थ है —गाय या भैंस के ब्याने पर उनके थनो से निकला हुआ पहला दूध, जिसे मनुष्य पीने के काम मे नहीं लेता।

८१,१५७.५, स्वीकृत पाठ है :

ये तो जन्म **व्रथा ही षोयो,** निज पिछाणि नैं भई रे।

प्रति 'अ' मे 'व्रथा ही षोयो' के स्थान पर 'विषयनि मैं खोयो' पाठान्तर है। सम्बन्धित

पद मे पञ्चेन्द्रिय विषयो की चर्चा पहले ही हो जाने के कारण यह पाठ शुद्ध नही माना जा सकता ।

८२,१५८ ३ स्वीकृत पाठ है ·

सपरस रस और गध बरण गुण पुद्गल की परणई रे ।

प्रति 'अ' 'बरण' के स्थान पर 'वरुण' पाठ है । इसकी विकृति का कारण श्रुतिदोष और लिपिजन्य भूल दोनो ही हो सकते हैं । स्वीकृत पाठ का अर्थ है—'स्पर्श, रस, गध, वर्ण और गुण पुद्गल की परिणति है ।'

८३,१५९ १. स्वीकृत पाठ है

देषो री नेमीस्वर स्वामी वदडा वनि कै आया है री ।

प्रति 'त' मे 'वदडा वनि कै' के स्थान पर 'द्वारै मेरै' पाठान्तर है ।

८४,१६०·३ स्वीकृत पाठ है ·

तृष्णावसि होय जग भटक्यो, मैं झूठा मोह को मारो ।

प्रति 'अ' मे 'भटक्यो' के स्थान पर 'भरम्यो' पाठ है ।

८५,१६३ ७ स्वीकृत पाठ है

थानै ज्ञानमयी ढोलियो पोडावस्या जी ।

प्रति 'त' मे 'पोडावस्या' के स्थान पर 'सुवाणस्या' पाठ-पर्याय है । 'पोडावणो' और 'सुवाणो' दोनो ही क्रियायें सुलाने के अर्थ मे प्रयुक्त होती है । किन्तु 'पोडावणो' मे सम्मान की भावना निहित होने के कारण 'पोडावस्या' पाठ ही प्रासागिक है ।

८६,१६३ १०. स्वीकृत पाठ है

थानै मुकति पियारी परणावस्या जी,
पारसदास नू कारिज सारवानै ।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'कारिज सारवानै' के स्थान पर 'काज सुधारवानै' पाठ-पर्याय है ।

८७,१६५ ३. स्वीकृत पाठ है ·

अजन आदिक अधम उधारे, वारिषेण दुष टारी ।

मोटे अक्षरो मे छपे अ श का पाठ पर्याय प्रति 'त' मे यह है—'नीच उधारे ।

८८,१६५ ४. स्वीकृत पाठ है :

पारस मन वच तन करि सुमरं, **क्यूं न वरं सिव नारी ।**

प्रति 'त' मे मोटे अक्षरो मे छपे अ श का पाठ पर्याय 'ते पावै शिव प्यारी है ।

८६,१६६ ५ स्वीकृत पाठ है

पर प्रसग तैं निज गुए भूले, **निज गुए रति विन वाल ।**

प्रति 'त' मे मोटे अक्षरो मे छपे अ श का पाठ 'निज गुए वाल' है । इस विकृत पाठ को मान लेने पर भी पद की सम्पूर्ण पक्ति का कोई आशय प्रकट नही होता । लिपि-कर्त्ता की असावधानी के कारण प्रति 'त' मे 'रति बिन' शब्दो का उल्लेख नहीं हो सका है ।

९०,१७१ १ स्वीकृत पाठ है ·

जिनंद विन कैसैं कटै भव ततिया ।

प्रति 'त' एवं 'न' मे 'जिनद' स्थान पर 'जिन' पाठ-पर्याय है ।

९१,१७३:२. स्वीकृत पाठ है

रागी होय सहे चहु गति दुष राग **घट्यां** सुष पास्या जी ।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'घट्या' के स्थान पर 'हट्यां' पाठ-पर्याय है ।

९२,१७३ ३ स्वीकृत पाठ है :

राजा मिट्या होय सवर निरजरा, पारस '**शिवपुर**' जास्या जी ।

प्रति 'अ' में 'शिवपुर' के स्थान पर शिवघर 'पाठ-पर्याय' है ।

९३,१७९ ७ स्वीकृत पाठ है

पारस सद्गुरू जोग तैं पायो सम्यक ज्ञान ।

धरिहू मैं उर कोस मैं, **करियो** परमान ।

प्रति 'अ' में 'करियो' के स्थान पर लिपिजन्य भूल के कारण 'धरियो' पाठ हो गया है; जो अर्थसगत नहीं है ।

९४,१८१.१ स्वीकृत पाठ है

रजमति पति **नेम** के वदू पाय ।

प्रति 'त' मे 'नेम के' के स्थान पर 'नेम प्रभु' पाठ है ।

९५,१८३ १ स्वीकृत पाठ है ·

किण रै **सैनाणै** प्रभुजी नै हे हो जी,

ग्रो लषा जी म्हाका राजि ।

प्रति 'त' मे 'सैनाणै' के स्थान पर प्रयुक्त 'सानाणैं' शब्द प्रचलित ग्रौर ग्रर्थसगत नहीं है ।

९६,१८५:१ स्वीकृत पाठ है ·

ग्रब तौ घर ग्रावो स्वामी **तुम विन वेहाल है** ।

प्रति 'ग्र' मे मोटे ग्रक्षरो छपे ग्र श का पाठान्तर 'ग्रपनी निधि भाल है' है । सम्बन्वित पद के ग्रन्तिम चरण मे इस ग्रर्द्ध पक्ति का उल्लेख होने के कारण टेक-पक्ति मे भी इसकी विद्यमानता श्रुतिदोप-जन्य भूल प्रतीत होती है ।

९७,१८६ १ स्वीकृत पाठ है

सजन तुम झूठ मति वोलो **प्रभू** कू साच प्यारा है ।

प्रति 'ग्र' मे 'प्रभू' के स्थान पर 'मया' पाठ है ।

९८,६८६ ३ स्वीकृत पाठ है -

धरम कू **सूचता** नायौ, तजो भवि झूठ दुपदायी ।

प्रति 'त' में 'सूचता' के स्थान पर 'सूझना' पाठ है ।

९९,१८८·५ स्वीकृत पाठ है

रसना लोलुप है जल मीना, **काँढै** प्रानं गुमायी ।

प्रति 'ग्र' में 'काढै' के स्थान पर 'काहै' पाठ है । पाठ-विकृति का कारण लिपिजन्य भूल है । 'काढै' शब्द का ग्रर्थ है 'निकालने पर' । प्रसग की दृष्टि मे 'काढै' पाठ ही ग्रर्थ-सङ्गत है ।

१००,१८६:१   स्वीकृत पाठ है .

सतगुरू नै **सांचो** उपदेस दीयो, ताय गह्यो पावो सुभ गतिथा ।

प्रति 'अ' मे 'साचो' के स्थान पर 'सम्यक' पाठ-पर्याय है ।

१०१,१६१:४.   स्वीकृत पाठ है ·

अन त ज्ञान लक्ष्मी के सागर, **परमातम** सुख वारो ।

प्रति 'अ' मे 'परमातम' के स्थान पर 'परमामृत' विकृत पाठ है । यह लिपिजन्य भूल श्रुतिदोष से भी सम्भव हो सकती है । स्वीकृत पाठ का अर्थ है—हे पावरिया ! (नेमिनाथ जी) तुम अनन्त ज्ञान एव अनन्त सौंदर्य के सागर हो, परम आत्मा तथा सुख सम्पन्न हो '

१०२,१६२.२   स्वीकृत पाठ है

मोह करम वसि हित नहिं **पेष्यो**, मथ्या मारिग रीज्यो ।

प्रति 'अ' मे 'पेष्यो' के स्थान पर 'समझ्यो' पाठ-पर्याय है ।

१०३,१६२ ४.   स्वीकृत पाठ है

और न भावू तुम ढिग चाहूं, मोकू तुम सो कीज्यो ।

प्रति 'त' मे मोटे अक्षरो ये छपे अ श का पाठ-विपर्यय है —तुम ढिग चाहू और न भावू ।

१०४,१६३:२   स्वीकृत पाठ है —

अनादिकाल तैं ना **जान्यां** हम, कैसा देवत भजना ।

प्रति 'अ' मे 'जान्या' के स्थान पर समझे' पाठान्तर है ।

१०५,१६६.८   स्वीकृत पाठ है :

पर तिय राच्या रावण भूपति, **दोंजग** मैं दुष पायो छै ।

प्रति 'अ' एव 'त' दोनो ही प्रतियो में 'दोजग' के स्थान पर 'दोजुग' विकृत पाठ है । यह पाठ लिपिजन्य भूल के कारण विकृत हुआ ।

१०६,१६७.५. स्वीकृत पाठ है

पाश्र्वंदास पिय के रग रचि कैं सगि रहूँगी **विजन** मै ।

प्रति 'त' मे 'विजन' के स्थान पर 'विपन' पाठ है ।

१०७,१६८ ४ स्वीकृत पाठ है

कृपा **धारि** त्यारो प्रभु 'पारस' अरज करत हू कोन वर को ।

प्रति 'त' मे 'धारि' के स्थान पर 'राषि' पाठ-पर्याय है ।

१०८,१६६ २. स्वीकृत पाठ है

चोहा चदन और **अरगजा** पिचकारन भर लायो ।

प्रति 'अ' मे 'अरगजा' के स्थान पर श्रुतिदोप के कारण 'अरकचा' पाठ हो गया है ।

१०६,२०० २. स्वीकृत पाठ है ·

मो सैं प्रीति प्रभू जी नैं तोरी,

ए हो ना जानू **बिलमायो** कोन ।

प्रति 'त' मे 'बिलमायो' के स्थान पर 'भरमायो' पाठ है ।

११०,२०२ ७ स्वीकृत पाठ है ·

पाश्र्वंदास दसवा भी भव मैं **कीनी तपस्या लारी** ।

प्रति 'त' मे मोटे अक्षरो मे छपे अ श का पाठान्तर इस प्रकार है–'सङ्ग तपस्या धारो।'

१११,२०७ १ स्वीकृत पाठ है

निज रूप निहारा, **भया उर मांय उजारा** ।

प्रति 'त' में मोटे अक्षरो मे छपे अ श का पाठान्तर हैं—असम सुष उपज्या भारा ।

११२,२०८ ४. स्वीकृत पाठ है :

वन मैं जाय **ध्याय** सिद्धनि कू, परिग्रह पटक्यो री ।

प्रति 'अ' मे 'ध्याय' के स्थान पर 'नाय' पाठान्तर है ।

११३,२०६.६. स्वीकृत पाठ है

चेति फेरि कव अवसर, जम तोय **जोवै** रै ।

प्रति 'अ' मे दृष्टिभ्रम के कारण 'जोवै' के स्थान पर 'तोवै' विकृत पाठ हो गया है ।

११४,२१६ ७ स्वीकृत पाठ है ·

बाहिर क्रयाकांड कीये तौ, पर ही पर दरसावैं ।

प्रति 'अ' मे मोटे अक्षरो मे छपे अ श का पाठ है—काडक्रिया करवे तैं ।

११५,२१७·३ स्वीकृत पाठ है :

सुवरण कलस धारि सिर ऊपरि जल करि न्हवन करावू ।

प्रति 'त' मे 'सुवरण' के स्थान पर लिपिजन्य भूल के कारण अशुद्ध पाठ 'सुवंण' हो गया है ।

११६,२२४.२. स्वीकृत पाठ है

जिन **जपिया** तिन निज सुष चषिया,

प्रति 'अ' मे 'जपिया' के स्थान पर त्रुटित पाठ 'जजिया' है ।

११७ २२६ ६ स्वीकृत पाठ है :

हित अनहित समझ्या विना **नमिये** जु अपार ।

प्रति 'त' एव 'न' मे 'नमिये' के स्थान पर 'अमिये' पाठान्तर है ।

११८,२३०.८ स्वीकृत पाठ है ·

अष्ट कर्म नासन जग **ज्ञायक** ।

प्रति 'त' मे 'ज्ञायक' के स्थान पर 'नायक' पाठान्तर है ।

११९,२३१ ७ स्वीकृत पाठ है :

मुक्तिमार्ग रतनत्रय भाष्यो, सो तो कठिन इलाज ।

प्रति 'त' मे 'मुक्तिमार्ग' के स्थान पर 'भक्तिमार्ग' पाठान्तर है ।

१२०,२३७ ३. स्वीकृत पाठ है ·

सुषकारी माता भली रै जोया, जिन वानी **अवगाहि** ।

प्रति 'त' मे 'अवगहि' के स्थान पर 'अवगादि' अशुद्ध पाठ है ।

१२१,२४६ २. स्वीकृत पाठ है :

बिन निरग्र थ सांच कथनी कू **चाहवान** किम पावै ।

प्रति 'त' मे 'चाहवान' के स्थान पर 'आसाधर' पाठ-पर्याय है ।

'प्रति 'त' एव 'न' मे मोटे अक्षरो मे छपे 'अ श के स्थान पर 'भावनि सहित ते' पाठान्तर है।

१३०,२८६.१५ स्वीकृत पाठ है।

पारस **पक्ष छाड़ि करि** परख्या, परखै सार असारा।

प्रति 'अ' मे मोटे अक्षरो मे छपे अ श के स्थान पर पक्षपात धरि' पाठ है, जो प्रतिकूल अर्थ का द्योतक होने के कारण अशुद्ध है।

१३१,२ ५. स्वीकृत पाठ है:

पारस निज परणति गही, **चनमूरति** जोयी।

प्रति 'अ' मैं 'चनमूरति' के स्थान पर 'मूरति' पाठ है। यह पाठ अर्थसगत नहीं है।

१३२,८.५ स्वीकृत पाठ है.

पारस कू सेवा फल दीजे, एक समाधि **दरसायी**।

प्रति 'अ' मे 'दरसायी' के स्थान पर दृष्टिभ्रम के कारण 'दसायो' अशुद्ध पाठ है।

१३३,२१ ७ स्वीकृत पाठ है.

पारस दृढ़ श्रद्धा **धरि भजिहै** क्यू नहि मुक्ति वरै।

प्रति 'न' में धरि भजि है' के स्थान पर 'भजि तोकू' पाठ है।

१३४,४.१६ स्वीकृत पाठ है:

पारस या तै ही **सत शिव जोई**।

प्रति 'त' मे मोटे अक्षरो मे छपे अ श के स्थान पर 'मुक्ति अबलोई जी' पाठान्तर है।

— ०.—

पाडंव्हास पच्चनीं

भैरू' रामकली पट ललित रु आसावरी टोडी भैरवी ।
ता पीछैं जु विलावल सारङ्ग धनासरी की सोहै छवी ।
पूर्वी चैती गौड़ी गौड़ी ईमन भोपाली केदार ।
हमीर काफी और खमावच झंझोटी जगलो गुणधार ।
अडाणों कानड़ों रू सोरठ विहाग परज कालिंगड़ों जानि ।
सोहनीं मालकोस विभास सिंदूर्यो इत्यादिक उर आनि ।
इत्यादिक रागान में कीनें पद सब लिख देहूं या मांय ।
वांचो पढो पढावो भविजन, यूं पीठिका रची सुखदाय ।

—पार्श्वदास

तीर्थंकर पार्श्वनाथ

पार्श्वदास के आराध्य देव

राग भैरू

(१)

अरहत भज[1] शिवदातार, नाशित मिथ्यातिमिरमपार ॥टेक॥
इष्टमभीष्ट सौख्यकृच्छिष्टमनिष्टहर, सत्रासितमार ॥१॥
त्रभुवनेशनुत पदमभिवद्य, नाशित दु ख जगदाधार ॥२॥
स्यात्पदचिन्हितमतिगभीर, मत[2] देशित येन सुसार ॥३॥
चिन्तामणि कल्पतरुमपर, भक्तया पार्श्वदास त्रातार ॥४॥

(२)

जिन[1] जगदाधार[2]
तारय मा त्वरित ।
घोर भवाटवी नाशन पावक, ज्ञायक त्रभुवन सार ॥१॥
काय वाग्मन सास्थितिरस्तु त्वयिनो पत्तीवत् मार ॥२॥
सुर नर फणपति वृ द नमित पद, निज सुख रत्नागार ॥३॥
त्रभुवनार्तिहर मम दु ख हर, पार्श्व जिन परवाचार ॥४॥

---

१ १ प्रति 'अ'—भजि । २. प्रति 'अ'—मत्त ।

२ १ प्रति 'अ'—श्री जिन । २. प्रति 'अ'— जगदाधा ।

राग भैरू

(३)

ध्यान धरो परमातम को बहरातम भाव बिसारो ।

बहरातम[1] होय भव दुष भोगे, लह्यो नही पद थारो ॥१॥

अब अवसर सहजा ही पायो, करो स्व पर निरधारो ॥२॥

आनदकंद चिदातम आतम, सो अब क्यो न निहारो ॥३॥

रतन त्रय दृढ धारि भविक ज्यो, बिनसै भव दुषकारो ॥४॥

अ तरातमां[2] होय कै पारस, शुद्ध ध्यान जब धारो ॥५॥

निश्चै शिव पावो अविनासी,[3] जामण[4] मरण विडारो ॥६॥

भैरू

(४)

आदीश्वर तोहे पूजन आयो, मन वच तन सुधि धार हो ॥टेक॥

जल चदन अक्षत जो अनोपम, पुष्प चरू सुमिलार[2] हो ॥१॥

दीप दसाग[3] धूप फल उत्तम, अर्घ करू सुषकार हो ॥२॥

झालरि घटा झाझि मजीरा, भेरि[4] दु दुभी लार हो ॥३॥

वाजा बजावत अर्घ चढावत, ल्यू नरभव फल सार हो ॥४॥

या वय मैं जप तप व्रत दुद्धर, कह्या करै दुषहार[5] हो ॥५॥

या तै 'पार्श्वदास पद पूजत, कोजे भवदधि पार हो ॥६॥

---

३ . १. प्रति 'अ'—वहिरातम । २ प्रति 'अ'—अन्तरात्मा ।
३. प्रति 'अ'—अविनाशी । ४ प्रति 'अ'—जा ।

४ : १ प्रति 'अ'—धारिहो । २ प्रति 'त' एव 'न'—सुमिलार ।
३ प्रति 'अ'—दशाग । ४ प्रति 'अ'—भेरी ।
५. प्रति 'अ'—दुखहार ।

राग भैंरू

(५)*

भोर भयो मन वच तन करि, श्री जिन चरणो[1] चित ल्यावो ॥टेक॥
सेज त्यागि[2] करि अग सुद्दता, विधि तै द्रव्य बनावो[3] ॥१॥
जल चदन कू आदि लेय कै, जिन पद पूज रचावो ॥२॥
पूजा करो देव गुरु जन की,[4] च्यार[5] भावना भावो ॥३॥
तप सजम कू धारि भविक जू,[6] भव भव पाप नसावो ॥४॥
वानी सुनो दिगवर गुरु दी, उर मे अरथ जचावो ॥५॥
दान च्यार[7] विधि देय भक्ति तै, दु.षित[8] कू[9] रांझमावो
आनद कद चिदानद[10] आतम के गुण, क्यू[11] नहि ध्यावो[12] ॥६॥
षट उपदेस धारि दृढ पारस, ज्यू[13] सिव[14] के सुष पावो ॥७॥

राग भैंरू

(६)

अरज करु सो सुणो[1] दयानिधि भव दुख किम मिटि जैहै ॥टेक॥
अभयदान और अन्न औषधो ज्ञान दान न बनैहै[2] ॥१॥

---

५ *प्रति 'अ' मे यह पद "आदीश्वर तोहे पूजन आयो" पद से पहले है।
१. प्रति 'अ'—चरणा।
२ प्रति 'अ'—त्याग।
३ प्रति 'त' व 'न'—बनायो।
४. प्रति 'अ'—वानी
५, ७. प्रति 'अ' च्यारि।
६. प्रति 'अ'—भव्य जू
८ प्रति 'अ'—दु.खित।
९ प्रति 'अ'—रजिमावो।
१० प्रति 'अ'—चिदानद।
११ प्रति 'अ'—क्यो।
१२ प्रति 'त' व 'न'—धारो।
१३. प्रति 'अ'—ज्यो।
१४. प्रति 'त' एव 'न'—शिव'।

सुगम बरत[3] श्रावक के द्वादस सोहू मन न चहैहै ॥२॥
पार्श्वदास चरणा[4] रो किंकर, रुचि करि गुण उचरैहै ॥३॥

राग भैरू

(७)

जै जैन बानी, जगत को तरानी, परम सुदरी तिहू जग जानी ॥१॥
पाताल के फैनी, पृथ्वी मंडल के गुनी, सुरबास मानी ॥२॥
सम्यज्ञान[1] को षनी भूमंडल मैं[2] मनी, स्वावास थानी ॥३॥
सुषदाता तू गिनी, पारस घ्याया अघ हनी, उर विचि[4] आनी ॥४॥

राग भैरू

(८) ✓

कब असा दिन आवैगा ।
मै ही ज्ञान ज्ञेय ज्ञायक मैं दूजा दृष्टि न थावैगा ॥१॥
भावक भाव्याभाव मे तीनू एक चेतन लव लावैगा ॥२॥
घर मैं वा बन मैं इकंत होय, नासा दृष्टि लगावैगा ॥३॥
पचेन्द्रिय मन रोकि घ्यान धरि, अपना अलष[1] जगावैगा ॥४॥
करता करम छवू[2] हो कारक ज्ञान ही परणति पावैगा ॥५॥
मैं ही गुणी और गुण मैं ही इक भेद विभाव नसावैगा ॥६॥

---

६ १ प्रति 'अ'—सुनो । २ प्रति 'अ'—वनैहै ।
३. प्रति 'अ'—वरत । ४ प्रति 'अ'—च णा ।

७ . १ प्रति 'अ' – सम्यकज्ञान । २. प्रति 'अ' – म ।
३ प्रति 'अ'—हनी । ४ विच ।

मैं ही आसिक और मैभूपा, मैं गुर[3] ज्ञान सिखावैंगा ॥७॥
मैं ही मिख्य[4] सीप मैं ही फुनि नय प्रमाण न कहावैंगा ॥८॥
मैं ही ध्याता ध्यान ध्येय मैं, धर्मी धरम न कहावैंगा ॥९॥
यू अद्वैत भाव मय थावै 'पारस' तव सुष पावैंगा ॥१०॥

चौतालो

(९)

प्रथम मणी[1] उंकार[2] देवंन मणि जिनदेव
ज्ञान मणि सम्यक्त वेद आदि ब्रह्मा ॥टेक॥
विद्यामणि सरस्वती तरुमणि अभा
साजन मणि मिरदग भक्तमणि रंभा ॥१॥
गीत को सगीत मणि संगीत को सुर मणि[4]
सुर को अक्षर जैन काटै कर्मफदा ॥२॥
कहत जैन आगम मैं सुनि लेहो[4] पार्श्वदास,
वादीमणी समतभद्र स्यादवाद चदा ॥३॥

(१०)

तुम सुप[1] करण भव दुष[2] हरण सुदर वरण हौ जिननाथ ॥टेक॥
भव समुद्र अथाह त्यारो, पकडि मेरो हाथ ॥१॥

---

८ १ प्रति 'अ'—अलख । २. प्रति 'अ'—छवू ।
३. प्रति 'अ'—गुरु । ४ प्रति 'अ'—शिष्य ।
५ प्रति 'त' और 'न' मे अन्तिम दो पक्तिया पहले और उनसे ऊपर को दो पक्तिया बाद में हैं ।

९. १–२ प्रति 'अ' – मणिडंकार ३ प्रति 'त' और 'न' मे 'देवन' से पहिले अतिरिक्त शब्द देव भी है ।
४ 'अ' प्रति मे 'मणि' शब्द का लोप । ५ 'अ प्रति—लैहो ।

टेर सुनि नहिं वेर कीजे, जोय मोय अनाथ ॥२॥
पार्श्वदास सकास बिनवू[3] राषि निज करि साथ ॥३॥

(११)

परमारथ[1] जानि गहो अध्यातम सैली।
स्वपर तत्त्व दरसावक मुक्ति नगर गैलो ॥टेक॥
देव धर्म गुरू पिछाणि, उपादेय हेय जाणि,
या ही तें[2] होत सुषी या विन मति मैली ॥१॥
ज्ञान को उद्योत होत परम जोति प्रगट होत,
वाह्य दृष्टि घटत माय ज्ञान कला फैली ॥२॥
जड चेतन भिन्न लषै,[3] अैसे जु विवेक रषै,
परषै[4] गुण आतमोक[5] निरषै निज थैली ॥३॥
या कलि मैं दुल्लभ यह जोग मिल्यो सुलभ जिनै,
पारस तिनकै सुमुक्ति निज तिय सम ह्वैली ॥४॥

(१२)

चेतन अनभव[1] विचारि[2] देषो[3] उरमायी,
मूढ़ हुये व्रथा भ्रमो[4] माया कै तांयी।
आये कोन[5] गति सै और जावोगे कहायी,
तुम माया नही लार लगे, रहेगी इहायी।

---

१० : १. 'अ' प्रति —सुख। २. 'अ' प्रति—दुख।
३ 'त' प्रति—विनवू। 'अ' प्रति—विनकू।

११ . १. 'अ' प्रति—परमातम। २. 'त' प्रति—तै।
३. 'अ' प्रति—लपं। ४. प्रति 'न'—परष।
५. 'अ' प्रति—आतमीक।

नाहि मिले[६] जाति पाति नाहि मिलै रीति भाति,
परकू नाहक आगेजि वृथा कुगति पायी।
सम्यक[७] गुरु देसना, विचारि[*] ग बेसना[८],
पारस[९] निज ज्ञान संपदा, सम्हारि भायी।

(१३)

एरे मन मेरे तू घनेरे सुष चाहै तौ,
जै जिनेंद जै जिनेंद जै जिनेंद कहु[१] रे ।।टेक।।
जीवक तै नाम मत्र सुनि कै सुर भयो स्वान,
तू मति भूले जिनेंद भजि कै[२] सुख लहु रे ।।१।।
अंजन मे चोर तिरे नाम मत्र[३] के प्रताप,
असो सुनिहै प्रभाव, तू भी दृढ गहु रे ।।२।।
तिरजंच सुर मिनष रटे, तिनकै[४] भव जाल कटै
'पारस' मनुज जन्म पाय, चरण सरण गहु रे ।।३।।

राग भैरू

(१४)

भोर भयो जिनराज देव भजि काज सरै जिय तेरा ।।टेक।।
अनादि काल के कुमति कुसग कू,[१] करि पाड[२] लिये उर फेरा ।।१।।

---

१२ · १ प्रति 'त' एवं 'न'—अनुभव। २. प्रति 'त' एव 'अ'—विचारि।
३ प्रति 'अ'—देखो। ४ प्रति 'त'—अम्यो।
५. प्रति 'अ'—कौन। ६. प्रति 'अ'—मिलै।
७ प्रति 'त' एवं 'न'—समक। ८ प्रति 'त' एव 'अ'—वेसना।
९ प्रति 'त' एवं 'न'—परम।

१३ · १ प्रति 'अ'—गह। २. प्रति 'अ'—कै।
३. प्रति 'अ'—मात्र। ४ प्रति 'अ'— तिन मैं।

चउ गति भ्रमण किये नाना विधि[3] दुप भुगते वहु केरा ॥२॥
व्यसन अन्याय पाप लति रति करि, किये पाप वहु भेरा ॥३॥
तिनकू[4] नास करण सुमरण करि मानहु कह्या हमेरा[5] ॥४॥
सुमरण किया तिरे वहुतेरे, गुरु दयाल इम टेरा ॥५॥
'पारस' धरि निश्चै करि सुमरण, धारहु सोप सवेरा ॥६॥

राग रामकली

(१५)

जिनमत की परतीति[1] भयी प्रतीति[2] भयी परतोति[3] भयो है ॥टेक॥
सव ही मत एकात विगुंठित, तत्व अनता धर्ममयी है ॥१॥
सो नहि समुझत[4] सव मतवारे, जैनी सो सव करत सयी है ॥२॥
निश्चै[5] अरु व्यवहार[6] नयन तै, परजय[7] गुणवत द्रव्य थयी है ॥३॥
भेद अभेद अनेक एक सत, असत[8] नित्य क्षण कहत वयो है ॥४॥
स्यात्पदचिन्हित[9] वाक्य[10] जैनमत, असै भाषत लोक जयी है ॥५॥
'पारस' जव लू शिव होवै, तवलू चाहत हू जिन मत ही[11] है ॥६॥

---

१४ · १ प्रति 'अ'—कु । २ प्रति 'अ'—पाडि ।
३ प्रति 'त' व 'अ'—विधि । ४ प्रति 'त' व' न'—तिनको ।
५ प्रति 'अ'—मेरा ।

१५ · १ प्रति 'अ'—परतीत । २. प्रति 'अ'—परतीत ।
३ प्रति 'अ'—परतीत । ४. प्रति 'अ'—समझत ।
५ प्रति 'अ'—निश्चय । ६ प्रति 'अ' एव 'त'—व्यवहार ।
७. प्रति 'त' व 'न'—पर्जय । ८ प्रति 'अ'—असन ।
९. प्रति 'अ'—सात्पदचिन्हित । १० प्रति 'त' एव 'न'—व्याक्य ।
११. प्रति 'त' एव 'न'—'जिन यही' । १२. प्रति 'त' एव 'न' मे अन्तिम शब्द 'है' का टेक के अतिरिक्त सभी पक्तियो मे लोप है ।

राग षट्

(१६)

श्री जिनराज दयानिधि नामी । मोकू तुम सम करहु अकामी ।।टेक।।

विसन अन्याय पाप लति हरिये, सुचि[1] रतन[2] त्रय मैं रुचि धरियो ।।१।।

पर परणति सो कुराह मिटावो, निज परणति गति मेरी पारो ।।२।।

तुम ढिगवा, तुम वचन[3] सुनत उर, वीतरागता जचत जगत गुर ।।३।।

जब होय विरह विषय सगि रचिहै, या कुबाणि[4] मेट्या[5] हम बचिहै[6] ।।४।।

भक्ति तुमारी तबलू चावू, जब लू सिवपुर[7] वास न पावू ।।५।।

अति समाधि मरण तुम मेवा, द्यो निरविघ्न[8] पार्श्व जिनदेवा ।।६।।

राग षट्

(१७)

गहला है रे नर गहला है ।

जिन पद सुमरण विन तू गहला है ।।टेक।।

मात तात सुत नाती[1] गोती, ये सव[2] मुतलब[3] का पैला है ।।१।।

तू न किसी दा कोवु[4] नहिं तेरा, फेरता[5] फरै[6] अकेला है ।।२।।

क्रोध लाभ छल मान विषय मद इन सेती, लखि तू[7] मैला है ।।३।।

पूजा दान सील तप संजम, जिन सुमरण बिन तू अहला है ।।४।।

मैं समभावू सो उर धरि लै निश्चै[8] शिवपुर का गैला है ।।५।।

भजि जिन पास आस तजि पर की पर सबध सोही फैला है ।।६।।

---

१६ १ प्रति 'त' एव 'न'—शुचि । २ प्रति 'अ'—रत्न ।
३ प्रति 'अ'—वचन । ४ प्रति 'त' एव 'न'—कुवाणि ।
५ प्रति 'अ'—मेल्या । ६ प्रति 'अ'—वचिहै ।
७ प्रति 'अ'—शिवपुर । ८ प्रति 'अ'—निर्विघ्न ।

१७ १ प्रति 'अ'—नाती । २ प्रति 'त' एव 'न' मे सव[2] 'ये' के बाद मे न होकर 'पैला' से पहले है ।
३ प्रति 'अ'—मुतलव । ४ प्रति 'अ'—कावु ।
५ प्रति 'अ'—फिरता । ६. प्रति 'अ'—फिरें ।
७ प्रति 'त' एव 'न'—लषि तू । ८ प्रति 'अ'—निश्चय ।

राग षट्

*(१८)

अरज दास की सुणो दयानिधि परदासत्व हरो रषि तुमरो ।।टेक।।
परवसि ह्वै भुगते चौरासी, सो दुष तुम जानत हौ सघरो ।।१।।
एक सास मैं जन्म मरण ठारा, भुगतत भमियो जिम भमरो ।।२।।
अब तुम चरण सरण निठ पायो, ज्यो तरु अणु जलितरु ह्वै त रूरो ।।३।।
ता तै अरज करु औसर पय पडित मृति द्यो कर हरि जम रो ।।४।।
पार्श्वदास कू वोध दोजिये, मेरो करो उद्धार अधम रो ।।५।।

राग षट्

*(१९)

सुनि प्रभु पार्श्वदास कहलाकै कापै जावू लाज लजू ।।टेक।।
सेठ सुदर्शन सुत विष हरियो दुलभतम तुम नाम भजू ।।१।।
द्रुपद सुता मझि द्वीप धातु की क्लेश मेटि दियो पाव जजू ।।२।।
तुमारो भरोसो राष्यो सीता, अगनि कुड सब तोय पजू ।।३।।
वज्रकरण तै सीघोदर को, मान राषियो नाथ अजू ।।४।।
सुर नर खगपति रटत एक चित, तिन ही के सब सिद्ध कजू ।।५।।
करुणानिधि सर्वज्ञ कहा कहू, तुम सहाय तै मैं भी सजू ।।६।।
वडो काज करणो है मेरो, अल्प काज तै विलम तजू ।।७।।
मेरो निज धन चोर हरत है, ताहि दिलावो करहु रजू ।।८।।
पर तै करत सहाय ग्रामपति, तुम त्रिलोकपति पाव पजू ।।९।।
पार्श्वदास निज दास जानि निज, पास रषावोगे अवजू ।।१०।।

---

*यह पद केवल प्रति 'अ' मे हैं।

*यह पद केवल प्रति 'अ' मे हैं।

राग षट्

(२०)

सात व्यसन मध मति जाय मोरे, भूलि जायगो[1] तौ फसि जायगो ।।टेक।।
दूर से ही त्यागि डारौ, छीवो[2] मति कहू तोय,
साचो जैन मत तो तै[3] नसि जायगो ।।१।।
दयामयो भाव राषो, त्यागद्यो कठोर बानी,
ऐसे[4] ही धरम उर बसि जायगो ।।२।।
राग दोष[5] मोह त्यागो, मान कू विडारि नाषो,[6]
पारसदास[7] साचे पथै[8] धसि जायगो ।।३।।

राग षट्

(२१

शिव से जोरि प्रभू हम से न तोरो,
भक्त होय हम साचो कहेगे ।।टेक।।
तुम जिनचद ज्ञान प्रकासो, हम कुमोदिनी किरण गहैगे[1] ।।१।।
तुम जिन जोगी, जग जिय, तारक हम हू अरजिका सगि[2] रहैगे[3] ।।२।।
तुम ढिग हम दस[4] भव तै[5] लारी, तुमरि साथि हम कर्म दहैगे[6] ।।३।।
अरज करै रजमति सुपियारी, पासदास[7] ह्वै मुक्ति वरैगे[8] ।।४।।

---

२० १ 'अ' प्रति—ज्यायगो । २ 'अ' प्रति—छीवो ।
३ 'अ' प्रति—सै । ४ 'अ प्रति—अैसे ।
५ 'अ' प्रति—द्वेष । ६ 'अ' प्रति—नाषो ।
७ प्रति 'त' और 'न'—पार्श्वदास । ८ प्रति 'अ'—पथ ।

२१ १ प्रति 'अ' और 'त' मे—गहैंगे । २ प्रति 'अ'—सग ।
३ प्रति 'अ'—रहैगे । ४ प्रति 'अ'—दश ।
५ प्रति 'त' और 'न'—की । ६ प्रति 'अ'—दहैगे ।
७ प्रति 'अ'—पार्श्वदास । ८ प्रति 'अ' और 'त'—वरैगे ।

राग षट्

(२२)

आजि वीर जिन मुक्ति पधारे, त्रभुवन पति मिलि पूजे सारे ।।टेक।।
पावापुर ढिग सुंदर बन[1] मैं, सकल देव जय शब्द उचारे ।।१।।
अगनि कुमार[2] अगर चदन जुत, मुकट अगनि[3] करि भस्म करारे ।।२।।
भस्मी सुरपति[4] मस्तग धारे भविजन आये सोर सुनारे ।।३।।
घर घर दीपक जोति जगारे, ता दिन तै उच्छव[5] चलिया रे ।।४।।
सतक च्यार सत्तरि सवत्सर[6] पोछै विक्रम राज धरा रे ।।५।।
कातिग कृष्ण चतुर्दसि[7] कारे, पिछली निसि के इक घटिया रे ।।६।।
मोदकादि नैवेद्य छितारे, सो ही ले भवि[8] पूज रचा रे ।।७।।
सो उच्छव[9] अबलू लषि पारस, मुक्ति गमन श्रद्धान धरा रे[10] ।।८।।

राग भैंरू

(२३) ✓

तुम[1] गरीब के निवाज, मैं गरीब तेरो ।
तुम समान कीजे प्रभु, सुख जे दुष[2] मेरो ।।टेको।।
दीनबधु दयासिंधु नाम सुन्यो[3] तेरो ।
मेरो वसुकर्मनि को मेटो उरझेरो[4] ।।१।।

---

२२ १ प्रति 'अ' एव 'त'—वन । २ प्रति 'अ'— अग्निकुमार ।
३ प्रति 'अ'—अग्नि । ४ प्रति 'अ'—सुरपति और मस्तग के मध्य मे 'मति' का निरर्थक आगमन ।
५ प्रति 'अ'— उछव । ६ प्रति 'त'—संवत्स । ७ प्रति 'अ'— चतुर्दशि ।
८. प्रति 'अ'—भवि । ९ प्रति 'त' और 'न'— उच्छ ।
१० प्रति 'त' और 'न-— धारे

तारक भवजीवन को ज्ञायक जग केरो।
मेरे तुम नायक प्रभु, मैं हू तुम चेरो ॥२॥
मैं तो निज रूप भूलि, कर्मनि को घेरो।
विषयनि[५] रसरक्त भयो, रह्यो नाहि नेरो ॥३॥
पूर्व पुण्य के प्रताप, सरण गह्यो तेरो।
कर्मनि को बंध मेरो, पार्श्व प्रभु उघेरो ॥४॥

राग भीवपलासी

(२४)

नमो नमो संसार तारायण,
तू ही बिधाता[१] तेहू लोकपती नमो ॥टेक॥
असुभ संहारक मोह[२] निवार[३] लोकेसुर हूवे पती ॥१॥
हम हू कू तारायण दु ष निवारण भो सागर मलानी को पिछानि लीयो
उबारो पारस पती॥२॥

राग भैरू

(२५)

या विधि[१] निति सुमरि भव्य श्रावक सुभ किरिया।
मानुष भव मिलियो यह आत्म काज बिरिया[२] ॥टेक॥
प्रथम ही जिनेंद्र चंद सद्गुरू परचरिया।
जिनागम अभ्यास करो मिथ्या भ्रम हरिया ॥१॥

---

२३ : १ प्रति 'त' एव न'—जुम। २ प्रति 'त' एव 'न'—दुख।
३. प्रति 'अ'—सुन्यो। ४. प्रति 'त' एवं 'न'—उरझेरो।
५ प्रति 'अ'—विषयन।

२४ · १. प्रति 'त' एव 'अ'—विधाता। २. प्रति 'न'—निवारि।
३ प्रति 'अ'—मो। ४. प्रति 'अ'—वारि।

संजम तप धारि दान दीया बहु[3] उवरिया।
धन्य पुरुष नर भव लहि सुज्ञान मरण मरिया ॥२॥
ज्ञान विना[4] किरिया सब भाषी है अकिरिया।
'पारस' जुत ज्ञान क्रया किया काज सरिया ॥३॥

राग भैंरू

(२६)

अहो पास जिनराज दास मोहे[1] अपनो[2] जानि[3] उबारो[4] ॥१॥
मेरी निज निधि कर्म ठगत है इनको संग निवारो ॥२॥
विषय चाट बसि[5] करि कै मोकू, ध्यान छुड़ावत थारो ॥३॥
मोह तत्व कू जोर भुलावत, या को सग बिडारो[6] ॥३॥
क्रोध लोभ छल मान सकल तै, मोकू तो अव टारो ॥४॥
इन सगि दुख सहे बहुतेरे,[7] रूप न जान्यो[8] थारो ॥५॥
अब तुम भक्ति चहू निस वासुर, ज्यो होवै सुरझारो ॥६॥
जब लू मैं शिव नगर न पावू, पारस तब लू[9] चाबू ॥७॥
इन तै[10] गैलि छुड़ाय दयानिधि, तारक विरद तुमारो ॥८॥

---

२५ १ प्रति 'त' एवं 'अ'—विधि। २ प्रति 'अ'—विरिया।
३ प्रति 'अ'—वहु। ४. प्रति 'अ'— विना।

२६ १ प्रति 'अ'—मोय। २ प्रति 'अ'—अपणो।
३ प्रति 'अ'—जाणि। ४. प्रति 'अ'—उवारो।
५. प्रति 'अ'—वसि। ६ प्रति 'त' एंव 'अ'—विडारो।
७. प्रति 'त' एव 'न'—बहु दिन सं। ८ प्रति 'अ'—जाण्यो।
९ प्रति 'अ'—लो। १०. प्रति 'त' एव 'न'—तै।

राग असावरी, तितालो

(२७)

आजि रो दिन रुडो छै हे मोरी अमा सब[1] दुष जासी ।।टेक।।
जिन री मूरति ओ लषा करा गुरु[2] दी सेव ।।१।।
वाणी रा परसाद तै पास्या सौख्य अछेव ।।२।।
सप्त तत्व रुचि ल्याय कै करि सरधा मन माय[3] ।।३।।
धर्म धारि दस लच्छणी रत्न त्रय रुचि[4] लाय ।।४।।
आतम रूप विचारि[5] सुभ करहु ग्रहण मन भाय[6] ।।५।।
'पारस' मेवा पायकै फिर न रहू जग माय ।।६।।

राग असावरी, ताल सू

(२८)

हा रै[1] भायी[2] समझि करो मन मायी[3] ।।टेक।।
पुत्र मित्र भगनी[4] सुत वनिता[5] ये सब मुतलब कायी ।।१।।
आतम काज करो तुम अपनो, तामैं विघन करायी ।।२।।
धन सपति जो होय तुमारै सब मिलि तोय सरायी ।।३।।
असभ[6] उदय तै[7] षीण[8] होत धन, तब तोहे[9] मूढ बतायी ।।४।।
निज कारिज मैं ढील न कीजे पर सब हैं दुषदायी ।।५।।
'पारस' आतम रुप गहौ अब, फिर यो[10] अवसर नायी ।।६।।

---

२७ १ प्रति 'अ'—सव । २. प्रति 'अ'—गुरु ।
३ प्रति 'अ'—माहि । ४ प्रति 'अ'—उर ।
५ प्रति 'अ'—विचार । ६ प्रति 'अ'—माय ।

२८ १ प्रति 'त' एवं 'न'—र । २. प्रति 'अ'—भाई ।
३ प्रति 'अ'—माही । ४. प्रति 'अ'—भगिनी ।
५. प्रति 'अ'—वनिता । ६. प्रति 'अ'—असुभ ।
७. प्रति 'त' एवं 'न'—तै । ८. प्रति 'अ'—क्षीण ।
९ प्रति 'अ'—तोयै । १० प्रति 'त' एवं 'न'—यह ।

राग असावरी

(२९)

नेम जी नेहरा लगाय कित जादा[1] ।।टेक।।
सांवरी[2] सूरति मोहनी मूरति लषि तृलोक हरषादा[3] ।।१
जदुकुल चंद उजागर नागर तुम बिन कछु न सुहादा[4] ।।२।।
रजमति अरज करै चरनन ढिगि पार्श्वदास गुण[5] गादा ।।३।।

राग असावरी, तितालो

(३०)

ते नर जाणि दिगबर[1] जतिया ।।टेक।।
पाच महाव्रत समिति[2] गुप्ति त्रय पालत है दिन रतिया ।।१।।
हिंसा झूठ चोरी पर तिरिया, परिग्रह मैं नहिं गतिया ।।२।।
जिन क्रोधादिक बैरी[3] हतिया, बोलत[4] है हित मितिया ।।३।।
'पारस' असे गुरू कू पूजत ते काटत भव ततिया[5] ।।४।।

---

२९ १. प्रति 'अ'—जावदा । २. प्रति 'त' एव 'न'—सावरि ।
३. प्रति 'अ'—हरषावदा । ४. प्रति 'अ'—सुहावदा ।
५. प्रति 'अ'—गुन ।

३० १ प्रति 'अ'—दिगवर । २ प्रति 'अ'—समित ।
३ प्रति 'अ'—वैरी । ४. प्रति 'स'—वोलत ।
५ प्रति 'अ'—ततिया ।
प्रति 'अ' में 'जतिया,' रतिया,' 'गतिया,' 'मितियां,' ततिया शब्दो मे भी अनुनासिकता का लोप है ।

आसावरी

(३१)

श्री जिन पूजिहू जी अधम उधारक विरद[1] निहारि ।।टेक।।
जल चदन कू आदि ले जी, अष्ट द्रव्य को अरघ[2] बनाय ।।१।।
नास[3] करू वसु कर्म को जी, श्री जिनवर के[4] चरण चढाय ।।२।।
जप तप संजम ना वनै जी, प्रभुजी[5] सुद्ध[6] पूजन बनाय ।।३।।
भाव भक्ति सू वीनवू जी, म्हारो[7] आवागमन[8] मिटाय ।।४।।
पारसदास[9] चर रावरो जी, तुम कू छाडि[10] कोण पै जाय ।।५।।
कल्प वृक्ष कू छाडि कै जी, मूरष[11] बैठे थोहर[12] छाय ।।६।।

आसावरी

(३२)

हो ज्ञानी[1] कैसै विसरि गये मतिया ।।टेक।।
बेर बेर[2] तोयै[3] गुरू समझावै[4] तजि विषयन[5] मै लतिया ।।१।।
तू चेतन जड मै[6] इम राचत, यह[7] तौ जोग्य[8] नहि वतिया ।।२।।
'पारस' निज पर की करि छाटण, पावो पंचम गतिया[9] ।।३।।

---

३१ १ प्रति 'अ'—विड्द ।　२ प्रति 'अ'—अर्घ ।
३ प्रति 'अ'—नाश ।　४ प्रति 'अ'—कै ।
५ प्रति 'अ'—मोमें ।　६ प्रति 'अ'—शुद्ध ।
७ प्रति 'अ'—महारो ।　८ 'त' एव 'न'—जामणमरण ।
९ प्रति 'त' एव 'न'-पार्श्वदास । १० प्रति 'अ'—छोडि ।
११. प्रति 'अ'—मूरिष ।　१२ प्रति 'अ'—थोहरि ।

३२ १ प्रति 'अ'—ज्ञानी ।　२ प्रति 'अ'—वेर वेर ।
३ प्रति 'अ'—तोये ।　४. प्रति 'त' एव 'न'—समझावत ।
५ प्रति 'अ'—विषयनि ।　६ प्रति 'त' एव 'न'—तै ।
७ प्रति 'अ'—ये ।　८ प्रति 'अ'—जोग ।
९ प्रति 'अ'—गतिया । इसके अतिरिक्त 'मतिया,' 'लतिया,' 'वतिया' और 'गतिया' अन्य शब्दो मे भी अनुनासिकता नही है ।

राग माढ़

(३३)

चालो सषी देषन जय्ये नवल,
आनद रच्यो श्री अजोध्या मैं नाभि नरेंद्र।
सुरपति सची जुत नचत अमद,
हरषत सुर नर षग नृप वृंद।
सारगी मजोरा बाजे वसरी मदंग,[1]
गदरफ[2] किंनर गावै, नाना छंद।
मोरा देवी अग न मावै, लषि निज नद
पारस उग्यो मानू तृभुवन चंद।

आसावरी

(३४)

कोवू कछू कहौ सब त्यागा[1] रे ।।टेक।।
अनत काल सूते मिथ्यात बसि[2] बहुत[3] दिनन मैं जागा रे[4] ।।१।।
तन धन जोबन[5] सकल विनस्वर[6] किस दी लार न लागा रै ।।२।।
सम्यक गुरु प्रसाद जिन श्रुत तैं निज स्वरूप मैं पागा रै ।।३।।
'पारस' भेद ज्ञान जिन कै घट ते जग मैं बड़भागा रे ।।४।।

---

३३ · १ प्रति 'अ'—मृदग। २ प्रति 'अ'—गधरफ।

३४ १ प्रति 'अ'—त्यागया। २. प्रति 'अ'—वसि।
३ प्रति 'अ'—वहुत। ४ प्रति 'अ'—जाग्या।
५. प्रति 'अ'—जोवन। ६. प्रति 'अ'—विनश्वर।

*(३५)

उत्तम त्याग सुधर्म कू अवधारी रै भाई ॥टेक॥
त्याग दान इक अर्थ जानियो, नाम भेद इन मायी ॥१॥
गृहचारा मे दान बडो है, भाषी तृभुवन रायी ॥२॥
नव विधि सकल सपदा पायी, आ पर विनसै भायी ॥३॥
या तै पर उपगार करत है, तिन ही महिमा पायी ॥४॥
त्याग विना बहु पाप बाधि सिर चहु गति माय रुलायी ॥५॥
'पारस' त्याग किया सुष विलसै, परपराय शिव जायी ॥६॥

राग आसावरी

(३६)

हा रे ज्ञानवारे जरा मेरी सुनते जय्यो ।[1]
हिंसा सेती डरते रयो ॥टेक॥
जैन धरम मे हिंसा वरजी, दया भाव अनुसरते रय्यो ॥१॥
सत्य सील तप व्रत इत्यादिक, याही हेत सब करते[2] रय्यो[3] ॥२॥
'पारस' जिन मत सार दया लषि, मुनि[4] श्रावक सब धरते रयो ॥३॥

(३७)

ज्ञान सूर्योदय नाटक ग्रंथ दरसावै शिवपुर को पथ ।[1]
याकू जो धरै सोही मुक्ति महल पैडी चढै ॥टेक॥
कुमति सुमति को जहा समाज,
दोवु[1] तिय को पति आतमराज[2]

---

*यह पद प्रति 'अ' मे नही है ।

३६ १ प्रति 'अ'—जयो । २–३ प्रति 'अ' करय्यो ।
४ प्रति 'अ'—'मुनि' शब्द का लोप ।

सुमती सुत ज्ञानादिक साच[3]
मोहादिक की हरि हर सहाय,
जिनवर ज्ञानादिक के पाय[4]
सब ही मत के सूतर सुने
जिन मत विन दया कहा[5] मुने।
दया न पायी सब मत माय।
निर ग्रथनि[6] मैं वा ठहराय।
जिन वाणी प्रसाद लहि[7] राज,
ज्ञान कियो प्रभु कू महाराज।
पुनि वैराग भावना भाय।
आतम भये मुकति के राय।
झूठे[8] लषिये सब मतवान,
'पारस' साचो जैन वषान ॥३७॥

राग आसावरी

(३८

पर कू[1] क्यू[2] अपनाया रे अज्ञानी ॥टेक॥
तू ज्ञानी और सब अज्ञानी तैं[3] ये नाय पिछानी ॥१॥
पर के नेह तैं, भव दुष भोगे, बहुत[4] भये हैरानी ॥२॥
अजहू चेति संभालि निजातम समझावै जिनवानी ॥३॥

---

३७ १ प्रति 'अ'—दोवू। २ प्रति 'त' और 'न'—आतमराम।
३ प्रति 'त' एव 'न'—ज्ञानादिक सुमती सुत साच। ४ प्रति 'त' एव 'न'—थाय।
५ प्रति 'अ'—कहा। ६ प्रति 'अ'—निरग्रथन। ७ प्रति 'त' एव 'न'—तहि।
८ प्रति 'अ'—झूठे।

पर सबध सो कुवध करत है, त्यागे तै[४] शिव थानी ॥४॥
राग द्वेष तजि होय समतामय, ये बातें सुष षानी[६] ॥५॥
'पारस' निज स्वरूप ही सुषमय सम्यक्र गुरु तै जानी ॥६॥

आसावरी तथा वखा की ठुमरी मैं

(३९)

सया[१] मुनि भेषवा गहीलो रे।
हो रे[२] देषो वारी[३] सी उमरिया मैं रे सया ॥टेक॥
कोन चूक परि त्यागी मोहि कू[४],
जीव मैं अदेसवा वहीलो रे ॥१॥
तजि कें गये मेरी सुधि हू ना[५] लीनी,
शिव तिय उर हृचि गयीलो[६] रे ॥२॥
हम हू पिया सग[७] रहूगी अराजिका,
'पारस' परिग्रह जहीलो रे ॥३॥

---

३८ १ प्रनि 'त' एव 'न'—क। २ प्रति 'त' एव 'न'—क्यो।
३ प्रति 'अ'—तें। ४. प्रति 'अ'—वहुत।
५ प्रति 'त' एव 'न'—तै। ६ प्रति 'अ'—सुखखानी।

३९ १ प्रति 'अ'—मय्या। २ प्रति 'अ'—'हो रे' का लोप।
३ प्रति 'अ'—'बारी' से पहले 'जी' का आगमन। ४ प्रति 'अ'—'मोहि कू' का लोप
५ प्रति 'अ'—ना।
६. प्रनि 'अ'—गईलो। ७. प्रति 'अ'—सगि।

(४०

आकिंचन[1] धरम धरि भायी,
परिग्रह की ममता[2] दुखदायी ॥टेक॥
ममता करि समता नहिं आई,
ताही तै भव भ्रमण कराई ॥१॥
हौ उपयोग स्वभाव सदाई,
पर परणति तै दुरगति पाई ॥२॥
जन्म मरण मैं प्रगट लषाई,
तू तिहुकाल एक गुरु[3] गाई ॥३॥
पर सजोग वियोग कराई,
राग द्वेष करि कर्म[4] बंधाई[5] ॥४॥
अनत काल या बिन भरमाई,
'पारस' धारया[6] ह्वै शिवराई[7] ॥५॥

राग भैरवी

(४१)

श्री जिन ओरी[1] हो मनवा हमारा बिलमाया[2] ॥टेक॥
शान्ति छवी थारी हो लषि लषि कर्म नसाया।
मुनि जन से उमगाया ॥१॥

---

४०. १ प्रति 'म'—आकिंचन्य। २ प्रति 'म'—ममा।
३. प्रति 'म'—गुरु। ४. प्रति 'म'—बर्ष।
५. प्रति 'म'—कराई। ६. प्रति 'त' एवं 'न'—धार्यो।
७ प्रति 'म'—शिवरायी।

सक्री चक्री हो तुझि पद कमल नमाया।
ज्ञानी ध्यानी ध्याया ॥२॥
'पारस' रषिये हो जब लू शिव नहिं पावू।
तब लू[3] सरणै आया ॥३॥

राग भैरवी, तितालो

(४२)

मोहनी मो पै[1] टोना कीना हे ॥टेक॥
वच तुमरे तब विसरि गयो मैं नाम मत्र न[1] गहीना ॥१॥
पर जड को सबध पाय[2] कै[3] हित मैं चित नहिं दीना ॥२॥
अव[4] तुम सरन[5] गही प्रभु 'पारस' मोह विजय करि लीना[6] ॥३॥

(४३)

लाषू वेर्‌या जीया कू समझायो जी ॥टेक॥
निराबाध[1] सुष[2] तेरै वोहौतेरा[3], पर मैं क्यूं[4] विलमायो जी ॥१॥
रत्नत्रय पथ है सुषदायो,[5] आन लषो दुषदायो जी ॥२॥

---

४१ १ प्रति 'अ'— औरी। २ प्रति 'अ' – विलमाया।
३ प्रति 'अ' —लौं।

४२ १ प्रति 'अ'—पें। २ प्रति 'अ'—सवंघ।
३ प्रति 'अ'—कै। ४ प्रति 'अ'—अव।
५ प्रति 'अ'—शरन।
६ प्रति 'अ'— लीना'। इसके अतिरिक्त 'कीना' 'गहीना' शब्दो मे भी अनुनासिकता का लोप।

अनादिकाल सों पर में रचि के[६] आतमरूप भुलायो ॥३॥
यह[७] उपगार[८] कियो[९] प्रभु[१०] पारस फेरू ज्योति बनायो ॥४॥

(४४)

मुनिवर वंदन जाऊं जाय रे तिहूं वेला[१] ॥टेक॥
मुनिवर वंदत[२] सब दुख[३] भंजत आतमीक[४] सुख पाऊं ॥१॥
अनादि काल तें कबहु न लख्यो[५] कोऊ[६] सो सुखमय दरसाऊं ॥२॥
'पारस' त्रिभुवन वंदित[७] मुनि पद, पाय न जग भरमाऊं[८] ॥३॥

भैरवी

(४५)

हो वैरनि कुमता तजि मो नार ॥टेक॥
दुरजन लोक जगत में बहुते उन तें करि ले[१] प्यार ॥१॥
अब हमरे सुमता[२] दिढ[३] सजनी, है शिव सुखदातार[४] ॥२॥
'पारस' तजो कुमति दुखदानी, पहुचे[५] शिवघर द्वार ॥३॥

---

४३ : १ प्रति 'अ'—निराबाध । २. प्रति 'अ'—सुख ।
३ प्रति 'अ'—बहुतेरा । ४. प्रति 'त' एवं 'न'—भयो ।
५. प्रति 'अ'—शिवदायो । ६ प्रति 'त' एवं 'न'—राच्यो पर में ।
७ प्रति 'अ'—ये । ८ प्रति 'अ'—उपकार ।
९-१०. प्रति 'अ'—सुगुरु को ।

४४ . १. प्रति 'अ'—वेला २ प्रति 'अ'—वदत ।
३. प्रति 'अ'—दुख ४ प्रति 'अ'—आतमीक ।
५. प्रति 'अ'—लख्यो । ६ प्रति 'अ'—कोबू ।
७. प्रति 'अ'—वदत । ८ प्रति 'अ'—भरमावू । इसके अतिरिक्त 'दरसावू', 'पाव', मे भी अनुनासिकता का लोप ।

४५ . १. प्रति 'अ'—ले । २ प्रति 'अ'—समता ।
३ प्रति अ'—दृढ । ४. प्रति 'अ'—सुखदातार ।
५. प्रति अ'—पहुचे ।

राग भैरवी

(४६)

समझि दिल कोयि[1] नही, अपुना[2] ॥टेक॥
मात तात और वधु[3] तिया सुत सुष सपति सुपंना ॥१॥
आय अचानक जम ले जासी, करि मुंष[4] जिन जपनां ॥२॥
'पारस' दान सील तप धरिये, यू वसु[5] विधि[6] षपना ॥३॥

राग भैरवी

(४७)

चलनें की वेरिया क्यू[1] विसरि[2] गयो ॥टेक॥
ना कोवू गहसी[3] लार न रहसी, पुण्य पाप संगि रह गयो ॥१॥
वीतराग गुरू फिर कव[4] मिलसी, विषयंन[5] मैं कहा वहि गयो ॥२॥
'पारस' साम्य भाव गहि सुषमयं[6] करुणानिधि इम कहि गयो ॥३॥

---

४६ १ प्रति 'अ'—कोई। २ प्रति 'अ'—अपना।
३. प्रति 'अ'—वध। ४ प्रति 'अ'—मुख।
५ प्रति 'अ'—वसु। ६ प्रति 'अ' विधि।

४७ १. प्रति 'त' एव 'न'—क्यो। २ प्रति 'अ'—विसरि।
३ प्रति 'अ'—ग्रहसी। ४. प्रति 'अ'—काव।
५ प्रति 'अ'—विषयनि। ६ प्रति 'अ'—सुखमय।

पद राग भैरवी

(४८)

चिमत्कार जिनद मेटो[1] करमा के फद ।
ज्ञानावरणादिक जो ज्ञान बिगाड्यो,
म्हारो ढाक्यो[2] सहजानंद ॥१॥
मोहनी तत्व कू जी जोर भुलावत,
पापी कीजे मूल निकद ॥२॥
अतराय हरिये, अनंत चतुष्टय दीजे,
'पारस' होवू[3] निद्वंद्व ।

राग भैरवी, विलावल

(४९)

या जीव[1] को हित जिनवानी है ॥टेक॥
असुभ दोय गति कू छुडवावै,
सुभगति दानी है[2] ॥१॥
स्वपर तत्व दरसावन-दीपक,
ध्यावत ज्ञानी है ॥२॥
'पारस' मन वच तन करि सेवो,
शिव सुषषानी[3] है ॥३॥

---

४८ १ प्रति 'अ'—काटो । २ प्रति 'अ'—ढाक्यो ।
३ प्रति 'अ'—होवु ।

४९ १ प्रति 'त'—जिव । २. प्रति 'त'—छै ।
३. प्रति 'अ'—सुखखानी ।

राग विलावल

(५०)

ग्रैसे ध्यावो ग्रातमराम,

शुद्ध चेतना रसमयी उज्जल ।।टेक।।

कर्म को कर्त्ता भोग को भोक्ता या कथनी जा माय[1] निकाम ।।१।।

जा मैं एकेंद्री पचेंद्री ग्रैसे भेद नही ग्रभिराम ।।२।।

हैं निरदोष वध नहि मोचन सदा ज्ञानमय है ग्राराम ।।३।।

ज्ञान गम्य[2] दरसन है जाको, लोकातीत पूज्य है धाम ।।४।।

शुद्ध वस[3] घट माय विराजत[3], 'पारस' ध्यावो तजि सव[5] काम ।।५।।

राग विलावल

(५१)

या विधि[1] सुमरो ग्रातमराम ।

निषिल[2] द्रव्य प्रतिभास जास मैं ।।टेक।।

पचेंद्रिय वसि राषि ध्यान धरि

ग्रतर षोज करो ग्रभिराम,

चेतन ज्ञान सरूप ज्ञान धन,

तिहू पन[3] ज्ञान मांय[4] विश्राम.

---

५० १ प्रति 'म'—न्याय । २ प्रति 'व' एव 'न'—गम्य ।

३. प्रति 'न'—वम । ४. प्रति 'म'—विराजत ।

५ प्रनि 'म'—सव ।

जा मैं ज्ञेय सकल प्रतिभासै,
ज्यों दर्पण मे बिंवित माम[5]
है शुचि[6] शुद्ध शुद्ध नय सेती,
'पारस' सुमरो[7] आठू[8] जाम ॥५१॥

राग विलावल

(५२)

एकहि जीव वस्तु के नाम है,
गुन[1] रूप अनेक भेद कर ॥टेक॥
है निरजोग शुद्ध सो आतम,
है अशुद्ध परजोग बिराम[2] है ॥१॥
वेद पढे देव ब्रह्म कहत है,[3]
कर्म कहत मीमासक ताम है ॥२॥
शिव मत मैं शिव बुद्ध[4] बौध[5] मत,
जैनी जैन भाषै[6] अभिराम है ॥३॥
न्यायवाद[7] करतार प्ररूपै,
षटमत वचन[8] मिले नहिं दाम है ॥४॥

---

५१ : १ प्रति 'अ'—विध । २ प्रति 'अ'—निखिल ।
३. प्रति 'अ'—तिहुपन । ४ प्रति 'अ'—माय ।
५. प्रति 'अ'—नाम । ६ प्रति 'अ'—सुचि ।
७. प्रति 'अ'—सुमरो । ८ प्रति 'अ'—आठू ।

'पारस' तो सरबाग[9] पिछानो,
स्यादवाद मे[10] करि बिसराम[11] है ।।५।।

राग विलावल

राग विलावल

*(५४)

जिन धर्मी की रीति वतावै, आगम मैं सद्गुरु इम गावै ॥टेक॥
प्रथमहि सातू विसन तजावै और अन्याय अभक्ष न जावै।
पाचू पाप प्रवृत्ति घटावें, पा तिय धन घड घडि षावै।
सम्यक देव धर्म उद्धारक[1], तिन ही तै अति प्रीति वढावै।
वहु श्रुती जिन धर्मी लखि कै, मित्र करै स्वाध्याय रचावै।
तीन गुणव्रत और सिप्याव्रत, इन तै नित निस दिन रीति रचावै।
तीनू काल धरै सामायक चउपव्वी उपवास जचावै।
चित्त भक्त त्यागी दयाल अति, रीति दिन विन न करावै।
या विधि है जघन्य श्रावक विधि मध्यम अव ब्रह्मचर्य कहावै।
पाप रूप आरभ तजै सव च्यारि दान निर पाप वढावै।
हेय जाणि नहि गहै परिग्रह, तिन ही मैं अनुमति नहि लावै।
या विधि रीति कही मध्यम की है उत्कृष्ट ग्यारमी जावै।
ता मैं क्षुलक एलक श्रावक खंडवस्त्र कोपीन रषावै।
दूजा के कौपीन एक ही मुनि समान पारस सिर नावै॥

विलावल

(५५)

हो दुविध नम वारो म्हारो मन लियो मोहि ॥टेक॥
सुमति जचावै, कुमति छुडावै,
साची जिन वानि[1] सुनावै।

---

*यह पद केवल प्रति 'अ' मे है।
५४ '१ प्रति 'अ'—तद्वारक।

विषय कषाय विसन[2] छुडवाव,
सम यम सील बतावै,[3]
'पारस' निस दिन या उर चावै,
सो सगति कब[4] पावै।

राग विलावल

(५६)

मेरी तौ लाज सब तुमरे[1] हाथ[2] है,
जैसें[3] चावो तैसें[4] राषो सावरे ।।टेक।।
हे गुणनिधि कछू गुण नही मो मैं,
अब[5] तौ तुमारे है स्यानें बावरे[6]।
हे समरथ मेरी भवसागर के भवण मैं,
पडी[7] मझधारे नाव रे।
कीजे दया किरण की मोज से,[8]
वेग निकासि कनारै लगाव रे।
सुमरण तै उबरे[9] बहु[10] सुनिहै,
साषि लिषी है पुराण कहाव रे।
अधम उधारक बिरद[11] लषीजे,[12]
अब[13] तौ पारसदास रावरे।

---

५५ - १ प्रति 'अ'—वानि। २ प्रति 'अ' एव 'त'—विसन।
३. प्रति 'अ' एव 'त'—वतावै। ४ प्रति 'अ' —कव।

५६ · १ प्रति 'अ'—तुमारे। २ प्रति 'त' एवं 'न'—हाति।
३ प्रति 'त' एव 'न'—जैसे। ४. प्रति 'त' एवं 'न'—तैसे।
५, १३ प्रति 'अ'—अव। ६ प्रति, 'अ'—नावरे।
७ प्रति 'अ'—परी। ८ प्रति 'त' एवं 'न'—सै।
९. प्रति 'अ'—उव्रे। १० प्रति 'अ'—वहु।
११ प्रति 'अ'—विरद। १२ प्रति 'अ'—लखीजे।

राग विलावल

(५७)

अमृतचद[1] सूरी बच[2] सार,
सुनत मिथ्या विष उगल देत नर ॥टेक॥
निश्चै अरु व्यवहार भेद करि,
स्वै पर तत्व प्रकासन हार[3]।
सुषी होत नर सुनत जास कू,
अनुभव तै आनद **बिस्तार**[4]।
हेतु सहित दृष्टान्त देय कै,
सुद्ध[5] वतावै बस्तु बिचार।
'पारस' धन्य भये नर जे वच,
बाचै[6] सुनै अर्थ उरधार।

राग सारंग

(५८)

चेतो क्यू नै जिय धीरज धारी ।टेका।
मोह-विकट **बिटमार**[1] नै[2] तेरी, लूटि लयी निज निधि सारी।
काम क्रोध छल मान लोभ की, फासि[3] दयी अति दुषकारी।

---

५७ : १ प्रति 'त' एव 'न'—अमतचद। २ प्रति 'अ'—वच।
३. प्रति 'अ'—प्रकाशनहार। ४. प्रति 'अ'—विहार।
५ प्रति 'अ'—शुद्ध। ६ प्रति 'अ'—वाचै।
प्रति 'अ' मे 'बिस' 'वस्तु' 'बिचार' और 'बच' शब्दो मे 'ब' के स्थान पर व प्रयुक्त हुआ है।

गाफिल ह्वै बिचरत[4] जे इन सगि, ते भव[5] भ्रमण करै नारी।
पार्श्वदास जिन सुमरण कीजे, ये प्रभु सब[6] बिधि दुषहारी ॥५८॥

राग सारंग

(५९)

उजरो पथ है शिव ओरी को, जिन ओरी को ।टेक॥
पाच पाप को त्याग जास मैं, सग्रह समता गोरी को।
समिति[1] गुप्ति सूं प्रीति बढावै, तजै[2] असंजम थोरी को।
दुल्लभ मिल्यो तजू नहिं पारस, ज्यो चिंतामणि जोहरी[3] को ।५९॥

राग सारंग

(६०)

जिन भजि लै आजि वषत फिर ना ।टेक॥
को जानै, दिन उगै ना उगै आयु काय को निश्चै ना।
जिन मतर सुनि पशु ही[1] तरि[2] गये ज्ञानी[3] जन का क्या कहना।

---

५८ १ प्रति 'अ'—विटपार। २ प्रति 'अ'—न।
३ प्रति 'न' – फासि। ४ प्रति 'त' एव 'अ'—विचरत।
५ प्रति 'त'एव 'अ'—भव। ६ प्रति 'अ'—सब।
७ प्रति 'अ' – विधि। ८ प्रति 'अ'—दुखहारी।

५९ १ प्रति 'अ'—समति। २ प्रति 'अ'—तज्यो।
३ प्रति 'त' एव 'न'—जोहोरी।

एक महूरत चित्त रोकि कर[४], ध्या लै करि मेरा कहना।
'पारस' जिन भजिया तिनका घनि, पच्छ महूरत दिन महिनां[५] ॥६०॥

राग धनाश्री

(६१)

तुम बिन[१] को तारै जिनराज ॥टेक॥
तुमरे दरसन[२] तैं अघ नासत,[३] बढत पुण्य विसतार[४]।
जाके नाम मंत्र तै उवरे,[५] अंजन से अघ भार।
स्वान सिंघ अहिन कुल व्याघ्र कपि राजत स्वर्ग मझार।
अघम उधारक विरद[६] जानि कै,[७] सरन गह्यो निरधार।
'पारसदास' होय जिन तुमरो, तुम तैं करत पुकार॥

राग पूर्वी चैती गौड़ी

(६२)

शिव सुषकारी[१] मंतू[२] जिनमत पाया ॥टेक॥
नय प्रमाण करिवे[३] वस्तु[४] स्वरूप लषाया।
स्यादवादमयी[५] थाया ॥१॥

---

६० : १. प्रति 'त' एव 'न'—हि। २ प्रति 'अ'—तिर।
३. प्रति 'अ'—ज्ञानी। ४. प्रति 'अ'—कै।
५. प्रति 'अ'—महिना।—प्रति 'अ' मे 'कहना', 'फिरनां', 'निरखैना' आदि अन्त्यानुप्रास मे अनुनासिकता नहीं है।

६१ : १. प्रति 'अ'—विन। २ प्रति 'अ'—दर्शन।
३. प्रति 'अ'—नाशत। ४. प्रति 'अ'—विस्तार।
५. प्रति 'अ'—उवरे। ६ प्रति 'त' एव 'अ'—विरद।
७. प्रति 'अ'—कै।

या ढिग सब[6] मत बेमत[7] वारे दरसाया।

नाहक जग भरमाया ॥२॥

पच्छपात करिवे मिथ्या अलट बहाया[8]।

तत्स्वरूप न लषाया[9] ॥३॥

अब[10] नहिं बिसरौं[11] नीकै[12] उर दृढ माय रचाया।

दुष हर सुष[13] कर गाया ॥४॥

'पारस' नर भव बे पाया सफल कराया।

जे जिनमत अपनाया ॥५॥

राग चैती गौडी

(६३)

चालो सय्यो हे नेम जी बानी[1] सुनावैं[2] ॥टेक॥

जीव दया मैं धर्म बतावै, हित अनहित समझावै।

सुभ मारग की राह बतावै, दुरगति सू[3] खचावै।

सभवसरण मे इद्र जू[4] आवै, ताडव नृत्य रचावै।

---

६२ १. प्रति 'अ'—सुपकारी। २ प्रति 'त' एव 'न'—मन्नूं।
३. प्रति 'अ' एव 'त'—करिवे। ४ प्रति 'अ' एव 'त'—वस्तु।
५ प्रति 'त' एव ' '—स्यादवादमय। ६ प्रति 'अ'—सव।
७ प्रति 'अ'—वेमत।
८ प्रति 'अ'—वहाया। ९ प्रति 'अ'—लखाया।
१० प्रति 'अ'—अव। ११ प्रति 'अ'—विसरू।
१२ प्रति 'त' एव 'न'—निवे। १३ प्रति 'अ'—सुख।

बहु[5] जन गावै तूर बजावै,[6] बानी[7] सुनि उमगावै।
'पारस' सरन[8] उनूं की चाहत, निश्चै शिवपुर पावै।

राग चैती गौड़ी

(६४)

कयक बार[1] कही रै—जीया तो सै ।।टेक।।
बरजत[2] हू बरज्यो[3] नही[4] मानत, बुद्धि[5] तेरी कैसै वही रै।
क्रोध लोभ छल मान बिषय मंद, दुरमति बेलि[6] गही रै।
शिव सुष चाहै तो भजि 'पारस' नाम सही रै।।

राग धनाश्री

(६५)

गयी गयी जी मिथ्या मम नीद,
लषे[1] जिनराज सही ।।टेक।।
मिथ्या नीद[2] मांय[3] बहु[4] सूते, आजि लषे जिन राज[5]
कोटि रबि[6] तेजमयी[7]।

---

६३. १. प्रति 'अ'—वानी। २ प्रति 'न' मे 'सुनावै' के बाद 'है' अतिरिक्त है।
३ प्रति 'अ'—सू।
४ प्रति 'अ'—जु।
५. प्रति 'अ'—वहु।
६ प्रति 'अ'—वजावै।
७. प्रति 'अ'—वानी।
८ प्रति 'त' एवं 'न'—सरण।

६४ : १–३. प्रति 'अ'—वार, वरजत, वरज्यो।
४. प्रति 'अ'—नहि।
५. प्रति 'अ'—वुद्धि।
६. प्रति 'अ'—वेलि।

रागादिक कछु दोष न जामै, गुण अनत के कोष[८]
ध्याय भवि मुक्ति लयी[९]।
'पार्श्वदास' जाचै[१०] जिनपति सू, तुम मम भेद नसाय,
वडी एक[११] चाय ययी[१२]।

(६६)

भजि मन श्री जिन, श्री जिनदेव ॥टेक॥
राग दोप मद मोह क्रोध वसि आन देव मति सेव।
ब्रह्मा[१] विष्णु[२] महेम काम वसि,[३] ताहि[४] हर्यो इन एव।
दोष अठारा रहित विराजै[५] गुण छयालीस[६] स्वमेव[७]।
सव[८] कुदेव दीसत विकार[९] मय, सांति मूर्ति, जिनदेव।
'पारस' मुक्ति पथ दरसावक, श्री जिनेंद पद ध्येव[१०]।

---

६५ १ प्रति 'अ'—लेपे। २. प्रति 'अ'—नीद।
३ प्रति 'अ'—माय। ४. प्रति 'अ'—वहु।
५. प्रति 'त' एव 'न'—भान। ६ प्रति 'अ'—रवि।
७ प्रति 'त' एव 'न'—तेजमई। ८ प्रति 'त' एव 'न'—कोप।
९. प्रति 'त' एव 'न'—लई। १०. प्रति 'अ'—जाचत।
११ प्रति 'त' एव 'न'—मम। १२. प्रति 'त' एवं 'न'—यई।

६६ १ प्रति 'अ' एव 'त'—ब्रह्मा। २. प्रति 'अ' एव 'त'—विष्णु।
३. प्रति 'अ'—वसि। ४ प्रति 'अ'—ताय।
५ प्रति 'अ'—विराजै। ६. प्रति 'अ'—छयालीस।
७ प्रति 'अ'—सुमेव। ८ प्रति 'अ'—सव।
९ प्रति 'अ'—विकार। १०. प्रति 'अ'—ध्येय।

अलय्या बिलावल जलद तितालो

(६७)

ज्ञान री रीति निहारी,
मैं कैसे कहि समझावू अब रे[1] सरावू,
जोति ज्ञान री जिन उर जागी, तीन लोक भयो लषावू[2]।
तीन काल सबवी[3] जीव की परणति न रही[4] छिपावू[5]।
'पारस' तब अनंत सुष[6] बिलसै,[7] याही कू सिर नमावू[8]।

राग धनाश्री

*(६८)

हे जी मोकूं सुरति तिहारी सय्या हो नैना लागी।
जब सै चढे गिर सुधि हू ना लीनी तुम नै पीया।
हम सै तजी रति शिव सैं जो कीनी जानी जीया।
हम न तजै तुमै 'पारस' रहिहै सजम लीया।

राग चैती गौडी

(६९)

रे मन भजि लै श्री जिन नाम आन काम सब षाम रे ॥टेक॥
सास सास मे आयु[1] घटत है कर लेवै सो काम, रे।
श्रवण मात्र तै स्वान भयो सुर नर पावै शिव धाम रे।

---

६७ १ प्रति 'अ' —र। २ प्रति 'अ'—लखावू।
३ प्रति 'अ'—सवंधी। ४ प्रति 'अ'—रहा।
५ प्रति 'त'—छिपाव। ६. प्रति 'अ'—सुख।
७. प्रति 'अ'—विलसै। ८ प्रति 'अ'—नमाव।

६८ *यह पद केवल प्रति 'अ' मे है।

अजन से अघ भजित ततक्षण पायी[2] है शिव वाम[3]।
'पारस' इम निश्चै करि जिन भजि यो ही काम अभिराम ॥

राग गौडी

(७०)

नमू ये नमू हे नमू हे नमू पारस जिनराय नमू ॥टेक॥
वामानदन[1] हो[2] जगवदन कमठ किये दुठ तैंनै[3] चलाय।
जाकू वदत त्रभुवनपति निति पूजत है सुरपति उमगाय।
विघन[4] विनासक[5] हो जगनायक, भव्यनि कू मन वाछित[6] दाय।
पार्श्वदास तुम भक्ति चहत इक भक्ति विना[7] क्षण मैं अकुलाय।

राग विलावल को सड़पद्दो

(७१)

मेरे ध्यान नाथ तुमरो।
हो मैं तेरै नाल राजि[1] ॥टेक॥
वांनो[2] तेरी सून्या सू उद्धार ह्वै अधम रो[1]।
जानो[3] मैं महिमा तेरी, कर मेटि दियो जम रो।
'पारस' अरज करै है भव जाल काटि हमरो[4]।

---

६९. १ प्रति 'अ'—श्राय। २. प्रति 'अ'—पाई।
३ प्रति 'अ' एव 'त'—वाम।

७० : १ प्रति 'त'—वामानदन। २ प्रति 'त' एव 'न'—है।
३. प्रति 'अ'—तैंन। ४. प्रति 'अ' एवं 'त'—विघन।
५ प्रति 'अ'—विनाशक। ६. प्रति 'अ'—वछित।
७. प्रति 'अ'—विना।

७१ : १ प्रति 'अ'—राजी। २. प्रति 'अ'—वानी।
३ प्रति 'अ'—जानी। ४ प्रति 'त' व 'न'—जम रो।

इमन जलद तितालो

(७२)

रे मन श्री जिनराज भजो रे,[1]
देह सू[2] नेह तजो रे ।।टेक।।
माता को रुधिर पिता[3] कौ वीरज, इन ही तै उपजो रे ।
सप्त धातुमय बिष्टा[4] मदिर, देषत ग्लानि पजो रे ।
दश द्वारनि करि श्रवत पूति नित, सज्जन कू नमजो ।
या तै ममत छाडि कै[5] 'पारस' सेवा भक्ति सजो[6] ।

राग इमन

(७३)

जो मै रिझावू मेरे प्रभु कू, श्री जिनवर कू ।
सो प्रभु मोहि[1] देवै निज सुष[2] और ज्ञान संगति ।।टेक।।
तास लष्यो तिन जान्यो[3] सर्व[4] अतीत, अनागत जात
और ये परसगि रगति[5] ।
तासु ज्ञात मम बिघन[6] सब[7] बिलात,[8] पिता[9] मात और
ये सकल कुसंगत ।

---

७२ . १. प्रति 'अ'—रै । २ प्रति 'अ'—सं ।
३ प्रति 'त' एव 'न'—पीता । ४ प्रति 'अ' एव 'त'—विष्टा ।
५. प्रति 'अ' एव 'त'—कै । ६. प्रति 'त' एव 'न'—रजो ।

तासुध्यात सुर मुनि दिनरात, ध्यावत होत प्रभात सो
दे पारस संमत।

राग ईमन कल्याण

(७४)

नृत्य करत सुरपति चटमट सू, रपट झपट संगीत प्रीति सू,
थे इक तत था थे इक तत था[१] ।।टेक।।
उगटत सची त त त त्थेई, थेई,
झ झ झ झ थिरक लै थिरक गिनक गिनक लै,
दिग दिग दिग दिग ताथुगा ताथुगा, ताता चलत सुलफ गति।
बाजत मृदग[२] धी धीकट धी धीकट,
ध्राकट ध्राकट ध प ध प घु घु र धिनन्ना धिनन्नां,
गिनंकं गिनंक तागडती तुमगडती तागडतीं तुमगडती, परन परतं।
अति सार लिये रीति गान[३] की बडी,
भगति रो पन लें 'पारस' अस्वसेन[४] घर जन्मे,
जिन पति द्यो सिद्धि श्री मेरे पती।

---

७३ १ प्रति 'अ'—मोय। २ प्रति 'अ'—सुख।
३. प्रति 'अ' एव त'—जान्यो। ४ प्रति 'अ' एव 'त'— सर्व।
५ प्रति 'अ'—'तास लण्यो रगति' पक्ति नही है। ६ प्रति 'अ' एवं 'त'— विघन।
७ प्रति 'अ'—सव।
८ प्रति 'अ'—विलात। ६ प्रति 'अ'—पित।
१०. प्रति 'त' एव 'न'—कुसगति।

७४ १ प्रति 'न'—'था' का लोप। २ प्रति 'अ' एव 'त'— मदग।
३ प्रति 'त' एव 'न'—ज्ञान। ४ प्रति 'अ'—अस्वस्वेन।

राग ईमन कल्याण

(७५)

आयो नी मैं तंडे मिंदरवा[1] ।
तंडे सानूं लागीलो मोरा नेह ।।टेक।।
पावा आत मैंडे[2] सटकत अघ, सब पूज्या तंडे मोहनी पलाईलो ।
सुमरण कीया तंडे, गटकत[3] निज सुष[4] सूझा मैनू तू ही शिवदायीलो
'पारस' बिन[5] तंडे भटकत भव बन[6] साचा तैनूं ध्याया[7] शिवजाईलो

राग ईमन

(७६)

जादू बस[1] वारा सावरा-हमारा चितवन तैं अघ खोया-।।टेक।।
अव[2] मैं याहि मनावूं सजनी[3]-री, ध्यान धारि-उर-धोया ।
अजपा जाप जपू[4] मोरी सजनी,[5] निरुपम गुणनिधि जोया ।
'पारस' धनि[6] यह अवसर सजनी री निश्चै शिव तरु बोया[7] ।

---

७५ · १. प्रति 'त' एव न'—मदरिया । २. प्रति 'अ'—मेरे ।
३ प्रति 'त' एव 'न'—गत । ४ प्रति 'अ'—सुख ।
५. प्रति 'अ'—विन । ६ प्रति 'अ' एव 'त'—वन ।
७. प्रति 'त' एव 'न'—ध्यायें ।

७६ : १. प्रति 'अ' और 'त'—जादूवस । २ प्रति 'त'—अव ।
३. प्रति 'अ'—सजनी । ४ प्रति 'त' एवं 'न'—जपू ।
५. प्रति 'अ'—सजनी । ६. प्रति 'अ'—धन ।
७. प्रति 'अ'—वोया ।

राग ईमन

(७७)

म्हे तौ थारा चरण उपासी, म्हानै[1] त्यारो हो नाथ ।।टेक।।
हम है पतित पतित पावन तुम करुणा[2] धरम[3] तिहारो ।
हम है भक्त भक्त वच्छल तुम, अपनो जानि उबारो[4] ।
चित्त निरोधि कै[5] निज लय लागे, कमठ कियो अघ भारो ।
मन अडोल मेर सम कीनो परम षिमा[6] उर धारो ।
अजन को अघ भंजन कीनो,[7] वारिषेण दुष[8] टारो ।
मरकट स्वान सुरग सुष थायो, अब[9] कै हमारी है बारो[10] ।
मिथ्यातम मम गयो है अनादी, सम्यक भयो है उजारो ।
पार्श्वदास चरनन रो चेरो, आवागमन निवारो ।

राग काफी

(७८)

जिनमत तै अजहू न जाना,[1] ।
फिरै डावाडूल दिवाना ।[2] ।।टेक।।
श्रावक अरु मुनी[3] भेष धारि कै मानत है शिव बाना[4] ।
ये सब[5] है व्यवहार[6] कथन, निश्चै का कथन नही[7] जाना ।
वृथा[8] ता बिन[9] लिंग नाना ।
यह[10] तौ लिंग[11] देहाश्रित सब[12] ही, देह अचित निदाना ।

---

७७. १ प्रति 'अ'—म्हानैं । २ प्रति 'अ'—करुणा ।
३ प्रति 'अ'—धर्म । ४ प्रति 'अ'—उवारो ।
५ प्रति 'अ'—कै । ६ प्रति 'अ'—क्षमा ।
७. प्रति 'अ'—कीनो । ८ प्रति 'अ'—दुख ।
९ प्रति 'अ'—अव । १० प्रति 'अ'—वारो ।

चेतन दर्शन[13] ज्ञान चरणमय रतन[14] त्रय, शिव थाना।
समझि निश्चै[15] परवाना।
जड प्रवृत्ति तै शिव नहिं होहै, परमारथ[16] किम पाना।
झांकत[17] रहु परमारथ मावू, यू व्यवहार प्रामना।
नही लिंग वृथा[18] वषाना।
पार्श्वदास अध्यातम समुझो जिम होवै सुरझाना[19]।
बिन[20] अध्यात्म कार्य वृथा, सब[21] याही तै सफलाना[22]।
साध्य के साधन बाना[23]॥

राग काफी*

(७९)

जिनराज बिना[1] दुख कोन हरै ससार भ्रमन को।।टेक।।
सकल जीव वसि कर्म डुलत है, रुलत चतुर्गति माय।
सहै दुष जन्म मरण को।

---

७८. १ प्रति 'अ'—जाना। २. प्रति 'अ'—दिवाना।
३ प्रति 'अ'—मुनि। ४ प्रति 'अ'—वाना।
५. प्रति 'अ'— सब ६ प्रति 'न'—व्यवहार।
७ प्रति 'अ'—नहिं। ८ प्रति 'न'—वृथा।
९ प्रति 'त' एवं 'अ'—विन। १० प्रति 'अ' एवं 'न'—येह।
११. प्रति 'अ'—लग। १२. प्रति 'अ'—सव।
१३ प्रति 'अ'—दरसण। १४. प्रति 'अ'—रत्न।
१५. प्रति 'त'—निश्चय, १६ प्रति 'न'—परसारथ।
१७. प्रति 'अ'—झाकत। १८ प्रति 'अ'—व्रथा।
१९ प्रति 'अ'—समुझाना। २० प्रति 'अ'- विन।
२१ प्रति 'अ'—सव। २२ प्रति 'अ'—सफलाना।
२३, प्रति 'अ'—वाना। १९-२३ प्रति 'त' मे अन्तिम दो पंक्तिया छूट गई हैं।

पुण्य उदै मानुष[2] कुल उत्तम पाय न रहो प्रमाद।
गहौ जिन चरन सरन को।
पशु पची लहि सरन भये सुर, क्यो न लहैं सम्यक्त[4]।
सहित नर मुक्ति गमन को।
पार्श्वदास जाचत त्रभुवनपति निस दिन दीजिए नाथ।
मोहि तुम सरन चरन को।

राग काफी

(८०)

साधरमी[1] को सग सुहावै, या जग मैं कछु और न भावै।
तत्वारथ की कथनी जिन तैं वस्तु[2] स्वरूप यथोक्त लषावै।
अनादि काल की मिथ्या मति के सदेह[3] सर्व[4] जनम के पलावै।
नय प्रमाण निक्षेप रूप जिनवाणी साची उर मैं जचावै।
विष एकात मूढ या जिव[5] कू, स्यात्पद मीठो अमृत पावै।
राग द्वेष जुत मूढ जीव कू, स्वस्वरूप साचो समुझावै।
त्याग उपादेय[6] हित औ अहित कू, कृपा राषि करि शुद्ध वतावै।
विषय[8] कषाय फासि[9] फसिये कू, जग जिय फेरि फसावै।
'पारस' साधरमी[10] विन जग मैं, मिथ्या लति तैं को सुरझावै।

---

* प्रति 'त' मे यह पद नहीं है।

१. प्रति 'श्र'—विना। २ प्रति 'न'—मानुख।
३ प्रति 'श्र'—शरन। ४ प्रति 'न'—श्रद्धान।

८०. १ प्रति 'श्र'—साधरमो। २ प्रति 'त'—वस्त, प्रति 'न' वस्तु।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—सदे। ४ प्रति 'न'—सर्व।
५ प्रति 'त'-जिन, प्रति श्र-जीव। ६. प्रति 'श्र'—उपादे।
७ प्रति 'श्र'—सुद्ध। ८. प्रति 'न'—विषय।
९. प्रति 'न'—फासि। १० प्रति 'श्र'—साधर्मी।

राग काफी ताल ३. रूपक

(८१)

राम भजन बिन[1] धृक धृक जनम ।।टेक।।
पुत्रादिक सपति जोबन[2] धन, बनिता[3] निज अपनाये मन मैं।
दान दिये पूजन करवाये, कराय प्रतिष्ठा जस लीयो जन मैं।
सद्गुरु सग कियो नहि नीको, समझि विना[4] तप कीनो बन मै[5]।
पीछी कुडी पुस्तक सिख्यादिक मैं राख्यो आयो तन मैं।
तीरथ बहु[6] कीने जप तप व्रत सूरी पद धारयो जो मुनिन मैं।
'पारस' निज परणति पाये बिनु,[7] व्रथा भये सुरधनुष गगन मैं।

राग काफी की होरी

(८२)

जिन राज निहारा नया उर माय[1] उजारा ।।टेक।।
अनादि काल तैं मोह तिमिर वसि सम्यक भया न उघारा[2]।
राग द्वेष करि बंध[3] किये बहु[4] नाना करम[5] पसारा।
अब[6] इन ही के नास करन कू, आतम तत्व बिचारा।

---

८१ : १ प्रति 'अ'—विन। २ प्रति 'अ'—जोवन।
३ प्रति 'अ' एव 'त'—वनिता ४. प्रति 'अ'—विना।
५. प्रति 'अ'—वन। ६ प्रति 'अ'—वहु।
७ प्रति 'अ'—विनु।

तत्वारथ सरधा धरि उर मैं वीतराग पद धारा।
हित अनहित को भेद भयो अब[8] - होसी क्या[9] न उधारा[10]।
'पारस' भव तो लो[11] मम रहज्यो,[12] जिन दरसन[13] आधारा॥

राग काफी

(८३)

सुरझा दोज्यो श्री जिनराज जी
म्हारै लटिया करम की उरझि रही ॥टेक॥
उरझि[1] रही मो तै सुरझत नाहीं[2] थानै म्हारी लाज।
मै तुमरो तुम साहिब[3] मेरै[4] सुणि भव जलधि जिहाज।
'पारसदास' तिहारो निश्चै सिद्ध कोजिये काज।

राग काफी, रथ जात्रा को

(८४)

रथन की अदभुत महिमां बनी[1]।
काई[2] मानु जुगल तन धरि पकज भयो जिन ब्रह्मा[3] जग धनी ॥टेक॥
मेरा छोटा सा मुखड़ा गुणनिधि तेडै[4] गुण भाषत,
आ अडीक मानू तुम त्रभुवन के धनी।

---

८२ : १ प्रति 'अ'—माय। २ प्रति 'अ'—उधारा।
३. ४. प्रति 'अ'—वन, वहु। ५ प्रति 'त' एवं 'न'—कर्म।
६. ८. प्रति 'अ'—अव। ७. प्रति 'अ'—नाश।
९ प्रति 'अ'—क्यू। १०. प्रति 'त' एव न'—उधारा।
११. प्रति 'अ'—लू। १२. प्रति 'अ'—रीज्यो।
१३. प्रति 'त' एव 'न'—दर्शन।

८३ : १. प्रति 'अ'—उरझ। २. प्रति 'त' एवं 'न'—नाईं।
३. प्रति 'अ'—साहिब। ४ प्रति 'अ'—मेरे।

मेरा धन्य भाग्य धनि दिवस महूरत दरस करत,
धनि घरोक पाइ[5] संपति त्रभुवन तनी।
मेरा अघ टारो सुष[6] दीजिये स्वामी, तुम शिव सुष के[7] पनी[8]।
नमावू मस्तक सुभ थुति भनो।
समत उगणीसै[9] सतरा फागुण वुदि तेरसि[10] वनी।
कि[11] पारस वदै सुर नर फनी।

राग काफी

*(८५)

मानो मानू जी पिया साजनवा मोरा हो ॥टेक॥
जानो जानो जी, जैसा मनवा मोरा हो।
तानो ता नू जी सय्या संजमवा तोरा हो ॥१॥
आनो वानो जी; जहा पारसवा भोरा हो ॥२॥

---

८४. १ प्रति 'त' और 'अ'—वनो। २. प्रति 'अ'—कायी।
३ प्रति 'अ'—अह्या। ४ प्रति 'त' और 'न'—तंत्र
५. प्रति 'अ'—पाई। ६. प्रति 'अ'—सुख।
७ प्रति 'अ'—सुख। ८ प्रति 'अ'—खनी।
९ प्रति 'अ'—उनीसै। १० प्रति 'त'—तेरस।
११. प्रति 'अ'—क।

*यह पद केवल प्रति 'अ' मे हैं।

राग पमावच

(८६)

श्री जिनवर सुषकारी,[1] मेरे दुषहारी[2] ॥टेक॥

इंद्र नरेंद्र फनेद्र नमत निति,[3] मुनि जन निज[4] चित्त धारी।

अंजन आदिक अवम उधारे, वारिषेण[5] दुष टारी।

पारस[7] मन वच तन करि सुमरत क्यू[6] न वरै शिवनारी।

राग पमावच

*(८७)

आदि जिनेस ऋषभ जिनेस राजि रो दरस प्यारो लागे छै ॥टेक॥

थारो मुषचंद दगन तैं निरषत, मिथ्या मत तम भागै छै।

मुक्ति वधू कू वरत भविक जन, जे तेरे रग पागै छै।

मोहनीद तैं सूतो जीवरो, आतम हित प्रति जागै छै।

क्रोध लोभ छल मान विषय मद तदिही यो मन दागै छै।

पार्श्वदास प्रभू रावरी सरण गहि, सब मिथ्यामत त्यागै छै।

---

८६. १. प्रति 'घ'—सुखकारी। २. प्रति 'घ'—दुखकारी।
३. प्रति 'घ'—नित। ४. प्रति 'ठ' और 'न'—निन।
५. प्रति 'घ'—वारिषेण। ६. प्रति 'घ'—क्यों।
७ प्रति 'घ'—वरै।

*यह पद प्रति 'घ' में नहीं है।

षमावच, रूपक तितालो

(८८)

देषो[1] सेवा देवी सुत राजै छै ।।टेक।।

प्रातिहार्य करि सोभित अति ही मोह करम लषि[2] लाजै छै।

मगल द्रव्य प्रभू को[3] निरषत, असुभ करम सब भाजै छै।

'पारस' जिन पद सरन गही ते, अष्ट करम परि गाजै छै।

राग काफी

(८९)

अब मेरे पारस नाथ सहायी[1] ।

सब[2] संबंध[3] दुषदायी[4] ।।टेक।।

तन धन और कलत्र थिर नायी भ्रात तात सुत भाई।

ज्यो तरु पंछी मिलत रैणि मैं, सूबैं[5] होतें जुदाई।

जो दीसे सो निश्चै बिनसत,[6] काहे ममत कराई।

सुभ संजोग असुभ दोवूं[7] पर तैं, निश्चय तै न मिलाई।

मै सब देषन जानन हारो नभ वत नां लपटाई।

जब लग बसु[8] बिधि[10] नास[11] करू मैं, तब[12] लग करहु[13]
सनाई[14]।

८८ : १. प्रति 'अ'—देखो।

२. प्रति 'त'—के।

नय व्यवहार तें अरज करत हूं सुति 'पारस' पित माई[15]।
तुम पद भक्ति दीजिये अहनिसि, अतिसमाधि दसाई[16]।

पमावच

(९०)*

हां वराजोरी मोह मतिया मरोरी ।।टेक।।

देखो देखो सारी मोरी सुधिया विसरि गई वतिया चटक गई,
ऐसी कहा करत ठगोरी ।

येती चउगतिया भमायो, तेरी सेवा विना वतिया कठिन मिली।
जैसी महासुख निधि चोरी ।

याही के प्रसाद पिछानें प्रभू, 'पारस' कुमति विघटि गई,
लैसी महा सुगति अभोरी ।

---

८६ १ प्रति 'अ'—सदाई, प्रति 'त'—सदायी । २ प्रति 'अ'—सव । ३. प्रति 'त' एवं 'न'—सनमंद ।
४ प्रति 'अ'—दुखदाई । ५ प्रति 'अ'—सूवै, प्रति 'त'—सुवे ।
६ प्रति 'अ'—विनमत । ७ प्रति 'अ'—दोऊ ।
८ प्रति 'अ'—देखन । ९ प्रति 'अ'—वसु ।
१० प्रति 'अ'—विधि । ११. प्रति 'अ'—नाश ।
१२ प्रति 'अ'—तव । १३. प्रति 'अ'—कमहु ।
१४ प्रति 'अ'—सुनायी । १५-१६ प्रति 'अ'—मायी, दसायी ।

*यह पद केवल प्रति 'अ' मे है।

राग षमावच

*(९१)

अरे टोना वा मोह कैसा कीना।
हो मेरी मति तजत न मान ।।टेक।।
एक तौ टोना वा क्रोधादिक धारे,
दूजे तजत न आन।
'पारस' विनवै दास तुमारे याकू हरि दे दान।

राग षमावच

*(९२)

कैसा जादू डारा मोह मेरे कान।
जादू की पुडिया तिय पढि मारी क्या जानै जीव विचारा।
श्री जिनवानी सुन सुन त्यागी, ना जानै हेत गवारा।
पर तजि निज पद गहा न भोदू, 'पारस' सो लखवा न।

राग षमावच

*(९३)

कपट राखि जिनमत गह्यौ,
सया मन कू समझावू तोरे पया ।।टेक।।
छल बहु कीनो जिन नहि चीनो जोवन रस भीनो।
एक वार भी सांच रूप होय, वीतराग नही चीनो।
'पारस' अब सम्यक् दृढ धार्यो, शिव लू अतर मत कर सया।

---

*यह पद केवल प्रति 'अ' मे है।

*यह पद केवल प्रति 'अ' मे है।

*यह पद केवन प्रति 'अ' मे है।

राग झंझोटी

*(९४)

हो गुराजी हो म्हाका राजि,
था ही का वचन रूढा म्हानै लागै छै।
वानी तौ जवाद्यो खानी तत्व की जनाद्यो।
रागी सग धारी तौ सुनाई वानी षोटी एकातम तजाद्यो।
'पारस' कू रचाद्यो निज परणति पर विरचाद्यो।

राग झंझोटी

*(९५)

अैसा तेरा रूप अनूपा जी,
जा मैं ज्ञानी विलम रहे, घ्यानी विलम रहे।
अनंत ज्ञान सुख वीरज जा मैं, जा मैं रग न रूपा जी।
वीतराग सरवज्ञ जिनोतम, भजै राज तजि भूपा जी।
सुख निवान कृतत्य जिनोत्तम जा मैं छाह न घूपा।
अष्टादश नहि दोस जास मै पारस है सुख कूपा।

राग झंझोटी

(९६)

कहूं देषे[1] हो नहिं रामा[2]।
हू[3] तौ ढूढ[4] फिरयो सब[5] धामां ।।टेका।
गगा जमना और सुरसती,[6] तिरवेणी[7] गिरधामां।
कूवा[8] वापी ताल वनाया,[9] दान दिये सुष[10] कांमा[11]।

---

*यह पद केवल प्रति 'अ' मे हैं।
*यह पद केवल प्रति 'अ' मे है।

जज्ञ होम तरपण तिलकादिक देव पूजि लिये नामा[12]।
पार्श्वदास घट मैं लषि[13] लीनौ,[14] ज्ञायक जो अभिरामा[15]।

झंझोटी तितालो

(१७)

जिन बानी[1] श्रवण निति कीजे।
या के सुनत मिथ्या बिष[2] नासत[3] ज्ञानामृत रस पीजै।
या को ध्यान धरत है गणपति, ते बसुकर्म[4] हनी जे।
भवदधि पार उतारण कारण, बानी[5] पोत गहीजे।
याही के परसाद तैं[6] हो[7] 'पारस' शिवपुर लीजे।

राग झंझ

(१८)

अब[1] आछ्यो अवसर पाय रे, हा रे म्हारा जीवरा[2] जिन कू सुमरि।
काक ताल सम जोग जानि कै,[3] आतम हित कूं ध्याय रे।

---

१६ १ प्रति 'अ'—देखे। २ प्रति 'अ'—रामा।
३. प्रति 'अ'—हू। ४ प्रति 'अ'—द्रढि।
५ प्रति 'अ'—सव। ६ प्रति 'न'—सुरती।
७. प्रति 'अ'—तिरवेणी। ८ प्रति 'अ'—वापी।
९ प्रति 'अ'—वनाया। १० प्रति 'अ'—सुख।
११ प्रति 'अ'—कामा। १२ प्रति 'अ'—नाम।
१३. प्रति 'अ'—लखि। १४. प्रति 'अ'—लीनो।
१५. प्रति 'अ' एवं 'त'—अभिरामा।

१७. १ प्रति 'अ'—वांनी। २ प्रति 'अ' और 'त'—वि
३. प्रति 'अ'—नाशत। ४. प्रति 'अ'—वसुकर्म।
५ प्रति 'अ'—वानी। ६. प्रति 'अ'—तै।
७ प्रति 'अ'—हो।

देव नरक पशुगति मैं नाचौ,[४] सो या नरभव माय रे।
'पारस' धन्नि[५] दिगवर[६] होय कै, संग त्यागि मुनि थाय रे[७]।

राग झंझोटी

(९९)

करि लै जिया मैं[१] तू[२] साचो[३] ही सुमरन।
और ठौर क्यू फिरत वावरे,[४] प्रभु के चरण चित्त धरि लै।
आलवाल[५] तै[६] होत कहा रे, जिन जापि भवदधि तरि लै।
जिन गुण सपति पाय है रे 'पारस' प्रभु पद परि लै।

राग झंझोटी

(१००)

सुनो सुनो जिन जी कैसै कटै गति करमनि[१] की ॥टेक॥
ए तो जनम विषयन मैं खोयो,[२] प्यास मिटी नही भोगन की।
तप सजम की राह न जानी[३] थिरता मानी[४] जोवन की।

---

९८ १ प्रति 'अ'—अब। २. प्रति 'अ'—जीवरा' शब्द का लोप।
३ प्रति 'अ'—कै। ४. प्रति 'अ'—नाही।
५. प्रति 'अ'—धन्य। ६ प्रति 'अ'—दिगवर।
७. प्रति 'अ'—'रे' के स्थान पर प्रत्येक पक्ति मे 'रै' का प्रयोग।

९९ : १ प्रति 'व' एवं 'न'—म। २ प्रति 'त' एवं 'न'—नु।
३ प्रति 'अ'—साचो। ४ प्रति 'अ'—वावरे।
५ प्रति 'अ'—आलबाल। ६ प्रति 'अ'—तै।

पाच पाप दुरगति के दायक, तिन मैं लति रही मो मन की।
'पारस' चरण सरण गहि जाचत[5] प्राप्ति दीजिये मो धन की।

राग झंझोटी

(१०१)

जीयरा हमारा बिलमाया[1] मनवा हमारा बिलमाया
जिन ओरी[2] हो ॥टेक॥
साति छबी[3] थारी हो लषि[4] लषि[5] कर्म नसाया।
मुनि जन से उमगाया।
सक्री चक्री हो तुझि पद कमल नमाया।
ज्ञानी ध्यानी ध्याया।
'पारस' रषियो हो जब[6] लगि[7] शिव नहि पावूं तबलू[8] सरणै आया।

राग झंझोटी

(१०२)

मुनि भेस लिया तिन कू नुतिया,
करते हैं सुर नर षग पतियां ॥टेक॥
आयी[1] अत जिके भव सततिया[2]। तिन हू की होत असी मतिया[3]।

---

१०० १ प्रति 'त' एव 'न'—कर्मनि। २ प्रति 'अ'—खोयो।
३. प्रति 'अ'—जानी। ४ प्रति 'अ'—मानी।
५. प्रति 'त' एवं 'न'—चाहत।

१०१ : १. प्रति 'अ'—विलमाया। २. प्रति 'अ'—ओरी।
३. प्रति 'अ'—छवी। ४. प्रति 'अ'—लखि।
५. प्रति 'अ'—लखि। ६. प्रति 'अ'—जब।
७. प्रति 'अ'—लग। ८. प्रति 'अ'—लौं।

पायो सफल होत मानुष गतिया[४]। राजादिक[५] सेवतु[६] हैं जतियां[७]।
याही तें चहत सुर मनु गतिया। 'पारस' कब[८] पावू तार तिया।

राग झंझोटी

(१०३)

अब - सन्मति[१] - वर्द्धमान महावीर ध्यावू,[२]
इन ही के ध्याये तै मुक्ति रमनि पावू ॥टेक॥
आन देव ध्याय भाय, मिथ्या सरधान पाय।
मिथ्या गुरु प्रचार माय[३], नाहक भरमावू ॥२॥
अनेकान्त जानि वानि[४], मिथ्या एकात भानि,
दोवू नय तै पिछानि, स्वै पर दरसावू ॥३॥
'पारस' न मिल्यो सुज्ञान, तव[५] लू भभियो अज्ञान,
ज्ञान ही वतायो पथ, दृढ धरि उमगावू।

---

१०२ १ प्रति 'अ'—अई। २ प्रति 'अ'—सततिया।
३ प्रति 'अ'—मतिया। ४ प्रति 'अ'—गनिया।
५ प्रति 'अ'—रागादिक। ६ प्रति 'अ'—सेवत।
७ प्रति 'अ' मे जनिया, गतियां, तारतिया, पगपतिया सभी तुकान्त शब्दो मे अनुनासिकता का लोप।
८ प्रति 'अ'—कव।

१०३ . १. प्रति 'अ' - सनमति। २. प्रति 'अ' मे ध्यावू, पांवू आदि सभी तुकान्त शब्दो मे अनुनासिकता कहीं है।
३. प्रति 'अ'—माय। ४. प्रति 'अ'—वानि।
५ प्रति 'अ'—तव

झंझोटी का सडपंडदो

(१०४)

गिर नारी मोरा सावरिया,

सब[1] राह वाट[2] मैं ढूढ[3] फिरी ।।टेक।।

जगल जंगल सुधि साज भयो,[4] सब ही ढूढी बन की गलिया

सेषाबन की सघन भूमि मैं, भूषन बसन[5] का तजन किया।

लौकान्तिक[6] मुष[7] सुनि कै प्रसंसा, पाँच महाव्रत[8] धारि लिया।

अब हम हू सगि संजम धरिहै, गृह सेती मन षैंचि[9] लिया।

पिय के सगि अब हूगी 'अरजिका' तप तपनें मैं होत जिया[10]।

तप हित सुरपति नर भव चाहत,[11] सो तो ब्योत अब[12] सहज भया।

'पारस इम निश्चै करि रजमति,[13] गृह तजि संजम धार लिया।

राग झंझोटी को षडपड़दो

(१०५)

नाटक त्रय सुनता[1] उर फाटिक सो षुलिहै।

जब[2] लग नहिं सुनिहै भव चक्र चढे डुलिहै।।टेक।।

सप्त तत्त्व नव पदार्थ छहू द्रव्य कू[3] यथार्थ,

जानि कै[4] पिछाने जीव पुद्गल इम धुलिहै।

---

१०४ १ प्रति 'अ'—सव। २ प्रति 'अ'—वाट।
३. प्रति 'अ'—ढूढि। ४. प्रति 'अ'—भई।
५. प्रति 'अ'—वसन। ६ प्रति 'अ'—लोकान्तिक।
७. प्रति 'अ'—मुख। ८. प्रति 'अ'—महाव्रत।
९. प्रति 'अ'—खैंचि। १०. प्रति 'त' एव 'न'—पिय के सग मैं रहू अरजिका, तप तपनें मे रहत जिया।
११. प्रति 'अ'—चाहै। १२ प्रति 'अ'—अव।
१३. प्रति 'अ'—रजमत।

मूल वस्तु दोय सो, अनादि तै न भेद होय,
एक से भये है[५] जैसें, नीर पीर तुलिहै।
हस ही कर सो भेद, चूच[६] विना व्रथा खेद,
'पारस' सो[७] नाटक सुनि भव वन[८] रुलिहै।

राग झंझोटी

(१०६)

समय सार कथनी भव मथनी हम पायी ॥टेक॥
निश्चै[२] व्यवहार[३] तै बताय जीव तत्त्व रूप,
छाडि कै अजीव[४] तत्व, निज परणति पायी ॥१॥
कर्ता[५] और भोक्ता दो नय तै नीकै बताय,
ज्ञाता ही सिकार्‌यो पद और कछू न कायी ॥२॥
चेतना[६] सरूप रूप[७] सकल तै अनूप भूप,
'पारस' अनुभव[८] विचारि[९] राचो 'या मायी।

---

१०५ १ प्रति 'अ' - सुनता। २ प्रति 'अ' - जब।
३ प्रति 'त' एव 'न'—तैं। ४ प्रति 'अ'—कै।
५ प्रति 'अ'—है। ६ प्रति 'अ'—चूच।
७ प्रति 'अ'—श्रय। ८ प्रति 'अ'—वन।

१०६ १ प्रति 'अ'—पाई। पद के सभी तुकान्त शब्दो मे से 'यी' के स्थान पर 'ई' का प्रयोग तथा पूर्ववर्ती स्वर मे अनुनासिकता का लोप।
२. प्रति 'अ' एव 'न'—निश्चय। ३ प्रति 'अ'—व्यंवहार
४. प्रति 'अ'—अजीव। ५ प्रति 'अ' एव 'न'—करता।
६ प्रति 'अ'—चेतना। ७ प्रति 'अ'—भूपं।
८ प्रति 'त'—अनभव। ९ प्रति 'अ'—विचारि।

राग झंझोटी.

(१०७)

तजो जीया पर परणति दुषदानी[1] ।
याकू निंद्य कही मुनि ज्ञानी ॥टेक॥
या ही तैं तेरे बध[2] परत है, जन्म मरण[3] बहु[4] ठानी।
अग धारि पाचू संगि रचि कै, आतम हित बिसरानी[5]।
या जुत चारित हू नहिं[6] सोहै, द्रव्य लिंग ठहरानी।
याहि तज्या[7] गृह बासपूज्य[8] लषि, भाषैं[9] श्री जिनवानी।
निज परणति तैं सुषी[10] होत है, दुष[11] की नाहि[12] निसानी[13]।
'पारस' मन वच[14] तन करि जाचत, निज परणति शिव थानी।

राग झंझोटी

(१०८)

सुमति कहै घर आवो पिया, चेतन कुमति को सग तजावु[1]॥टेक॥
कुमती कै संग[2] भ्रमे दुष भुगते, गति पायी अनचाउ रे।
कौलू कहूं जानें जिन स्वामी, कहनें मैं नहिं आवु रे।
मेरो भया सुभ मिलि गयो ताकरि, यह मानुष भव पावु रे।

---

१०७ : १. प्रति 'अ'—दुखदानी। २. प्रति 'अ'—वध।
३. प्रति 'अ'—मरन। ४. प्रति 'अ'—बहु।
५. प्रति 'अ'—बिसरानी। ६ प्रति 'अ'—नहि।
७. प्रति 'अ'—तज्या। ८. प्रति 'अ'—भासपूज्य।
९. प्रति 'अ'—भाषै। १०. प्रति 'अ'—सुखी।
११. प्रति 'अ'—दुष। १२. प्रति 'अ'—नाय।
१३. प्रति 'अ'—नीसानी, १४. प्रति 'त' एव 'न'—वच।

भूलि कुमति संग अब मति जावो, मानो[3] सीष सुनावु रे।
'पारस' भव तिथि घट गयो[4] जिनकै, वै[5] नर सुमती रमाउ रे।
दोनू[6] लोक सुधारण कारण, सुमती रचो उर चावु[7] रे।

राग झंझोटी

(१०९)

सावरिया तेरो दरस मोय[1] भावै।
म्हारो अवागमन मिटावै ।।टे।।
जादूकुल चद उजागर नागर सुर नर षगपति नावै।
चंद चकोर मोर घन तिमि जल,[2] यो[3] ऋषि मुनि सब ध्यावै।
तू ही वुद्ध[4] जिन पति व्रह्मा शिव नारायन कहलावै।
न्यायवाद करतार कहत तोयँ[5] कर्म मीमांसक गावै।
अलष निरंजन रूपी अरूपी, अज जन्मा दरसावै।
एकातीं तेरो रूप नहिं पावै, पारस ध्यावै सो ही पावै।

---

१०८ : १ प्रति 'अ'—तजावू। २ प्रति 'अ'—सगि।
३ प्रति 'अ'—मानू। ४. प्रति 'अ'—गई।
५. प्रति 'अ'—वे। ६. प्रति 'अ'—दोऊ।
७. प्रति 'अ'—सभी तुकान्त शब्दो के 'वु' के स्थान पर 'उ' का प्रयोग।

१०९ : १. प्रति 'अ'—मोय। २. प्रति 'अ'—जलि।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—यो। ४. प्रति 'अ'—वुद्ध।
५. प्रति 'अ'—तो पै।

राग भंभोटी ।

(११०)

सावरा मैं थारा आगम माय पायो नौ नय ।
आगम माय पायो ।।टेक।।
स्वातम ज्ञान मांयी, या तैं पिछानि पायी,[1] मोह कू विडारि यायी ।
आतमराम रायी, निज पर भेद भायी, लौ निज माय लायी ।
'पारसदास' ह्याही[2] दोवू ही प्रमाण दायी पायी निज पद माभ[3] थायी[4] ।

राग जंगलो, भंभोटी

(१११)

बिगत[1] घी भव बन[2] मघ मति जाय ।।टेक।।
भव बन[3] भारी बिसन[4] कटीली हारे म्हारी जीवरा रे काटो
चुभि[5] जाय ।
भव वन मैं तेरी निज निधि भपै, हारे म्हारा जीवरा रे मोह[6]
ठगराय ।
भव वन मध मैं नारी जो नागनि[7] हारे म्हारा जीवरा रे ढसे[8]
मुनिराय ।
भव वन मैं जिन पार्श्व सहयी[9] हारे गहि लीजे रे सरण
शिवदाय ।

---

११० . १ प्रति 'अ'—पाई । २. प्रति 'अ'—ह्याही ।
३. प्रति 'अ'—मांभ । ४. प्रति 'अ'—थाई ।

१११ . १ प्रति 'अ'—विगत । २. प्रति 'अ'—वन ।
३. प्रति 'अ'—वन । ४ प्रति 'अ'—विसन ।
५. प्रति 'अ'—चुव । ६. प्रति 'त' एवं 'न'—मिह ।
७. प्रति 'अ'—नागन । ८ प्रति 'अ'—डसे ।
९. प्रति 'त'—सरणो इन जिन पार्श्व सहायी ।

राग जंगलो, झंझोटी

(११२)

श्री जिनराज सरण तोरी आयो ।।टेक।।

आठ करम मोहि[१] भव भव माही[२] पर गुण माटे[३] रंक[४] बनायो ।

मेरे निज गुण मोहि[५] भुला करि,[६] नाना रूप बनाय नचायो ।

मेरी भूल कहा लू बरनू,[७] जो कीनो सो ही दुखदायो ।

अब करतव्य[८] होय सो ही कीजिये[९] पारस प्रभु चिंतामणी पायो ।

जंगलो, झंझोटी

(११३)

मेरा मन लाग्या आजि जी ।।टेक।।

हे गुण निधि तेरे गुण गावत अशुभ करम नसि जावै ।

आन देव ते[१] काज न सरिहै,[२] तुम सेवक शिव पावै ।

यह तो विरद[३] प्रभु प्रगट जगत में, तीन लोक जस गावै ।

या ते तुम पद सरण रहो मम, पार्श्वदास वर चावै ।

जंगलो, झंझोटी

(११४)

धर्म धरया[1] सुष[2] पावै सुज्ञानी[3] जीया ॥टेक॥
पंच प्रकार नरक दुष[4] दारुण सुपनै[5] हू न लषावै।
तिरजच गति मैं ना उपजावत,[6] देव मिनष सिर नावै।
तीन लोक तिहु[7] काल तणो[8] सुचि, चीजा भेट करावै।
'पारस' देव मिनष षग पूजै, भव सुष[9]-लहि शिव जावै।

राग जंगलो, झंझोटी

(११५)

धर्म विना दुष[1] पाया अज्ञानी[2] जिया ॥टेक॥
पंच प्रकार नरक दुष[3] दारुण, नरक-धरा मैं ध्याया[4]।
प्रगट देषिये तिरजंचनि मैं माता ही जणि षाया।
मानुष भव मैं दुष[5] दलद्र[6] के, रोग सोक[7] विललाया।
सुरगति मैं भी दास कर्म[8] कर, सुर त्रक मैं उपजाया।
क्रोध लोभ छल मान विषय मद पान किया दुखदाया[9]।
यम संजम की रीति न समझी, श्री गुरु बहु समझाया[10]।
धर्म[11] वस्तु[12] को रूप है, रतन त्रय भेद बताया।
सार जगत मैं धर्म है इक, भजल्यो मन वच काया।

---

११४ : १ प्रति 'म'—धर्‌या। २ प्रति 'म'—सुख।
३ प्रति 'म'—सुज्ञानी। ४ प्रति 'म'—दुख।
५. प्रति 'म'—सुपनें। ६ प्रति 'म'—उपजावंत।
७ प्रति 'म'—तिहू। ८ प्रति 'म'—तनी।
९ प्रति 'म'—सुख।

या के पाये पायिये सिव[13], या विन जग भरमाया।
पार्श्वदास तिनके पद पूज़त जिन वृष दृढ अपनाया।

राग झंझोटी

(११६)

जिनद जी बिरद सुन्यो[1] थाको[2] वांको[3] ।
उपकार करो क्यू न म्हाको[4] ॥टेक॥
अजन से तुम अधम उधारे, कीनो सब[5] अघ साको।
चाडाल दह माय[6] परचा को अतिसय प्रगट्यो वाको।
रघुपति रानी परी अगनि[7] मै,[8] नाम लेय इक थाको[9] ।
अगनि [10] कुड सब जल करि डारो, जस प्रगटायो ताको।
त्यारे बहुत[11] सुनी आगम मैं कहता अत न जाको।
'पारस' दास कहाय कोन[12] पै जाय कहावू काको।

---

११५ १, ३, ५. प्रति 'अ'—दुख। २ प्रति 'अ'—अज्ञानी।
४. प्रति 'त' एवं 'न'—पाया। ६ प्रति 'त' एव 'न'—दरिद्र।
७ प्रति 'अ'—सोग। ८ प्रति 'अ'—करम।
९ १० प्रति 'न' में दोनो पक्तिया नही हैं।
११ प्रति 'अ'—धरम। १२ प्रति 'अ'—वस्त।
१३ प्रति 'अ'—शिव।

११६ १ प्रति 'अ'—सुन्यो। २ ९. प्रति 'अ'—थाको।
३. प्रति 'अ'—वाको। ४ प्रति 'अ'—म्हाको।
५. प्रति 'अ'—सव। ६. प्रति 'अ'—माय।
७. १० प्रति 'अ' एवं 'न'—अग्नि ८ प्रति 'अ'—विचि।
११. प्रति 'अ'—वहुत। १२ प्रति 'अ'—कोण।

जंगलो, झंझोटी

(११७)

जिनवर तेरी मुद्रा मोहे[1] लागत परम रसाल ॥टेक॥

जा मैं रोग रोस नहिं किंचित तनु[2] वच सरलु दयाल।

केवू अंग बिभूति[3] रमावत मृगछाला बिकराल[4]।

केवू स्वेत पीत रक्ताबर ओढै[5] साल दुसाल।

षात सचिक्कण मोठा भोजन, सील कहत न लजात[6]।

जिनमत माय[7] धरत पग भोरे, यो कलि जोर विसाल।

जातरूप जिन केरी मुद्रा ह्या नही लगत कुचाल।

'पारस' तेरे पंथ चलत गुरु ते[8] उर बसहु[9] त्रकाल।

जंगलो, झंझोटी

(११८)

जिनवर तेरी श्रुति नैं मोहे[1] शिव मघ दीयो[2] बतलाय[3] ॥टेक॥

कुगुरु कुदेव कुधर्म सेय करि, नाहक जग भरमाय।

व्यतरादि[4] देवनि मैं कुत्सित, पूजे भक्ति बढाय।

प्रगट सग निग्रंथ पथ गुरु, यो कलिकाल सहाय।

---

११७ १ प्रति 'अ'—मोयँ। २ प्रति 'अ' एव 'न'—तन

३ प्रति 'अ'—विभूति। ४ प्रति 'अ'—विकराल।

५ प्रति 'अ'—ओढे। ६ प्रति 'अ'—लजाल।

७. प्रति 'अ'—माहि। ८. प्रति 'त' एवं 'न'—वे

९. प्रति 'अ'—वसहु।

दया धर्म कहि पोषत हिसा, श्रुति तै नाहि[५] मिलाय।
'पारस' धन्य तज्यो कुसग जिन, तेरे पंथ चलाय।

राग जंगलो

(११९)

अतर दा पट पोलो[१] जी जीया मोरा ॥टेक॥
चेतन रूप ज्ञान घन तोरा जड सगि करत किलोरा।
जड करि सगति वहु दुष[२] भोगे, आषर[३] रह[४] गये कोरा जी।
जड सगत[५] तजि निज रति धरि, 'पारस' त्रेधा करत निहोरा।

झंझोटी

(१२०)

मेरे जिनराज देव और नाहि[१] कोयी[२] ॥टेक॥
आन देव राग द्वेष[३] मोह कर्म वसि[४] लषात[५]।
कर्मनि परिमेष मारि जिनपति भयो योयी।
कर्मनि को घेर माय घेर रह्यो चहू[६] ओर,
इन तें छुडवाय नाथ कीजे[७] तुम सोयी।

---

११८ १ प्रति 'अ'—मोयै। २ प्रति 'अ'—दियो।
३. प्रति 'अ'—वतलाय। ४ प्रति 'अ' – वितरादि।
५. प्रति 'अ'—नाय।

११९ : १. प्रति 'अ'—खोल। २ प्रति 'अ'—दुख।
३ प्रति 'अ'—आखर। ४ प्रति 'अ'—रहि।
५ प्रति 'अ'—सगित, प्रति 'न'—सग।

तुम ही सरवज्ञ[8] प्रभू वीतराग दयासिंधु,[9]
तुमरी जो भक्ति करै, सुरपति ह्वै वोयी[10]
मो तै कछु भक्ति बनत ता करि फल जाचत हू[11],
जौ लू[12] शिव होय तितै[13] भक्ति ही रह्यौयी।

राग जंगलो

(१२१)

जिया पुदगल तैं रति छोर[1] रै जिया ।।टेक।।
याके संग अनादि काल को भ्रमत[2] फिर्‌यौ जिम ढोर रै।
तू चेतन ज्ञायक तन जड़ है, यह संजोग मरोर रै।
अब[2] सिव[3] चाह बसै[4] घट माही, पार्श्व चरण चित जोर रै।

---

१२० : १. प्रति 'अ'—नाय। २. प्रति 'त' और 'न'—कोई।
३ प्रति 'त' एव 'न'—दोष। ४ प्रति 'अ'—वसि।
५. प्रति 'अ'—लखात। ६. प्रति 'अ'—चउ।
७. प्रति 'अ'—कीज्यो। ८. प्रति 'अ'—सर्वज्ञ।
९. प्रति 'अ'—पदैयासिंधु। १०. प्रति 'अ'—वोई।
११. प्रति 'अ'—है। १२. प्रति 'अ'—लू।
१३. प्रति 'अ'—तितै।

१२१ : १. प्रति 'अ'—छोरि। २. प्रति 'अ'—भ्रम्यो।
३. प्रति 'त'—शिव। ४. प्रति 'अ'—वसै।

जंगलो तितालो

(१२२)

जानी हम वे मुष देखें की प्रीति ।।टेक।।
हम तो जाने पीया द्वार पधारे, मुड़ि गये यह कहा नीति[1] ।
मुक्ति सषी सैं नेह लगायो, हम सैं तोरी रीति ।
'पारस' इम कहि रजमत तप करि, सुरपति भई विधि जीति[2] ।

राग जंगलो को ठूमरी

*(१२३) ✓

परघिया करि कै भूलि शिव तिय ना मिलैगी रै ।।टेक।।
कुगति की दूती सुगति की वैरन सुगरू सुनाये तोये वोल ।
गये जायगे निज धी तैं शिव तू विच हिय मैं तोल ।
'पारस' या विन जग भरमत है याहि गहौ नै जान अमोल ।

राग जंगलो

(१२४)

जिनराज भजन तैनें क्यो न किया[1] ।।टेक।।
अति दुलल्भ नर[2] जन्म[3] पाय कै विषयन[4] मै कहा चित दिया ।
इनके भोगे तृप्ति न आवै, जिन भजिया होवे मुक्ति पिया ।
'पारस' पाय जोग यह नीको, जिन जपि[5] कर ल्यो शुद्ध हिया ।

---

१२२ · १ प्रति 'अ'—रीति ।
२. प्रति 'त'—पारस इम लषि रजमति तप धरि सुर भयी है विधि जीति ।

*यह पद केवल प्रति 'अ' मे है ।

१२४. १. प्रति 'अ'—कीया ।
२. प्रति 'अ'—जिन ।
३. प्रति 'अ'—धर्म ।
४. प्रति 'अ'—विषयनि ।
५. प्रति 'अ'—भजि ।

राग जंगलो तथा कहरवो

(१२५)

सरन गही मुभि[1] तारिहौ[2] प्रभू[3] जी ॥टेक॥
आन देव मैं भूलि न सेवू, तुमरे वच उर धारिहौ।
तुमरो ध्यान धरत है ते नर, सुर होवै दुष[4] टारिहौ।
'पारस' चाहत[5] है तुम सेती द्यो शिव पद अघ जारिहौ[6]।

जंगलो, झंझोटी

(१२६)

साथी कोयी नही एकाकी है तिहुकाल ॥टेक॥
एक हि जन्मैं मरै एक ही[1] एक पुण्य विसाल।
एक हि चक्रवर्ति सुख भोगै एक हि हस्तकपाल[2] ॥१॥
एक हि जाय बसै[3] सुरपुर मैं, एक हि मझ[4] पाताल।
एक हि बाल[5] जवान एक ही, काटै कर्म जंजाल[6] ॥२॥
मात तात अर बव[7] तिया सुत, सब चलिहै निज चाल[8]।
पास मुक्ति होय तब एक हि, झूठा है सब ख्याल[9] ॥३॥

---

१२५ : १ प्रति 'अ'—मुझं। २ प्रति 'त'—तारिहो।
३ प्रति 'न'—प्रभु। ४ प्रति 'अ'—दुख।
५ प्रति 'त' एव 'न'—चाहतु ६. प्रति 'त'—जारिहो।

१२६ : १. प्रति 'त'—मरण करत इक ' २. प्रति 'त'—एकहि चक्रवर्ति तीर्थंकर इक दुष भोगै बाल।
३ प्रति 'त' एव 'न'—वसै।
४ प्रति 'अ'—मध्य। ५ प्रति 'अ'—वाल।
६ प्रति 'त' मे दूसरा चरण प्रथम चरण से पहले है। ७ प्रति 'अ' एव 'न'—वध।
८ प्रति 'त'—"मात " निज चाल" पक्ति का लोप। ९ प्रति 'त'—पारस शिव पावै तब एक हि झूठा जग जजाल।

राग जंगलो

(१२७)

तारना वे जनम जलधि की धारा ।।टेक।।
आप तो सय्या पार उतर गये हो हम भी किंकर थारा ।
आप तौ अनत चतुष्टय जुत[1] भये हो, हमरे अघ क्यू नै टारा ।
आप तौ सिव[2] सुष[3] अमृत पी रहे हो, हम कू क्यूं[4] जल षारा[5] ।
आपको[6] 'पारस' दास कहावत,[7] इतनी लेहु बिचारा[8] ।

राग जंगलो, झंझोटी

(१२८)

जीया सीष[1] सुगुरु दी मानि रै ।।टेक।।
पाच पाप दुरगति की पौरी, बिसन[2] विगारे[3] बानि[4] रै ।
गुण सिख्या[5] गहि लेहु नियम तै, है निज सुष की षानि[6] रै ।
ये सिष्या परमार्थ जानि कै, 'पारस' दृढ करि आनि रै ।

---

१२७ १ प्रति 'त'—चतुष्टजुत । २ प्रति 'त' एव 'न'—शिव ।
३ प्रति 'अ'—सुख । ४ प्रति 'त'—क्यो ।
५ प्रति 'अ'—खारा । ६ प्रति 'अ'—कू ।
७ प्रति 'त' एव 'न'—मे 'कहावत' के बाद 'हो' शब्द अतिरिक्त । ८ प्रति 'अ'—विचारा ।

१२८ : १ प्रति 'अ'—सीख । २ प्रति 'अ'—विसन ।
३. प्रति 'अ'—विगारै । ४ प्रति 'अ'—वानि ।
५ प्रति 'त'—सिक्षा । ६ प्रति 'अ'—खानि ।

राग जंगलो, झंझोट

(१२९)

नैना पाय[1] लगे है तुमारे ।।टेक।।

अष्ट द्रव्य तै पूज[2] रचावूं बैना[3] धारू जो हिरदै हमारे ।

आन देव मैं भूलि न सेवू, वे[4] तौ विकट स्वरूप[5] अकारे ।

'पारस' धन्य दिवस धनि[6] घडि[7] पल पद परसे प्रभु थारे ।

राग झंझोटी

(१३०)

आतम कथा विना[1] सब[2] व्रथा ।।टेक।।

जप तप सजम दान क्षमादिक सून्य अंक विन यथा ।

ग्यारा[3] अग पढे नहिं सुरझे, ना[4] जानी[5] निज प्रथा ।

कुदकुदु स्वामी इत्यादिक, तिन को साचो[6] संथा ।

समयसार के रहस्य पिछानत ते निश्चै शिव कथा ।

'पारस' अध्यातम रस चाषो या तैं सुधरै पथा ।

---

१२९ : १ प्रति 'अ'—पाये । २ प्रति 'अ'—पूजा ।
३ प्रति 'अ'—बैता । ४ प्रति 'अ'—ये ।
५ प्रति 'अ'—सरूप । ६ प्रति 'अ'—धन्य ।
७ प्रति 'अ'—घडी ।

१३० १ प्रति 'अ'—विना । २ प्रति 'अ'—सर्व ।
३. प्रति 'त' एव 'न'—ग्यारा । ४ प्रति 'अ'—ना ।
५. प्रति 'अ'—जानी । ६ प्रति 'अ'—साची ।

राग अडाणो

(१३१)

जिन मेरी वीनतड़ी[1] अवधारि ॥टेक॥
अष्ट करम मोहे[2] दुख[3] देवत है इनको सग निवारि[4]।
जिनवर नाम कहावत तुम ही, दुष्ट करम कू जारि।
अन्य देव[5] वसुविधि[6] वसि[7] भरमत तुम ही तारनहार[8]।
'पारसदास' तिहारो किंकर सब परफंद विडारि[9]

राग अडाणो

(१३२)

रूप पिछाणो जी चेतना[1] गुणधारी को ॥टेक॥
दरसन ज्ञान चरण अगुणातम समल रूप व्यवहारी[2] को।
निश्चै दृष्टि एक रस चेतन, भेद रहित अविकारी[3] को।
सम्यक दसा प्रमाण उभै नय, निर्मल समल उचारी को।
यो समकाल जीव की परणति 'पारस' लषि[4] जगतारी को।

---

१३१. १. प्रति 'अ'—वीनतडी। २ प्रति अ'—मोये।
३ प्रति 'अ'—दुख। ४. प्रति 'अ'—निवार।
५. प्रति 'अ'—देव। ६ प्रति 'अ'—वसुविधि।
७ प्रति 'अ'—वसि। ८ प्रति 'अ'—तारनहार।
९. प्रति 'अ'—विडारि।

१३२. १. प्रति 'अ'—चेतना। २. प्रति 'त' एव 'अ'—व्यवहारी।
३. प्रति 'अ'—अविकारी। ४. प्रति 'अ'—लखि।

राग अडाणो

(१३३)

अनुभव कीया से जी पावे, प्रभु परम ।।टेक।।

जब[1] चेतन निहारि निज पौरष निरखै निज दग सू निज मर्म[2] ।

अनुभव करै सुद्ध[3] चेतन को, रमैं[4] सुभाव[5] बमैं[6] सब करम[7] ।

इह विधि[8] सधै मुक्ति पथ पारस अरु समीप आवै सिव[9] सर्म ।

राग जंगलो, झझोटी

*(१३४)

अधिक सुहावै मोकू वेशा ती छविया हे ।।टेक।।

अब जो सरावू अपने ध्यान कू, हे,

थिर थिर जावत हे घाती अघाती हे ।।१।।

गरज सो सारदा हे, अपने ज्ञान कू हे,

फिर फिर पावत हे मुक्ति नगरिया ।।२।।

पर तजि सो धावे, अपने माल कू वे,

सोध्या पावत वे पार्श्वंहि निधिया ।।३।।

---

१३३ : १. प्रति 'अ'—जबै । — २ प्रति 'अ'—मरम ।
३ प्रति 'अ'—शुद्ध । — ४. प्रति 'त' एव 'न'—रमै ।
५ प्रति 'अ'—स्वभाव । — ६. प्रति 'अ'—वमैं ।
७ प्रति 'अ'—कर्म । — ८. प्रति 'अ'—विधि ।
९ प्रति 'त' एव 'न'—शिव ।

*प्रति 'त' में यह पद नहीं है ।

राग जंगलो की ठुमरी

*(१३५)

मोहे डगर बता सुषकारी हो।
तुमरे विन जिन कुगुरु भ्रमाये कुगति लहि दुषकारी।
तुमरे नाम मत्र ते उवरे, साधि भनें[1] श्रुत धारी।
रतन त्रय पथ देहु हजूरी, पारस विनवू थारी।

राग सोरठ की ठुमरी

*(१३६)

गुरा म्हानें जातरूप तुम रा पद रूडो लागें ॥टेक॥
नोको लागें चोपो लागें असुभ वध सव भागें।
पर परणति विन निज परणतिमय आतम हित प्रति जागें।
कव ग्रह तजि कें पावू 'पारस' शिवपुर के सुष पागें।

राग सोरठ ताल रूपक

(१३७)

आली मोरा जीया की न पीया सुनता गया ॥टेक
सुनि पुकार पसुवन[1] की मघ मैं करुणा[2] रस चित छै गया।
रथ हमरे मदिर तें मोर्‌यो, गढ[3] गिरनारी चढि गया ॥१॥
मात तात परियन न सुहावै, षान पान विष ह्वै गया।
अब[4] हमकू घर मैं नहिं रहनो,[5] चित दरसन[6] विन[7] वह[8] गया ॥२॥

---

*प्रति 'त' मे यह पद नही है।
१३५ १ प्रति 'अ'—भनें।
*प्रति 'त' यह पद नहीं है।

जो उन कीनीं सो हम चीनो जोग वरण मन हो गया।
पार्श्वदास धनि रजमति जग मैं, उत्तम तप करि सुर भया[९] ॥३॥

राग सोरट

(१३८)

प्रभू सरण[१] द्यो[२] मोहि[३] तुम चरण केरी।
या तैं मेटिहू जी भव भ्रमण फेरी[४] ॥टेक॥
कर्म वसु[५] होय वसि[६] कुमति के जोग तैं दुर्गति[७] के दुष सहे वोहोत[८] बेरी।
चंद कू[९] ज्यो चकोरी लषत[१०] सुष[११] लहै, वारि[१२] कू मच्छ[१३] तू[१४] चाह तेरी।
'पार्श्व' तुम धारि उर माय भव नास[१५] करि शिव लहू इतै करि गौरि मेरी[१६]।

---

१३७. १ प्रति 'त' एव 'न'—पशुवन। २ प्रति 'अ'—करूणा।
३. प्रति 'त'—गड। ४ प्रति 'त'—अव।
५. प्रति 'त'—रहनो। ६ प्रति 'अ'—दर्शन।
७ प्रति 'अ'—विन। ८ प्रति 'अ'—वह।
९ अन्तम चरण—जो उन कोनी ... भय' प्रति 'त' और 'न' मेनहीं है।

१३८ १. प्रति 'त' एव 'न'—सर्ण। २. प्रति 'अ'—द्यो।
३ प्रति 'अ'—मोय। ४ 'या तै ... फेरी' प्रति 'अ' मे नहीं।
५. प्रति 'अ'—वसु
६. प्रति 'अ'—वसि। ७ प्रति 'अ'—दुगति।
८. प्रति 'अ'—वहुत। ९ प्रति 'त' एव 'न'—को।
१० प्रति 'अ'—लहन। ११ प्रति 'अ'—मुख।
१२. प्रति 'अ'—वारि। १३ प्रति 'अ'—मछ।
१४. प्रति 'अ'—ज्यूं। १५ प्रति 'अ'—नाशि।
१६. प्रति 'त'—करि इतै गौरि मेरी।

राग सोरठ

(१३९)

निति ध्याय रे जीया जिनेस।
अरज[1] ये ही उर मानि लै ॥टेक॥
जिनके उर जिन राज नाम थयो ते नर ह्याही अमरेस।
जिनके नाम सुनि स्वान देव भयो, ये भी नाही विसेस[2]।
जिनके ध्यावत सिव[3] सुष[4] पावन, गावत सत असेस।
जिनके नाम सुनि 'पारस' उधरे फिर न भयो[5] दुप ल्हेस।

राग सोरठ इकतालो

(१४०)

नाथ तुम पसुवन[1] वध[2] छुडायो।
यह सुनत सरण[3] तोरी आयो ॥टेक॥
जीव दया कै कारण ततक्षण गिरवर प्रति मन भायो।
वाह्य अभ्यतर[4] त्यागि परिग्रह, सोह सोह ध्यायो।
सुद्ध[5] रूप लै लीन होय कै, केवल ज्ञान उपायो।
भव्य जीव उद्धार करन कू, सुभ धर्मामृत पायो।
जगत जीव हित कारण द्वै विध, धर्म दया दरसायो।
पार्श्वदास तुम चरण सरण गहि गुण गण निस दिन गायो।

---

१३९ १ प्रति 'अ'—अर। २ प्रति 'अ'—विशेस।
३. प्रति 'त' एव 'न'—शिव। ४ प्रति 'अ'—सुख।
५. प्रति 'अ'—लह्यो।

१४०. १. प्रति 'त' एव 'न'—पशुवन। २. प्रति 'अ'—वध।
३ प्रति 'अ'—सरन। ४. प्रति 'अ'—अभितंर।
५. प्रति 'त' एव 'न'—शुद्ध।

राग सोरठ धीमों तितालो

(१४१)

होजी जीवजी थानें काई[1] काई[2] कहि समझावों हो,
विषया[3] रा माता हो जी जीव जी ।।टेक।।
ये विषयन थानें भौत भ्रमाये स्वातमीक[4] सुषघाता[5]।
इनके भ्रमाये बहु[6] दुष[7] पाये, रंक भये विललाता।
नारी वधु पुत्र भगिनी सुत, निज मुतलब की गाता।
नरकनि मैं इकले दुष भोगो, सोच करो ने इन जाता[8]।
पारस[9] प्रभू[10] पद सुमरि[11] सयाने,[12] तीन लोक मैं ख्याता[13]।
पच परावृत छाडि पलक मै मुक्ति बधू[14] के दाता

राग सोरठ जलद तितालो

(१४२)

मुझे[1] वैराग भावै जी,
बिण एक और वात कछू ना सुहावै जी ।।टेक।।
मात तात पुत्र मित्र वधु जोय जी,
अपनी गरज के यार, आपणा न कोय जी ।।१।।
देह नेह भोग भोगि पाप कीया जी,
पसु[2] नरक जोनि माय[3] दुषित[4] होत जीया जी ।।२।।

---

१४१ १-२ प्रति 'अ'—काई कांई । ३ प्रति 'अ'—विषया ।
४ प्रति 'त'-एव 'न'—स्वातमीक । ५ प्रति 'अ'—सुखघाता ।
६ प्रति 'अ'—वहु । ७ प्रति 'अ'—दुख ।
८. प्रति 'त' एव 'न'—जाता । ९ प्रति 'त' एव 'न'—पाइवं ।
१०. प्रति 'अ'—प्रभु । ११. प्रति 'अ'—सुमर ।
१२. प्रति 'अ'—सयाने । १३ प्रति 'अ'—ख्याता ।
१४. प्रति अ' - वधू ।

हित की वात[५] सत कही गहूँ सोय जी,
सब[६] छाडिहू[७] बिकल्प एक रूप होय जी ।।३।।
सार्धमि के प्रसग तैं सुज्ञान होय जी,
वस्तु[८] को स्वरूप लषू[९] राग षोय जी ।।४।।
याही तै 'पार्श्वदास' कछू भला होय जी,
और झठा आडबर तैं कहा होय जी ।।५।।

राग सोरठ

(१४३)

लगनि जिन राज सू[१] लागी,
सकल सै प्रीति हम त्यागी ।।टेक।।
मिथ्या मत जोर अति भारी, भयो जिय[२] अध अविचारी ।
सुभासुभ कू[३] न पहचाना,[४] जगत के माय भरमाना[५] ।
देह इत्यादि जो सारी, अचेतन बस्तु[६] सब[७] न्यारी ।
ताहि निज जाणि[८] के रागे, भोतसी भक्ति कूं लागे ।
मिथ्या मद दोष डर भागे, सुधातम रूप सूं पागे ।

---

१४२ १ प्रति 'न'—मुझ्यै ।
२. प्रति 'त' और 'न'—पशु ।
३. प्रति 'अ'—माय ।
४. प्रति 'अ'—दुखित ।
५. प्रति 'अ'—वात ।
६. प्रति 'अ'—सव ।
७ प्रति 'अ'—छाडिहू ।
८ प्रति 'अ'—वस्तु ।
९ प्रति 'अ'—लखूं ।

लगनि अैसी लगी अब[9] तौ, करम नसि जायंगे सब[10] तौ।
अबै[11] प्रभु पार्श्व कूं ढोकू, देहु निज ज्ञान घन मोकूं।

राग सोरठ

(१४४)

हे तू सुणि सतगुर की सीष[1] रे, तोहे[2] यो उपदेस दे छै ।।टेक।।
पाच पाप तजि मन बच[3] तन करि, पांच महाव्रत ये छै।
दसाध्यायी सूतर मायी उमास्वामी भणे[4] छै।
पाच पाप औपाधिक दुष दे इन कूं काहि[5] गहै छै।
इंद्री पाच कषाय पचीसू ये पर जनित लिषे[6] छै।
जा मैं पाप कसाय न[7] दीसै,[8] सुष को नांही छेह छै।
अबिनासी चिद्रूपी 'पारस' काहे आन नमें छै।

---

१४३ · १. प्रति 'अ'—सं। २ प्रति 'अ'—जीय।
३-५. प्रति 'अ'—कू पहचाना, भरमाना।
६ प्रति 'अ'—वस्तु। ७. प्रति 'अ'—है।
८. प्रति 'अ'—जानि। ९-१० प्रति 'अ'—अव, सव।
११. प्रति 'अ'—अवै।

१४४ · १ प्रति 'अ'—सीख। २ प्रति 'अ'—तोये।
३. प्रति 'अ'—वंच। ४. प्रति 'त' एवं 'न'—भणें।
५. प्रति 'अ'—गांहि। ६ प्रति 'त' एवं 'न'—लषे।
७. प्रति 'अ'—कसाय। ८ प्रति 'अ'—दीषै।
९ प्रति 'त' एवं 'न'—छे।

राग सोरठ

(१४५)

साधु सुषदायी[1] मिलै[2] मोहे[3] साधु सुषदायी ।।टेक।।
सोधि चालै भूमि निज तन तैं[4] न ममतामयी।
वचन बोलै[5] हित सरूपी चेतना[6] दायी।
वृत्ति जिनकी वडी उत्तम, अजाचिकताई।
धरै मेलै सो जतन तैं[7] दया उर मायी।
गुप्ति[8] तीनू धरै निति, अरि मित्र समताई।
जोग तीनू काल के धरि हरै भ्रमताई।
महाव्रतनि[10] मैं वडे सोधम दोस न लगाई[11]।
नमै 'पारस' मन बचन करि नि कारण भाई।

राग सोरठ, चाल हींदा की

(१८६)

जिनवर ध्यावो उर माय[1] जातै शिव सुष[2] पावो रे ।।टेक।।
अनादिकाल के कूर सूर पापडी कुगुरु मनायो[3] रे।
जिन बच कान न धारचा मानुष जनम गुमायो रे।
जिन मत छाडि मूढ के कलपे, मत कू उर विचि ल्यावै[4] रे।

---

१४५ १. प्रति 'अ'—सुखदाई । २ प्रति 'अ'—मिले ।
३. प्रति 'अ'—मोये । ४ प्रति 'अ'—ते ।
५. प्रति 'अ'—वोलै । ६ प्रति 'अ'—चेतना ।
७ प्रति 'अ'—करि । ८ प्रति 'अ'—माई ।
९ प्रति 'अ'—गुप्ति' । १० प्रति 'अ' महाव्रत ।
११ प्रति 'अ'—लगायी ।

महिषी दूद[५] छाडि कै थोहरि[६] दूदह[७] चावै रे।
मरण समै[८] जिन नाम धारि उर, स्वान स्वर्ग सुष थायो[९] रे।
'पारस' जिन को सुमरण करता[१०] निज पद पायो रे।

राग सोरठ

(१४७)

कायी[१] कायी[२] कह समझाबा,[३]
हो जी हो जीवा जी थानै हो कायी ।।टेक।।
सुमता सषो जी थासू अरज करै छै,
मानो म्हारी ब्रह्म लषावा।
कुमति संग भव[४] दुष[५] भोगे, वहु[६] नारक भये हो कुभावा।[७]
म्हारै संगि रहो[८] अब 'पारस' मुक्ति तिया परणावा[९] ।।

---

१४६ · १ प्रति 'अ'—माय २. प्रति 'अ' सुख।
३ प्रति 'अ'—मनाया ४. प्रति 'अ'—लावै।
५ प्रति 'अ'—दुग्ग। ६ प्रति 'अ'—थोहर।
७ प्रति 'अ'—दूद। ८ प्रति 'अ'—समैं।
९ प्रति 'त' एव 'न'—पायो १० प्रति 'अ'—कर कै।

१४७ १-२. प्रति 'अ'—कायी। ३ प्रति 'अ'—समझावा।
४ प्रति 'अ'—वहु। ५ प्रति 'अ'—दुख।
६ प्रति 'अ'—वहु। ७ प्रति' 'अ'—कुभावा।
८ प्रति 'अ'—रहो। ९ प्रति 'त' एवं 'न'—परनावां।

राग सोरठ

(१४८)

प्यालो पीवो जी सुज्ञान रो थे मनवा हो ।।टेक।।

आमा[1] तौ सामा[2] जग[3] मै न भ्रमो[4] जी सुर सुष[5] पावो जी रसाल ।

पीया सू दुष ना लहो जी, वोलै सुगुर विसाल[6] ।

ज्ञान जोति जग मैं दिपै जी, मिथ्मातम नसि जाय ।

'पारस' लषि[7] चषि[8] पीयियो जी जातै व्रह्म लषाय ।

राग सोरठ

(१४९)

दिढता अपनाई अब मैं जिनराज चरन की सरन मै[1] ।।टेक।।

मिथ्या देव सेव वहु करि कै बहुत[2] भ्रमै भव बन [3] मैं ।

तत्व अतत्त्व पिछानि जानि बिन[4] अपनाये परिजन मै ।

अब[5] जिन तत्त्व पाय कै 'पारस' सुषित[6] भये अनुभव[7] मै ।

---

१४८ १ प्रति 'अ'—आमा । २ प्रति 'अ' सामा ।
३ प्रति 'अ'—जगत । ४ प्रति 'त' एव 'न'—भ्रमो ।
५. प्रति 'अ'—सुख । ६ प्रति 'अ'—विसाल ।
७ प्रति 'अ'—लखि । ८ प्रति 'अ'—चखि ।

१४९ १. प्रति 'त'—जिनराज चरन की सरन में दृढता अपनायी । २-३-४. प्रति 'अ'—वहुत, वन, विन । ५. प्रति 'अ'—अव ।
६ प्रति 'अ'—सुखित । ७ प्रति 'अ'—अनभव ।

राग सोरठ, गुम्भाम्भ

(१५०)

जिनवर पूजो रे भायी यो अवसर बीत्यो[१] जायी ।।टेक।।
दोष अठारा रहित विराजै, गुण अनत जा मायी ।
चौतिसू अतिसै[२] जुत सोहै, भव्यनि को सुषदायो[३] ।
प्रातिहार्य करि जग मन मोहै, अनत चतुष्टय रायी ।
जाका तन की छबि[४] कू निरषत, कोटि भान हू[५] लजायो[६] ।
महिमा[७] वरनत अंत न पावै,[८] ज्ञानी हू मुनिरायी ।
'पारस' प्रभु कू जे नर पूजै[९] ते क्रम तै सिव[१०] जायी ।

राग सोरठ, गुम्भाम्भ

(१५१)

श्री रिषभदेव[१] महाराज के पद पूजै रे[२] भायी ।।टेक।।
नाभिराय मोरादेवी सुत प्रगट भये जगमायी[३] ।
तप्त स्वर्ण जिन राज देह छबि[४] दरस[५] तै पाप पलायी ।
धनुष पाच सै उंचे सौहै, मेरू समान लषायो[६] ।
सव ही कू जिन कही जीविका मानू कलप तरु थायी ।
सुरपति फणपति नरपति पूजै,[७] इक निज पद की चायी[१२] ।
तीन जगतपति[९] के पति स्वामी, साचै है जिनरायी ।

---

१५० १ प्रति 'अ'—बीत्यो । २ प्रति 'अ'—अतिसय ।
३ प्रति 'अ'—सब जीवन सुखदाई । ४. प्रति 'अ'—छवि ।
५–६ प्रति 'अ'—हुलसाई ।
७ प्रति 'अ'—महिमा । ८ प्रति 'अ'—पायो ।
९ प्रति 'अ'—पूजत । १० प्रति 'त' एव 'न'—शिव ।

सिव[10] संकर हरि ब्रम्हा जिनपति, बुद्ध वेद[11]श्री घुसायी,[12]।
'पारस' इक याही के नाम लपि[13] पूजो मन वच[14] कायी।

राग सोरठ. गुम्फाम्फ

(१५२)

श्री शांति नाथ[1] महाराज के पद पूजो रे भायी ।।टेक।।
शांति नाथ[2] को नाम लेत अघ शांत[3] होय जगमायी।
कामदेव चक्री तीर्थंकर[4], तीनू पद सुपदायी[5]।
तीन छत्र सिर त्रभुवन मोहे, प्रातिहार्य अधिकायी[6]।
गुण अनत जामें न दोस इक नमू नमू[7] हुलसायी।
वीतराग[8] सर्वज्ञ[9] जिनोत्तम भव्यनि कू[10] शिवदायी[11]।
पार्श्वदास ढोकत है अह निसि, त्रभुवन के पितमायी।

---

१५१ १. प्रति न'—रिषव देव। २ प्रति 'अ' —ने।
३. प्रति 'त' एव 'न'—जुगमायी। ४ प्रति 'अ'—छवि।
५. प्रति 'त' एव न'—दर्स ६ प्रति 'अ'—लखाई।
७. प्रति 'त'—सुरपति नरपति पगपति पूजे। ८ प्रति 'अ' – चाई।
९ प्रति 'त' एव 'न'—जगत्पति।
१०. प्रति 'त' एव 'न' शिव। ११ प्रति 'अ'—वद।
१२ प्रति 'अ'—घुनाई। १३ प्रति 'अ'—लखि।
१४ प्रति 'अ'—वच।

१५२. १–२. प्रति 'अ'—सातिनाथ। ३ प्रति 'अ'—सात।
४ प्रति 'त' एव 'न'—तीथकर। ५ प्रति 'अ'—सुखदाई।
६ प्रति 'अ'—अधिकाई। ७ प्रति 'त'—नमु।
८–९ प्रति 'अ'—वीतरण, सर्वज्ञ। १० प्रति 'त' एव 'न'—को।
११ प्रति 'त' और 'न'—सुपदायी।

राग सोरठ

(१५३)

अबै[1] प्रीति जिनराज के चरण लागी।
मेरी नीद[2] मिथ्यात की आजि भागी ॥टेक॥
भोग सब[3] रोग से प्रगट दीसत, भये कर्म की बेदना[4] तैं बिरागी[5]।
मित्र तिय भ्रात और मात सुत तात सब[6] देह के है[7] हम न देह त्यागी।
देह पुद्गल मयी मै सदा ज्ञानमय, ज्ञान ही देह मम जोति जागी।
नासिहूं कर्ममल पार्श्व के दास हम पार्श्व जिनराज सैं प्रीति पागी।

राग सोरठ, गुभ्काभ्क

१५४)

अबै सरण जिन धर्म की रहौं[1] सदायी।
यहू लोक की संपदा है पराई ॥टेक॥
कर्म मुभ कै उदै होत नजदीक सव असुभ के उदय तै[2] फुनि विलायी।
प्राप्ति और बिलय[3] फुनि मध्य तीनू समै आतमा[4] राम कू दु षदायी।
धर्म के ग्रहण तै[5] कर्म नसि जाय सब,[6] ज्ञान लक्ष्मी वढै मोक्षदायी।
इंद्र अहमिन्द्र[7] इत्यादि पद धर्म तै, आपु ही होत है लोक मायी॥

---

१५३ · १ प्रति 'अ'—अवै। २ प्रति 'अ'—नीद।
३-५ प्रति 'अ'-सव, वेदना, विरागी। ६ प्रति 'अ'—सव।
७ प्रति 'अ'—है।

धर्म दुल्लभ यहै लोक मैं प्रगट है ताहि धारैं जिके सुलभ नाई।
धन्य अवसर यहै पार्श्व पायो सही, धर्म हो सरण[८] मम तात भायो।

राग सोरठ, गुफाभ

(१५५)

परनारी विषवेलि[१] कू मति जोवै रे भायो[२] ।।टेक।।
रावण तीन षड को अधिपति पर्‌यो नरक के मायी[३] ।
और सुनी आगम मैं वहुजन,[४] या तैं[५] दुरगति पायो[६] ।
मदिरा पीये[७] होत वावरे,[८] लख्या[९] सपरस्या[१०] नाई[११]।
लख्या[१२] सपरस्या[१३] सुमरण कीया[१४] या मारै सहजाई[१५] ।
दृष्टि विषाश्रुत ही तैं सुनिहैं[१६] परतच्छ कोवू न लपायी।
दृष्टि विपापरतच्छ एम लषि, तजो दूर तै यायी।
जप तप ज्ञान ध्यान सजम यम भगति कीया[१७] नसायी।
आतम काज करो तो 'पारस' याकी तजिद्यो[१८] छायी।

---

१५४ १. प्रति 'अ'—हो। ७ प्रति 'अ'—तै।
३. प्रति 'अ'—विलय। ४. प्रति 'अ'—आतमा।
५ प्रति 'अ'—तै। ६ प्रति 'अ'—सव।
७ प्रति 'अ'—अहमेन्द्र। ८ प्रति 'त' एव 'न'—सर्णं।

१५५ · १ प्रति 'अ'—विपवेल। २ प्रति 'अ'—भाई।
३ प्रति 'अ'—मायी। ४ प्रति 'अ'—वहुजन।
५ प्रति 'अ'—तै। ६ प्रति 'अ'—पाई।
७. प्रति 'अ'—पिये। ८. प्रति 'अ'—वावरे।
९-१२. प्रति 'अ'—लख्या। १०,१३ प्रति 'अ'—सपरस्या।
११. प्रति 'अ'—नायी। १४ प्रति 'अ'—कीया।
१५ प्रति 'अ'—सहजाई। १६. प्रति 'त' एव 'न'—सुनी तै।
१७. प्रति 'अ'—किया। १८ प्रति 'अ'—तजद्यो।

राग सोरठ, गुझाभ

(१५६)

दुल्लभ नर भव पाय कैं मति षोवे रै भायी ।।टेक।।
सहज मिल्यो चिंतामणि सम यह, नर भव शिव[1] सुषदायी[2] ।
विषय षोष[3] साटे मति षोवै, फिर पीछै[4] पछितायी ।
पचेंद्री विषयनि[5] के बसि होय, झूठे सुष ललचायो ।
औसी रीति अज्ञानी जन की, परे कुगति विललायो ।
समता भाव सम्हारो अपनौ,[6] तजि परणति परमायी ।
अनादि काल की पर परणति[7] तै, निज पिछाणि नही आयी ।
बीतराग[8] उपदेस मिल्यो तोय,[9] जिन बानी[10] सहजायी ।
'पारस' न्हवन करो या माई,[11] निश्चै[12] शिवपुर जायी ।

राग गुझाभ

(१५७)

मानि लै म्हारी कही रे जीया मानि लै ।।टेक।।
निज गुण भूलि भयो पर बसि तू[1] बुधि तेरी[2] कैसै बही रै ।
पचेंद्रिय विषयन[3] कू तजिद्यो, पावो स्वर्ग मही रै ।
निज पर निर्णय करि गहि निज कू, तब तू सुज्ञान सही रै ।

---

१५६ १ प्रति 'अ'—सिव । २ प्रति 'अ'—सुखदायी ।
३ प्रति 'त' एव न'—षाष । ४ प्रति 'त' एव 'अ'—पीछै ।
५ प्रति 'त'—विषयन । ६ प्रति 'त' एव न'—अपनो ।
७ प्रति 'त' एव 'न'—परति । ८ प्रति 'अ'—वीतराग ।
९. प्रति 'अ'—तोये । १० प्रति 'अ'—वाणी ।
११ प्रति 'अ'—मायी । १२ प्रति 'अ'—निश्चय ।

ये तो जन्म व्रथा[4] ही[5] षोयो,[6] निज पिछाणि नैं[7] भयी रै।
अब कुछ हित कारिज कर भोरे, फिर यो व्योत नही रै।
गयी सो गयी अब[8] चेत[9] बावरे,[10] अजहू राषि[11] रही रै।
सब बिकलप तजि 'पारस' जिन भजि जानो मुक्ति लही रै।

राग गुभाभ

(१५८)

जीया तू दग ज्ञान सयी रै ।।टेक।।
जो दीसै[1] सो ही पर पुद्गल नाना रूप मयी र।
सपरस रस और गध बरण[2] गुण पुद्गल की परणाई रै।
हलको भारी नरम कठिनता, लूषो औ[3] चिकनई रै।
ये सब[4] है पुद्गल की परणति, तेरी कछु न कही रै।
देषै जानै सव कू नीकै परष करै नई नई रै।
सुष दुष दाता सो भजि पारस, सतगुरु सीष दई रै[5]।

---

१५७ - ४ प्रति 'अ'—तू।
२ प्रति 'अ'— 'तेरी' का लोप।
३ प्रति 'अ'—विपयान।
४–६. प्रति 'अ'—विषयनि मैं खोयो।
७ प्रति 'अ'—न।
८ प्रति 'अ'—अव।
९ प्रति 'अ'—चेति।
१० प्रति 'अ'—वावरे।
११ प्रति 'अ'—राखि।
१२ प्रति 'अ'—जानो।

१५८ १ प्रति 'अ'—दासै।
२ प्रति 'अ'—वरण।
३ प्रति 'अ'—ओ।
४ प्रति 'अ'—सव।
५ प्रति 'अ'—अन्तिम पक्ति का अभाव।

राग विहाग

(१५९)

देषो[1] री नेमीस्वर स्वामी वंदड़ा[2] वनि कं[3] आया है री[2] ।।टेक।।
समुदविजै वलिभद्र[4] कृष्ण मिलि षूव वरात[5] बनाया[6] है री।
भाग्य बडो[7] जानो रजमति को नेम प्रभू बर[8] पाया है री।
पसु[9] पीड़ा सुनि गिर कू ध्याये, सिद्धनि कू सिर नाया है री।
'पारस' सुनि बचन[10] राजमती यह गृह तजि सजम भाया है री।

राग विहाग

(१६०)

प्रभुजी मोहे त्यारो जी हो जी म्हानै भवदधि पार उतारो ।।टेक।।
पूजा दान कियो[2] कछु[3] नाही, जप तप ध्यान न धारो[4]।
तृष्णा वसि होय जग भटक्यो,[5] मैं झूठा[6] मोह को मारो।
दोष तरफ नाहि[7] दृष्टि दीजिये, अपनो विरद सम्हारो।
दीनानाथ विरद सुनि 'पारस' सरन गहत[8] अब[9] थारो।

---

१५९ : १ प्रति 'अ'—देखो। २-३ प्रति 'त' द्वारै मेरै।
४-८ प्रति 'अ' बलिभद्र, वरात, वनाया वडो, वेर। ९ प्रति 'त' एव 'न'—पशु। १० प्रति 'अ'—वच।

१६० १ प्रति 'अ'—मे 'होजी उतारो' अश छूट गया है। २ प्रति 'अ'—कर्यो। ३ प्रति 'अ'—कछू।
४ प्रति 'अ'—धार्यो। ५. प्रति 'अ'—भरम्यो।
६ प्रति 'अ'—झूठा। ७ प्रति 'अ'—नहि, प्रति 'न'-नाही।
८ प्रति 'अ'—गह्यो। ९ प्रति 'अ'—अव।

राग परज, कालिंगड़ो

(१६१)

हमारे अघ क्यू न हरो हम पूजन आये म्हाराजि[१]।
अष्ट द्रव्य तैं पूज रचावू, मुक्ति रमन रै काज।
नाम मत्र तै[२] पायियो[३] प्रभु स्वान स्वर्ग सुष[४] साज।
ज्ञानी शिव[५] पावै सुनी हम सम्यक गुरू दी[६] अवाज।
तुम विन ओर सरण नहिं जग मैं सुणि त्रभुवन के राज।
पार्श्वदास की ये ही अरज है हमरी तुम कू लाज।

राग परज, सोहनी

(१६२)

जिन दरसन तै अघ क्यौ न कटै जी ।।टेक।।
नाम मत्र तै वहुत[१] तिरे जिये तिनकी साषि।
सिद्धात रटै जी।
परतक्ष तुम पद सरन गह्यो हम,
क्यो नहिं मेरै[२] दुरित हठै।
'पारस' पाय तिहारे सरन कू,
अब कर्मनि तै नाहिं डटै[३] जी।

---

१६१ १ प्रति 'अ'—महाराजि। २ प्रति 'त'—तै।
३ प्रति 'अ'—पाइयो। ४ प्रति 'अ'—सुख।
५ प्रति 'अ'—सिव। ६ प्रति 'अ'—'दी' का लोप।

१६२ १. प्रति 'अ'—वहुत; प्रति 'न'—वहुतै। २ प्रति 'अ'—मेरे।
३ प्रति 'त'—हठै।

राग आसावरी, परज, कालिंगड़ो, माढ

(१६३)

घर आवो जो जीवा जो सुष माणवानैं।
थानै कुण रे[1] नटै छै अठै[2] आवतानैं ।।टेक।।
थानै हिंसा री काज छुडायस्या[3] जी,
सातू विसना रो सग निवाखानै।
थानै पर परणति भी छुड़ावस्या[4] जी,
रूडी निज परणति सू मिलायवानै।
थानै ज्ञानमयी ढोलियो पोडाणस्या[5] जी,
निज रूप[6] मैं त्रलोकी[7] पिछाणवानै।
थानै मुकति[8] पियारी[9] परणावस्या जी,
पारसदास नू कारिज सारवान[10]।

राग कालिंगड़ो, जलद तितालो

(१६४)

चेतता क्यू[1] नही[2] रे जीया तू, तोये रागू किया बेहाल[3] ।।टेक।।
नारकी होय कै दुष[4] सहे तुम भूलि[5] गये सो अयान।
पाप पशूगति[6] भूष तृषा लहि, बधन त्रास महान।
देवपदी मैं देष[7] कै संपति अन्य तणी जो[8] अमान।

---

१६३ . १. प्रति 'अ'—र। २ प्रति 'अ'—अंठै।
३-४ प्रति 'त'—छुडावस्या। ५. प्रति 'त'—सुवाणस्या।
६ प्रति 'त' एव 'न'—लोक। ७ प्रति 'अ'—तिहू लोक।
८ प्रति 'त' एव 'न'—मुक्ति। ९ प्रति 'त'-प्यारी, प्रति 'न' पयारी।
१० प्रति 'त'—काज सुधारवानै।

पर प्रसंग तैं निज गुण भूले निज गुण रति विन बाल[7]।
तेरे हित की बात कहू मै, सो चित धारो लाल।
'पारस' पद आराधन कोजै शिवपुर पति होय भाल।

राग कालिगड़ो

(१६७)

अब[1] तौ रे निज धर्म रूप[2] विचार रे ॥टेक॥
दरसन[3] ज्ञान स्वरूप[4] तुमारो[5] आनि उपाधि निवारि रे।
तू चिद्रूपी मति भरमैं लषि, पर पुद्गल के[6] विकार रे।
राग द्वेष तजि ये औपाधिक, तोहि करै बेकार[7] रे।
'पारस' जानि स्वरूप[8] आपनौं,[9] शुद्ध[10] करौ व्योपार रे।

---

१६६ १ प्रति 'अ'—वली। २ प्रति 'अ'—अरु।
३ प्रति 'अ'—सव। ४ प्रति 'अ' - वसि।
५ प्रति 'अ'—भ्रमे। ६ प्रति 'अ'—वहु।
७ प्रति 'त' –निज गुण वाल। ८ प्रति 'अ'—मौ।

१६७ १ प्रति 'अ'—अव २ प्रति 'त'—मे 'रूप' शब्द का लोप।
३ प्रति 'अ'—दरशन। ४ प्रति 'अ'—सरूप।
५ प्रति 'अ'—तुमारो। ६ प्रति 'अ'—का।
७ प्रति 'अ'—बेकार। ८ प्रति 'अ'—सरुप।
९. प्रति 'अ'—आपनो। १० प्रति 'अ'—सुद्ध।

राग कालिगड़ो

(१६८)

हा जी पर पुद्गल कौ[1] कायौ[2] पतियारो ॥टेक॥
पोषंत पोषत बिनस्यो[3] जात है, काचा घट उनिहारो।
इंद्र चद्र चक्री तीर्थंकर किनहू[4] कै थिर न निहारो।
'पारस' सफल होत या विधि सै[5] व्रत तप शिव हित धारो।

राग परज, कालिंगडो

(१६९)

निज धी अनुसर शिव सुष भोगि ॥टेक॥
पर मैं निजता मानि फसे बहु यह[1] अनीति नहि जोगि।
अनत ज्ञान सुष वीरज तुझि घर, पर जड मैं मति थोगि[2]।
जीवन मुक्त होवु या बिधि सै[3] पारस रहु उपयोगि[4]।

राग कालिंगडो आसावरी

(१७०)

बदू[1] जिनबानी[2] परमानद निधानी[3] ॥टेक॥
अरथ समग्र धारि जिन मुष[4] तै गणधर गूथि[5] बखानी।

---

१६८ १ प्रति 'अ'—को। २ प्रति 'अ'—कायी।
३ प्रति 'अ' एव 'त'—बिनस्यो। ४ प्रति 'अ'—किनहू।
५ प्रति 'अ' एवं 'त'—सै।

१६९ १ प्रति 'त' एवं 'न'—ये। २ प्रति 'अ'—मे 'अनत ज्ञान थोगि' पूरी पक्ति छूट गई है।
३ प्रति 'अ' एव 'त'—विधि।
४ प्रति 'अ'—उपयोग।

स्यादवाद निरबाधित पर तैं, नय परमाण जुतानी।
स्यो मारग की राह बतावैं, सप्त तत्व दरसानी।
आपा पर को भेद लषावैं, गुण रतनन की खानी।
मिथ्या ताप निवारण[6] कारण[7] समकति वृक्ष चढानी।
'पारस' बानी[8] जे उर आनी[9] ते भये केवल ज्ञानी।

(१७१)

जिनद[1] विन कैसैं कटै भव ततिया ।।तेक।।
बहुत[2] काल भयो जनम मरण कीये कोन न पायी गतिया।
परिवर्तन को सुमरण करत ही, फटत हमारी छतिया।
'पारस' जिन पद सरन गही, दिढ, तजो आन कू[3] नतिया[4]।

---

१७० १ प्रति 'अ'—वदू। २ प्रति 'अ'—जिनवानी।
३. प्रति 'अ'—निघानी। ४. प्रति 'अ'—मुख।
५ प्रति 'अ'—गूथि। ६ प्रति 'अ'—निवारन।
७ प्रति 'अ'—कारन। ८ प्रति 'अ'—वानी।
९ प्रति 'अ'—आनी।

१७१ १ प्रति 'त' एव 'न'—जिन। २ प्रति 'अ'—बहुन।
३ प्रति 'अ'—की। ४. प्रति 'अ'—नतिया।
—'छतिया' गतिया 'ततिया' सभी शब्दो मे अनुनासिकता का लोप।

राग कालिंगड़ो

(१७२)

हा जि शिव कामिनी नैं राजि जादू कीता वे ।।टेक।।
नगन रूप दोय हाथ[१] झूलायें[२] भये है मुकति सै मीता।
नासा दृष्टि धारि दृढ ठाडे, ता अनुभव मैं प्रीता।
'पारस' अैसे सुगुरु मिले जिनैं[३] ते नही रहैगे[४] रीता।

राग कालिंगडो

(१७३) ✓

वीतराग देव हो राजि म्हे घ्यास्या जी ।।टेक।।
रागी होय सहे चहु[१] गति दुष[२] राग घट्या[३] सुष[४] पास्या जी।
राग मिट्या होय सवर[५] निरजरा, पारस शिवपुर[६] जास्यां[७] जी।

राग कालिगडो

(१७४) ✓

तत्व की प्रतीति भयी तोरे ढिग आय कैं ।।टेक।।
नय परमाण तैं पिछाण लीये तत्व भेद मिथ्या भ्रम नसि
गयो मूल तैं नसाय कैं।

---

१७२ १ प्रति 'अ'—हाथ। २ प्रति 'अ—झुलाये।
३. प्रति 'त' एव 'न'—रहैगे। ४ प्रति 'त' एव 'न'—जिनैं।

१७३ १ प्रति 'अ' —चउ। २ प्रति 'अ'—दुख।
४. प्रति 'अ' सुख। ३. प्रति 'त' एव 'न' हट्या।
५ प्रति 'अ'—सवर। ६ प्रति 'अ'—सिवधर।
७ प्रति 'अ'—जास्या।

चेतना[1] सरूप जीव चेतना[2] विना[3] अजीव,
तिन ही के पच भेद मूल दो विलाय[4] कैं।
ज्ञान चेतना सरुप[5] कीजे द्विविधा[6] मिटाय,
'पारस' प्रभु अरजोया करिहू सिर नाय कैं।

राग कालिगडो, आसावरी

(१७५)

हो ज्ञानी कैसे बिसरि[1] गये मतिया ।।टेक।।
बेर बेर तोहे[2] गुरु समझावत,[3] तजि विषयन[4] मैं लतिया।
तुम चेतन जड मैं[5] किम राचे, ये तौ जोग्य नहीं बतिया[6]।
'पारस' करि पिछाणि निज पर की पावो पचम गतिया[7]।

---

१७४ १-२ प्रति 'अ'—चेतना। ३ प्रति 'अ'—विना।
४ प्रति 'अ'—मिलाय। ५ प्रति 'अ'—स्वरूप।
६ प्रति 'त' एव 'अ'—द्विविधा।

१७५ १ प्रति 'अ'—विसरि। २ प्रति 'अ' तोये।
३ प्रति 'अ'—समझावै। ४ प्रति 'अ'—विषयनि।
५ प्रति 'त' एव 'न'—तै। ६ प्रति 'त' एव 'न'—ये नहि सोहै बतिया।
७. प्रति 'अ'—मे गतिया, बतिया, 'लतिया,' 'मतिया' शब्दो मे अनुनासिकता का अभाव।

राग परज

(१७६)

तजो मान गुणवाला हो ।।टेक।।
मति भी बिगारै[1] यो गति भी विगारै[2] नाही गह्यो श्रुतिवाला।
मोह राज को भ्रात योही है, मिथ्या मारग वाला।
क्रोध लोभ छल एम कुटंवी,[3] सग करत मू[4] काला।
मार्दव[5] धर्म गहौ रे 'पारस' ज्यौं[6] कटि है भव जाला।

राग माढ

*(१७७)

मत पीवो नें दारूडी रे।
दारू मै मोटो पाप हो मत पीवो० ।।टेक।।
दारू पोयी जादवा सकल विनठ्यो[1] वंस।
भस्म भई द्वारावती ताको रह्यो न अस।
दारू मैं हिंसा घणी, भाषी श्री जिनदेव।
ज्ञान विगाडै जोव को, देह विनासै एव।
आठ मूल गुण मै प्रथम सप्त विसन मैं निंद्य।
पारस धरमी[2] जन तजै भजै मुक्ति जग वंद्य ।।

---

१७६ १-२ प्रति 'त' एव 'अ'—विगारै। ३ प्रति 'अ'—कुटनी।
४ प्रति 'अ'—मू। ५ प्रति 'अ'—माद्दंव।
६ प्रति 'अ'—ज्यो।

*प्रति 'त' मे यह पद नही है।
१७७ १ प्रति 'अ'—विनठ्यो। २ प्रति 'न'—धर्मी।

राग षमावच

*(१७८)

मैं ध्यावू तोयें[1] सुचि वानी कू,
और गुरु के पद सिव पद पावू ।।टेक।।
समभावा[2] जुत मदिर आवू[3] सब[4] बिघन[5] वितान[6] गमावू।
कुगुरु कुदेव कुधर्म न चावू, सम्यक रतनत्रय उर भावू।
पार्श्वदास यू नाम कहावू काप[7] लाज लजावू।

राग आसावरी

*(१७९)

महारै दिल वसिया जिनदवा, जिन ही म्हारै ध्यान ।।टेक।।
मरण समैं मुनि नाम कू, जीवक तै स्वान।
तजी पाप परजाय कू, सुर भयो सुखवान।
सुत दारा धन पाय कै, भव भव मैं राचि।
भ्रमे चतुर्गति[1] मैं सदा, हूवे दुषवान[2]।
'पारस' सद्गुरु जोग तैं, पायो सम्यक[3] ज्ञान।
घरिहू मैं उर कोस मैं, करियो[4] परमान।

---

*प्रति 'त' मे यह पद नही है।

१७८ : १ प्रति 'अ'—तोयैं। २ प्रति 'अ'—समभावा।
३. प्रति 'अ'—आवू। ४-६ प्रति 'अ'—मव, विघन, वितान।
७ प्रति 'अ'—'कापै' शब्द का लोप।

*यह पद प्रति 'त' मे नही है।

१७९ : १ प्रति 'न'—चतर्गति। २ प्रति 'अ'—दुखवान।
३ प्रति 'त'—सम्य। ४ प्रति 'अ'—घरियो।

राग सोरठ, गुम्भाभ्क

(१८०)

जिन राज देव ही भावै,

दूजो म्हारी दाय न आवै हो ॥टेक॥

चदना सी सती कै घरि आप आवै हो।

अग्निकुड मै जरत[1] सीता कू बचावै[2] हो।

सिंहोदर तै बज्रकरण[3] को मान रषावै हो।

सोमा कर मैं साप[4] पुस्प की माल होवै हो।

चडाल कै दह मैं परत[5] सिंघासन आवै[6] हो।

वारिषेण को[7] षडग तै चौसर पहरावै हो।

भक्तन के दुष मिटत है, त्रैलोक्य गावै हो।

साति छबी इम सहाय करत अचिरज दिषलावै हो।

अन्य देव बिकराल[8] मूर्ति, तैहू[9] कर्म वसावै हो।

कर्म विजय तै जिनवर नाम कू तू ही पावै हो।

पार्श्वदास निरविघ्न भक्ति इक तो सै[10] चावै हो।

तोहि जाचि दूजो किम जाचैं दास कहावै हो।

---

१८० : १ प्रति 'त'—जलती। २ प्रति 'अ'—वचावै।
३ प्रति 'अ'—वज्रकरण। ४ प्रति 'अ'—सर्प्प।
५ प्रति 'अ'—पडत। ६ प्रति 'अ'—आवत।
७ प्रति 'अ'—कू। ८ प्रति 'अ' एव 'त'—विकराल।
९. प्रति 'त' एव 'न'—तो हू। १० प्रति 'अ'—री।

गणगौरि की चाल में

(१८१)

रजमति पति नेम[1] के बंदू पाय ।।टेक।।

पशु पीडा लषि[2] व्याह तज्यो जिन जीत्यो अगज विषय कषाय।

सेसावन[3] मैं लोच कियो, प्रभु, ध्यान धर्‌यो गिरवर पै[4] जाय।

ध्यान प्रताप घातिया हनि कै, सम्यक केवल ज्ञान उपाय।

पार्श्वदास गह्यो सरण[5] चरण[6] को, आन सरण तजि मन बच[7] काय।

(१८२)

कुमती का सग कू तजिद्यो[1] नर भोर ।।टेक।।

बालपणू[2] ध्याल मैं षोयो[3] भरी जवानी तिरिया वसि[4] होर।

विरदपणै अग सिथल भयो, तप कीनो नही करम मल धोर[5]।

धन्नि नेम जिन त्यागि परिग्रह, तप कीनो पशुवन[6] सुनि सोर।

'पारस' तजो कुमति कू भाई, धारो सुमता सगम दोर।

---

१८१ १ प्रति 'त'—नेम प्रभु। २ प्रति 'अ'—लखि।
३ प्रति 'अ'—मेसावा। ४ प्रति अ'—प।
५ प्रति 'अ'—सर्ण। ६ प्रति 'अ'—चर्ण।
७ प्रति 'अ'—वच।

१८२ १ प्रति 'अ'—नजद्यो। २ प्रति 'त'—बालपणो।
३. प्रति 'अ'—खोयो। ४ प्रति 'त' एव 'अ'—वसि।
५ प्रति 'न'—धोय। ६ प्रति 'अ'—पसुवन।

राग माढ व काफी

*(१८३)

किण रै सैनाणै[1] प्रभुजी नैं हे हो जी
ओ लषा जी म्हा का राजि ।।टेक।।
हा जी राणी रजमति रा जी भरतार।
भवदधि डूबत त्यारो त्यारो हे पार उतारो।
म्हा का राजि ।।१।।
हा जी राणी रजमति करै छै पुकार,
शिवपुर चाला थाको लैरा
हे हो जी मत टारो म्हाका राजि ।।२।।
हो जी जिन पशु तौ छुडाये जी अपार,
पार्श्वदास रो उतारो हे भव दुष भारो,
म्हा का राजि ।।३।।

राग सोरठ, रेषतो

(१८४) ✓

अबै ससार सब[1] त्यागा।
हमारा दिल राम सै लागा ।।टेक।।
सजन साथी सबै[2] झूठे,[3] हमैं बौराय[4] कै लूटे।
यहै तन निंद्य अति मैला, असुचि मल मूत्र का थैला।

---

*यह पद प्रति 'अ' मे नहीं है।
१८३ · १ प्रति 'अ'—सानाणै।

लपे सव[5] भोग दुखदायी, नरक के पथ की सायी।
अथिर धन धाम सव[6] जाना। गगन विजुरी के चमकाना[7]।
क्रोध तजि लोभ मद माया। तजी नृप मोह की छाया।
करी प्रभु पार्श्व की सेवा। लपा घट माद[8] हम देवा।

इक तालो रेपतो

(१८५)

अव[1] तौ घर आवो स्वामी, तुम विन बेहाल है[2] ।।टेक।।
ज्ञानावरणादि मोहि करते पैमाल है।
इन ही भैण नाथ कुमता विकराल है।
अव[3] मोहि निज रस हू लागत रसाल है।
निज रस विन सर्व ज्ञान दीसत पराल है।
मिथ्यातम जोर तै वध्यो अज्ञान जाल है।
पचेन्द्री चोरन तै कोन[4] रखवाल है।
सुमता ढिग आवो तौ अपनी निधि भालहै।
कुमता सग त्यागो तव[5] 'पारस' निहाल है।

---

१८४ १ प्रति 'अ'—सव। २ प्रति 'अ'—सर्व।
३. प्रति 'अ'—झूठे। ४-५ प्रति 'अ'—वौराय, सव।
६ प्रति 'अ'—कू। ६ प्रति 'अ'—चमकाना।
८ प्रति 'अ'—माहि।

१८५ १ प्रति 'अ' अव। २ प्रति 'अ'—अपनी निधि भाल है।
३ प्रति 'अ'—अवै। ४ प्रति 'अ' – कौन।
५ प्रति 'त' एव 'न' ज्यू।

रेषतो

(१८६)

सजन तुम झूठ मति वोलो, प्रभू[1] कू साच प्यारा है ।।टेक।।
वचन परतीत हू जावें,औ थुथुकार हू पावें ।
धरम कू सूवता[2] नायी,[3] तजो भवि झूठ दुषदायी[4] ।
अगनि तौ साम्यता पावें, सरप हू माल हो आवें ।
सत्य तें होत थल पानी, सुधा सम जहर होय जानो[5] ।
सत्य विन दु ख बहु पायो, वसू[6] शिवभूति[7] गुरु गायो ।
भक्ति प्रभु पार्श्व की जाणो,[8] सत्य जुत मुक्ति को थाणो ।

रेषतो

(१८७)

जिन नाम कू सुमरि लै[1] वर वषत जो मिला है ।
नर देह सहज नाहै, हित धारना सला है ।
व्रत त्याग कठिन जोहै, भज नाम[2] हो भला है ।
जलवाहिनी[3] मैं[4] वहता, गोपाल नै[5] रटा है ।
उपजावै[6] सेठ सुदर्शन शिव रत्न जा पटा है ।
जिन नाम के भजे तै,[7] भव दुष तैं टला है ।
भव जाल फद फासी जिन भजन तै जला है ।

---

१८६ १ प्रति 'अ'—सया । २ प्रति 'त' सूझना ।
३ प्रति 'अ'—नाई । ४ प्रति 'अ'—दुखदायी ।
५ प्रति 'अ'—जानी । ६ प्रति 'अ'—वसु, प्रति 'त'—वसू,
७ प्रति 'अ'—सिवभून ८ प्रति 'अ'—जाणो ।

परमाद विषय[8] कषाया,[9] ये मोह के छला है।
इन हू कू टारि देना,[10] काहू तै ना टला है।
जो अनंतकाल वीते, ये पुण्य आ फला है।
प्रभु पार्श्व सुमरि लीजे जिन कर्म दल मला है।

सोरठ की गुझाझ मैं

(१८८)

चेतन विषय महा दुषदायी रैं।
हा रैं तू क्यू नै देत तजायी रैं ।।टेक।।
ऐक[1] ऐक[2] इद्री कै वसि होय कोन कोन गति पायी रैं।
सपरस बाछा[3] रावण कीनो, फिर गयी राम दुहायी[4]।
रसना[5] लोलुप है जल मीना, काढै[6] प्रान[7] गुमायी[8]।
घ्राण[9] रंजन अलि पंकज मै दीना प्राण नसायी।
दीप सिषा लषि[10] कै जु पतगो निज तन देत जरायी।
बन[11] मैं नाद कुरगी सुनि कै जाल[12] माझ उरझायी।
पाचू सेवत आनद मानत सो सठ जानो[13] रैं भायी।

---

१८७ १ प्रति 'अ' लै। २. प्रति 'अ'—नाम।
३–४ प्रति 'अ'—जलावाहनी म। ५ प्रति 'अ'—न।
६. प्रति 'अ'—उपजावो। ७ प्रति 'अ—तै।
८ प्रति 'अ'—विषै। ९ प्रति 'अ'—कषाया।
१० प्रति 'अ'—देना।

विनसत बार लगै नहिं इन कू यातैं[१४] विलम न लगायी[१५]।
तजि इन पार्श्व भजो शिवरायी[१६] फिर कब अवसर आयी[१७]।

राग सोरठ

(१८९)

झूठी ना कहो रै झूठी ना कहो रै हो सुज्ञानीडा रै ।।टेक।।
यह अवसर वहु पुण्यतैं[१] पायो ता सैं कहू निज हेत की बतिया।
सत गुरु नै साचो[२] उपदेस दीयो, ताय गही पावो सुभ गतिया।
बचन माय विष अमृत दोवू रे[३] पारस विष तजिये सुभ मतिया[४]।

---

१८८ १–२ प्रति 'अ'—एक। ३ प्रति '–'—वाछा।
४ प्रति 'अ'—दुहाई। ५. प्रति 'अ'—रसना।
६. प्रति 'अ'—काटै। ७ प्रति 'अ'—प्रान।
८. प्रति 'अ'—गमायी। ९. प्रति 'अ'—प्राणा।
१० प्रति 'अ'—लखि। ११. प्रति 'अ'—वन।
१२ प्रति 'त' एव 'न'—जालि। १३ प्रति 'अ'—जाणो।
१४ प्रति 'त' एवं 'न'—जानि। १५ प्रति 'अ'—कराई।
१६ प्रति 'अ'—शिवराई। १७ प्रति 'अ'—सभी तुकान्त शब्दों, 'आयी', 'भायी', उरझायी मे 'यी' के स्थान पर 'ई' का प्रयोग।

१८९ प्रति 'अ'—तै। २ प्रति 'अ' सम्यक।
३. प्रति 'अ'—रै। ४. प्रति 'अ'—'मतिया', गतिया, 'वतिया' सभी तुकान्त शब्दो मे अनुनासिकता का अभाव

सोरठ की गुझाझ

(१९०)

पर मैं कैसे रमू म्हारा चेतन का गुण जाय ।।टेक।।
जैसी सगति तैसो फल दे प्रगट लषो जग माय[1] ।
अगनि लोह की सगति सेती,[2] घण को घात सहाय ।
दीपक सग कियो वत्ती नै, सो दीपक होय[3] जाय ।
या बिधि लषि गुण दोस सग तैं निज गुण माय रचाय ।
जो दीसै सो ही पर पुद्गल कवहू[4] ना[5] ठहराय ।
'पारस' अविनासी सुषमय[6] होय पर मैं क्यू[7] विलमाय ।

सोरठ की गुझाझ

(१९१)

सावरिया[1] स्वामी जो अव[2] मोहे त्यारो ।।टेक।।
अनतकाल षोयो निगोद मैं भमियो कुगति मझारो[3] ।
असुभ करम जब[4] हलको पडियो, लषियो रूप तिहारो ।
अनत ज्ञान लच्मी के सागर, परमातम[5] सुषवारो[6] ।
भव आताप नसावण जलमुच मेटो ताप हमारो ।
सत सगति तुम भक्ति दीजिये, आगम अर्थ[7] बिचारो ।
पार्श्वदास की याही अरज है, कुमति कुविसन निवारो ।

---

१९० १ प्रति 'अ'—माय । २ प्रति 'अ' करि ।
३ प्रति 'त' एव 'न'—हो । ४ प्रति 'अ'—कवहू ।
५ प्रति 'अ'—ना । ६ प्रति 'अ'—सुखमय ।
७ प्रति 'त' एव 'न'—क्यो ।

१९१ १ प्रति 'त' एव 'न'—सावरिया २ प्रति 'अ' अव ।
३. प्रति 'अ'—मझारो । ४ प्रति 'अ'—जव ।
५ प्रति 'अ'—परमामृत । ६ प्रति 'अ' सुखवारो ।
७ प्रति अ'—अरथ ।

राग सोरठ

(१९२)

थाका गुण गावा[1] म्हाका[2] प्रभु जो दरसण दीज्यो ।।टेक।।
मोह करम वसि हित नही पेरयो[3] मथ्या[4] मारिग रीज्यो।
पुण्य उदै प्रभु तुम ढिग आयो, अब मिथ्यातम छीज्यो।
और न भावू तुम ढिग चाहू[5] मोकू तुम सो कीज्यो।
'पारस' अरज करै त्रभुवन पति भव भव सरणो दीज्यो।

सोरठ को गुभाभ

(१९३)

जिनराज एक ही भजना[1] दूजा क्या करना क्या करना ।।टेक।।
अनादि काल तै ना जान्या[2] हम, कैसा देवत भजना।
अब[3] जानें साचे स्वामी जिनराज अन्य परिहरना।
दोष रहित सरवज्ञ[4] जिनोत्तम वीतराग अनुसरना।
जाको वानी[5] सुणि[6] भवि जानी जीवाजीव विवरना।
षट चालीस गुणनि करि मडित सक्र परै निति[7] चरना।
'पारस' प्रभु चिंतामणि पाये ये ही रहौ मम सरना।

---

१९२ प्रति 'त' एव 'न'—गावा। २ प्रति 'अ'—महाका।
३. प्रति 'अ'—समझ्यो। ४. प्रति 'अ'—मिथ्या।
५ प्रति 'त'—तुम ढिग चाहू और न भावू।

१९३ १ प्रति 'अ'— भजना। २ प्रति 'अ'—समझे।
३. प्रति 'अ'—अब। ४ प्रति 'अ'—सर्वज्ञ।
५ प्रति 'अ'—वानी। ६ प्रति 'अ'—सुनि।
७. प्रति 'अ'—नित।

राग सोरठ, गुम्फाभ

(१९४)

अब[1] कहा रोवै रे भाई।

असुभ करम रस भोग तै कहा रोवै रे भाई ।।टेक।।

पैली हसि हसि बंध किये तै काणि रखी कछु[2] नायी[3]।

श्री गुरु भाषित पंथ गह्यो नहिं, पाप करत न अघायी[4]।

पाप नाम नरपति के किंकर, विसन सात दुषदायी[5]।

नरक नगर मैं वास[6] करावै, संग तजो इन भाई।

चउ कषाय दुरगति की पोरी, इन तै दूर रहायी[7]।

वीतराग उपदेस धारि उर स्वपर भेद दरसायी[8]।

सुष[9] दुष[10] पाप राग रिस[11] तजिये जिनवर सिक्षा पायी।

'पारस' राग द्वेष तजिबे[12] तै होवैगो शिवरायी[13]।

राग सारंग की होली

(१९५)

निति ध्यायो करि जिन जासू शिव[1] पासी ।।टेक।।

अष्ट करम के बंधन[2] तेरै आपै ही पुलता जासी।

ध्यान किया निज रूप लषावै, स्वर्ग सपदा होय दासी।

---

१९४ १. प्रति 'अ'—'अब' का लोप। २ प्रति 'अ'—कछू।
३ प्रति 'त' एव 'न'—नाई। ४ प्रति 'त' एव 'न'—अघाई।
५. प्रति 'अ'—दुखदायी। ६. प्रति 'अ'—वास।
७-८ प्रति 'अ'—रहाई, दरसाई, ९-१० प्रति 'अ'—सुख, दुख।
११ प्रति 'अ'—रिष। १२ प्रति 'अ'—तजिवे।
१३ प्रति 'अ'—शिवराई।

जिन ध्यावै सो शिव[3] सुष[4] पावैं, आगम मैं सतगुरु[5] गासी।
'पारस' ध्यान कियो तिनके उर ग्यान[6] जोति परगट भासी।

सारंग की होरी

(१९६)

जीया काहे कू विसन मघ आयो छै।।टेक।।[1]
जूवा तै पाडव अति जोद्धा राज आपको ठिगायो छै।
मास षाय[2] वकराय[3] बिनठ्यो,[4] निश्चय राज गमायो छै।
मदिरापान दोस जादव सुत नगर कुटंव जरायो छै।
बेस्या[5] बसि[6] होय चारूदत्त जी विष्टा करि लपटायो छै।
बिसन[7] सिकार दोस करि जग मैं व्रह्मदत्त पछितायो छै।
चोरी तै शिवभूति द्विजोत्तम कुमरण करि भरमायो छै।
पर तिय राच्या[8] रावण भूपति, दोंजग[9] मै दुष पायो छै।
असे विसन जाणि तजि 'पारस' तव[10] तू उत्तम गायो छै।

१९५, १ प्रति 'अ'—सिव। २ प्रति 'अ'—वघन।
३ प्रति 'अ'—सिव। ४ प्रति 'अ'—सुख।
५ प्रति 'त'—सतगुर। ६ प्रति 'अ'—ज्ञान।

१९६ १ प्रति 'अ'—मे यह पक्ति नहीं है। २ प्रति 'अ'—षाय।
३. प्रति 'अ'—वकराय। ४ प्रति 'अ'—विणठ्यो।
५. प्रति 'त' एव 'न'—वेसा। ६. प्रति 'अ'—वसि।
७ प्रति 'अ' एव 'न'—विसन ८ प्रति 'अ' एव 'त'—राच्यो।
९ प्रति 'अ'—एव 'त'—दोजुग। १० प्रति 'अ'—तव।

राग सारंग की होरी

(१९७)

कित उरझे स्याम योगिन[1] मैं।
हू[2] तौ ढूढ[3] फिरी सेसावन मैं ॥टेक॥
असा जतन कोयी[4] मोहे वतावो जो पीया[5] आवै आगन[6] मैं।
जै कोयी ल्यावे तौ मैं जान न द्यू गो,[7] प्रीति घणी मेरा मन मैं।
पार्श्वदास पिय के रग रचि कै सगि रहूगी विजान[8] मैं।

राग सारंग की होरी

(१९८)

ध्यान धरत हू[1] जिनवर को, दुखहर[2] को ॥टेक॥
जाके वचन सुनत पद पायो, पदमावति[3] धरणीधर[4] को।
सहज जीभ करि फणपति बरनत[5] पार न पावे गुणधर को।
कृपा धारि[6] त्यारो प्रभु 'पारस' अरज करत हू कोन वर को।

काफी की होरी तितालो

(१९९)

होरी को पिलय्या[1] स्याम मेरे द्वारे ही आयो ॥टेक॥
चोहा चदन और अरगजा[2] पिचकारन भर छायो।
सेसावन की सघन कुज कू पशुवन रव सुनि ध्यायो।

---

१९७ १ प्रति 'अ'—जोगिन। २ प्रति 'अ'—हू।
३ प्रति 'अ'—ढूढि। ४ प्रति 'अ'—कोई।
५ प्रति 'त'—एव 'न'—पिया। ६ प्रति 'त' एव 'न' अगन।
७ प्रति 'अ'—द्योगी। ८ प्रति 'त'—विपन।

१९८ १ प्रति 'अ'—हू। २ प्रति 'अ'—अघहर।
३ प्रति 'अ'—पदमावती। ४ प्रति 'अ'—धरनीधर।
५ प्रति 'अ'—वरणत। ६ प्रति 'त'—राखि।

सजम धारि गह्यो सुद्धातम मुक्ति त्रिया सगि थायो।
'पारस' धन्नि पिया सगि रजमति तप करि सुरपद पायो।

राग काफी की होरी

(२००)

मो सैं प्रीति प्रभू जी नैं तोरी,
एहो[1] ना जानू बिलमाये[2] कोन ।।टेक।।
हरिषित[3] चित मम द्वार पधारे, फिर कैं चले गिर ओरी[4]।
वाही के सग मेरो चित है सजनी दरस चहू[5] उन को री।
पार्श्वदास पिय[6] के रग रचि कैं त्यागूगी बुधि भोरी।

काफी की होरी ताल १

(२०१)

जिन राज विना दुष कोन हरे ससार भ्रमन को ।।टेक।।
सकल जीव वसि कर्म रुलत है डुलत चतुर्गति माय।
सहै दुख[1] जन्म मरण को।
पुण्य[2] उदै मानुष कुल उत्तम, पाय न रहौ प्रमाद,
गहौ जिन चरन सरन को।

---

१९९ १ प्रति 'अ'—पिलैया। २ प्रति 'अ'—अ कचा।

२०० . १ प्रति 'अ'—'ए हो' शब्दो का लोप। २ प्रति 'त'—भरमाये। ३ प्रति 'अ'—हरपत। ४ प्रति 'अ'—औगी। ५ प्रति 'अ'—चवू। ६ प्रति 'अ'—पीव।

पसु पछी लहि सरन भये सुर, क्यो न लहे श्रद्धान,
सहित नर मुक्ति गमन को[3]।
पार्श्वदास जाचत त्रभुवन पति निस दिन दीजिये[4] नाथ,
मोहि तुम सरन चरन को।

काफी की होरी

(२०२)

सषी री मो पै रग न डारो, मैं तो नेम पिया सगि राची ।।टेक।।
नेम पिया सगि होरी रचि कै तपति मिटावै सारी।
गिर परि जावै पिय[1] कू पावै, अनंत गुनन[2] को धारी।
ग्यान[3] गुलाल दया जल भरि कै ध्यान करू पिचकारी।
नेम चरन[4] पै जाय चलावू, मोक्ष लहू रिझवारी।
वा विना[5] अन्य सग न सुहावै, नवमा[6] भव सै[7] नारी।
पार्श्वदास दसवा भी भव मैं, कोनी तपस्या लारी[8]।

राग काफी

(२०३)

जिन ध्यावो जी आजि गावो प्रभू[1] के भजन।
जिन वचन[2] श्रवन या तै विनसत है भव उदधि भ्रमन[3] ।।टेक।।
जिन ध्यावै सो सुर पद पावै, क्रम तै करत वै[4] तो[5] मुक्ति गमन।

---

२०१ १ प्रति 'अ'—दुख। २. प्रति 'अ'—पुन्य।
३ प्रति 'अ'—कू। ४. प्रति 'त' एवं 'न'—दीजिए।

२०२ १ प्रति 'अ'—पिया। २. प्रति 'अ'—गुणनि।
३ प्रति 'अ'—ज्ञान। ४ प्रति 'अ'—चरण।
५. प्रति 'अ'—बिना। ६ प्रति 'अ'—नवमा।
७. प्रति 'त' और 'न'—की। ८. प्रति 'त'—सग तपस्या धारी।

जिन ध्यावै सो ही निज सुष पावै, उन तैं[1] चाहत मुक्ति रमन।
जिन ध्यावै सो धन्य जगत मैं, पारस उन कू करत नमन।

काफी की होरी

(२०४)

लिषि भेजो पत्र इम आली हमारी[1] ।।टेक।।
सिद्धि सिरी[2] के कारण[3] चाले विन लपि[4] वात[5] हमारी।
एक सदेह निवारण कीजे कोन चूक परि[6] त्यागी,
नाथ मैं तौ दासो तुमारी[7]।
पशुवन की तुम करुणा कीनी मेरी कछु न विचारी।
तुमरी कहाय कहावू कौन की, मोकूं भी लीजिये लारी।
वडी मोये[8] आस[9] तुमारी।
माता[10] शिवा पिता[11] समुदविजै भ्राता वलि कृष्ण विहारी।
और सकल तुम दरसन[12] चाहै,[13] राज करौ सुषकारी[14]।
हाल वय है लघु थारी।
ऐसी ही जो आप विचारी, सजम की विधि[15] धारी।
तौ हम हू सगि सजम धरिहै, 'पारस' सोभा भारी।
नाथ[16] सगि सोहै नारी।

---

२०३ १ प्रति 'अ'—प्रभु। २ प्रति 'अ'—वचन।
३ प्रति 'अ'—भमन। ४ प्रति 'अ'—वे।
५ प्रति 'अ'—तौ। ६ प्रति 'अ—तै।
२०४ १ प्रति 'त' एव 'न'—मे टेक छूट गई है। २ प्रति अ'—श्री।
३ प्रति 'अ'—कारिज।
४ प्रति 'अ'—लखि। ५ प्रति 'अ'—वात।
६ प्रति 'अ'—पर। ७ प्रति 'अ'—तिहारी।
८. प्रति 'अ'—मोय। ९ प्रति 'अ'—आसा।
१० प्रति 'अ'—सिवा। ११ प्रति 'त' एव 'न'—पित।
१२ प्रति 'अ'—दरसण। १३ प्रति 'अ'—चाहत।
१४ प्रति 'अ'—सुपकारी। १५ प्रति 'अ'—विधि।
१६ प्रति 'अ'—अपने पिया।

काफी की होरी

(२०५)

ध्यायो[1] रे जीया हो ध्यायो,
वीर जिनदा शिव[2] तिय वाला हो ॥टेक॥
सीस नमाया वारी सुष होहै[3] पूज्या[4] सुर पद तना।
करि सुचि हीया[5] हो ॥१॥
सुर पद कहा वारी शिवपुर पैहै निश्चय यह उर अना[6],
निज पद लीया[7] हो ॥२॥
बहु[8] तिर गया वारी साषि सुनैहैं त्रविधा,
पारस तना, गहिया हो ॥३॥

काफी की होरी

(२०६)

निज घर मैं निज रस चाषि रह्यो, सरधानी जीव रो ॥टेक॥
समता वनिता[1] सगि रमि रह्यो निज सुष[2] रग मैं छाकि रह्यो।
राग त्यागि सम सील भाव मय, परता कुलटा त्यागि गयो।
ज्ञे ज्ञायक सनमध[3] जाणि सब, पारस दिढ निज रूप गह्यो।

---

२०५ १ प्रति 'त'—प्रायो। २. प्रति 'अ'—सिव।
३ प्रति 'त' एव 'न'— ह्वै है। ४ प्रति 'अ'—पूज्या।
५, प्रति 'अ'—हिया। ६ प्रति 'अ'—आना।
७ प्रति 'त'—लीया। ८ प्रति अ'—वहु।

२०६ : १. प्रति 'अ' एव 'त'—वनिता। २ प्रति 'अ'—सुख।
३. प्रति 'अ'—सनवध।

काफी की होरी

(२०७)

निज रूप निहारा, भया उर माय उजारा[1] ।।टेक।।

दरसन[2] ज्ञान मयी चिनमूरति[3] सुप वीरज है अपारा।

राग द्वेष मद मोह न जामैं, नाही कर्म पसारा।

समता रमता दिमकला गमकला प्रभुता परम उदारा।

सपरस[4] रस और गंध वरन गुण[5] परजायन करि न्यारा।

अनादिकाल तै मिथ्यातम वसि निज पर भया न विचारा।

'पारस' जयवन्तो[6] जिन मत न्हो याही तै होत उधारा[7]।

राग सोरठ की होरी

(२०८)

अब[1] मैं जिनवर ओर पगी, म्हारो[2] तन मन अटायो री ।।टेक।।

वट मैं पशु रव स्वामि सुन्यो[3] सो ही उर विचि[4] पटक्यो री।

पल मैं आय ब्रह्मगिरि[5] सम्यो, गिर प्रति सटक्यो री।

वन मैं जाय ध्याय[6] सिद्धनि कू परिग्रह पटक्यो री।

'पारस' धन्नि[7] राजमति पिय[8] ढिग[9] निज सुप[10] गटक्यो री।

---

२०७ १ प्रति 'न' — अगम गुप उपजया भारा। २ प्रति 'अ'—दर्शन।
३ प्रति 'अ'—चनमूरति। ४. प्रति 'अ'—स्पपरस।
५ प्रति 'अ'—गय। ६ प्रति 'ग'—जैवन्तो।
७ प्रति 'त' एव 'न'—उजारा।

२०८ १ प्रति 'अ'—अब २. प्रति अ'—महारो।
३ प्रति 'अ'—सुन्यो। ४. प्रति 'अ'—विच।
५. प्रति 'अ'—ब्रह्मरिप। ६. प्रति 'अ'—नाय।
७ प्रति 'अ'—धन्य। ८ प्रति 'अ'—पिया।
९. प्रति 'अ'—मगि। १० प्रति 'अ'—सुस।

राग सोरठ

(२०९)

चेतन तू तो[1] चेति रे, क्यू अचेतन होवै रे ।।टेक।।
पर मे राच्यो तू अनादि को निज नही जोवै रे।
मिथ्या भाव मैल आतम कै क्यो[2] नही धोवै रे।
चिंतामणि सम निज अनुभव करि क्यो दिन षोवै[3] रे।
सम्यक गुरु दी पाय देसना,[4] मूरिष सोवै रे।
चेति फेर कब अवसर, जम तोय जोवै[5] रे।

राग कालिगड़ो की होरी

(२१०)

होरी को षिलय्या चेतन घर[1] आयो ।।टेक।।
आजि उजाडि[2] भयो कुमता घर[3] सुमता दिल सुष[4] पायो।
ग्यान[5] दान वैराग लिया संगि चारित मैं[6] उमगायो।
निज परणति सुभ रंग घुरायो, तामै चेतन छायो।
मिथ्या भाव मैल नहि जामैं ध्यान बसन[7] पहरायो।
'पारस' धन्य भयी[8] ये होरी, निज सपति दरसायो।

---

२०९ १ प्रति 'अ'—तौ। २ प्रति 'अ'—क्यू।
३ प्रति 'अ'—खोवै। ४ प्रति 'अ'—देसना।
५ प्रति 'अ'—तोवै।

२१० १,३ प्रति 'अ'—घरि। २ प्रति 'अ'—उजाड।
४ प्रति 'अ'—सुख। ५ प्रति 'अ'—ज्ञान।
६ प्रति 'अ'—पै। ७ प्रति 'त' एव 'अ'—वसन।
८ प्रति 'अ'—भई।

कालिगड़ो की होरी

(२११)

श्री गुरु पेलें[1] होरी रं भव[2] ताप मिटावें ।।टेक।।
सम्यक ज्ञान गुलाल दया जल समता पिचकी वावें रे।
निज परणति रग माय रगीले शिव तिय पं उमगावें रे।
आगम फाग माय अति प्रीता, 'पारस' मस्तग नावें रे।

राग धमाल

(२१२)

म्हार होरी वसी तन मन मैं।
होरी पेलू साधर्मी जनन[2] मैं।
तत्व कथा सो गुलाल उछारू, वीचि[3] सभा के सजन मैं।
मिथ्या भाव मलिनता विनसी, करुणा जल के न्हवन मैं।
उज्जलता जव[4] होय वहुत[5] सो, कीरति होय वुवन[6] मैं।
'पारस' असो होरी पेलत, टारु सकल विघन मैं।

होरी आसावरी की

(२१३)

नेमीस्वर षेलें होरी सावरियो जादूपति ।।टेक।।
रजमति सी तिय छोरी, मुक्ति रमनि सू जोरी।
चले गिर ओरी।

---

२११ : १ प्रति 'अ'—पेले। २ प्रति 'अ'—भवा।
३ प्रति 'अ'—वावें।

२१२ : १,२ प्रति 'अ'—साधरमी जनन। ३. प्रति 'अ' एव 'त'—वीचि।
४,५,६ प्रति 'अ'—जव, वहुत, वुघन।

ध्यान के रग रंगो री, चारित संग लयो री,
वरी शिव गोरी ।
धन्य धन्य यह होरी पार्श्वदास उनको री,
तजी बुधि भोरी ।

राग झंझोटी की होरी

*(२१४)

गिर पै सची धूम मची है,
होरी षेलत जादूपति जिन ठाडो ॥टेक॥
रजमति सी तिय त्यागि दयी है,
सिव तिय हेत चल्यो गुण गाडो ॥१॥
पर परणति कू सगि न राषी,
निज परणति सषी कै सगि वाढो ॥२॥
सुकल ध्यान सुचि रग रगोलो,
नमत पार्श्व भवदधि तै काडो ॥३॥

राग काफी, तितालो

(२१५)

म्हे तौ थारा चरण उपासी, म्हानै त्यारो हो नाथ जी ॥टेक॥
हम है[1] पतित पतित पावन तुम, करुणा धर्म तिहारो ।
हम है भक्त[2] भक्त वच्छल तुम अपनो जानि उबारो[3] ।
चित निरोधि कै निज लै[4] लागे, कमठ कियो[5] अघ भारो ।
मन अडोल मेर सम कीनो, परम क्षमा[6] उर धारो ।

---

*यह पद केवल प्रति 'अ' में है ।

अजन को अघ भजन कीनो, वारिषेण दुष टारो।
मर्कट स्वान सुरग[7] सुष[8] थायो, अब[9] कै हमारो है वारो[10]।
मिथ्यातम मम गयो है अनादी, सम्यक भयो है उजारो।
पार्श्वदास चरनन रो चेरो आवागमन[11] निवारो।

राग काफी

(२१६)

सो प्रभू विरले ही नर पावै।
जाकू ज्ञान जोति श्रुत गावै[1] ।।टेक।।
केवू गिरि कानन मैं पैठे केवू भसम रमावै।
केवू जग्य होम तर्पण तिलकादिक तैं शिव चावै।
केवू गावै तूर वजावै, मन माहीं[2] उमगावै।
केवू देव पूजि करि जग मैं नाम करम करवावैं।
वाहिर कृयाकाड[3] कीये[4] तै[5] पर ही पर दरसावै।
अंतर सुद्ध[6] किये विन सब ही थोथा उडि उडि जावै।
सपरस कीयें हाति[7] न आवै, नैनन तै न लषावै।
'पारस' देषन जानन हारो, ताही कू सिर नावै।

---

२१५ १ प्रति 'अ'—है। २ प्रति 'अ'—भक्ति।
३ प्रति 'अ'—उवारो। ४ प्रति 'अ'—लो।
५ प्रति 'अ'—कीयो। ६ प्रति 'अ'—क्षमा।
७ प्रति 'अ'—स्वग। ८ प्रति 'अ'—सुख।
९,१० प्रति 'अ'—अव, वारो। ११ प्रति 'अ'—आवागवन।

२१६ १ प्रति 'अ'—गावे। २ प्रति 'अ'—मैं।
३ प्रति 'अ'—काडक्रिया। ४ प्रति 'अ'—करवे।
५ प्रति 'अ'—तै। ६ प्रति 'अ'—शुद्ध।
७ प्रति 'अ'—हाथि।

राग काफी

(२१७)

पारसनाथ सुनो बिनती मोरी, यह[1] वरदान दया करि पावू ।।टेक।।
प्रात सेज तजि सुमरि तोय कू तन सुचि करि धरि बसन सुआवू ।
सुवरण[2] कलस धारि सिर ऊपरि,[3] जल करि न्हवन करावू ।
रोग सोग आरति विस्मय सब,[4] मेटू भव वन[5] भ्रमण हटावू ।
चरण कमल जल के सपरस तै, तन मैं रोग एक नहिं पावू ।
अष्ट द्रव्य करि पूजन करिहू, सुर पद पाय मिनष मैं आवू ।
तुम ढिग आव धारि मुनि के व्रत, सुद्ध रूप मेरौ मैं ध्यावू ।
'पारसदास' तुमारो दास होय अब[6] मैं दास कोन[7] को कहावू ।
सब दुष मेटि करो तुम सम ज्यू जन्म मरण के दुष[8] मिटावू ।

काफी मैं वधायी

(२१८)

आजि वधायो अजोध्या नगर मैं,
चलो री मिलि मगल गावै ।।टेक।।
प्रगटे वृषभ जगभान नाभि घर लखि[1] सुरपति से नृत्य रचावै ।
साढा[2] बारा कोडि जाति के वाजा बाजत[3] एक लय लावै ।
घर घर बधत माल मोतियदी, और मुतियन[4] तै चौक पुरावै ।
दान किम छक देत नाभि नृप, तन मन लषत हरष नहिं मावै ।

---

२१७ : १ प्रति 'अ'—ये । २ प्रति 'त'—सुवण ।
३ प्रति 'त'—उपरि । ४ प्रति 'अ'—सव ।
५ प्रति अ'—वन । ६ प्रति 'अ'—अव ।
७. प्रति 'अ'—कौंन । ८ प्रति 'अ'—दुप ।

धन्य भाग्य[5] मोरादेवी मात को, तीन लोक प्रभु कू उपजावैं।
सो उच्छव[6] जन्माभिषेक[7] को, 'पारस' देषे ही बनि[8] आवैं।

*(२१९)

मोकू नाथ दीजिए तेरा पथ जिनचंद ।।टेक।।
इद नरेद षगेद गनेद फनेद चहत जो अमद।
रत्नत्रय मय प्रगटे लिषत ऋपि गहत गृही रु मुनिद।
निश्चय अरु व्यवहार रूपमय सुगम कठिन सुषकद।
'पारस' तुम सेवाफल जाचत पावू पद न सुरेद।
या तें चउ गति दुषमय ससृति के कटिहै भवुफंद।

*(२२०)

मोह तम ह्या सैं उडि जाना।
सम्य ज्ञान दिवाकर मम उर प्रगट्यो तजि थाना।
बीतराग सर्वज्ञ देव जिन निश्चै ठहराना।
गुरु निरग्रथ दयामय वृष, लषि दृढता करि माना।
जीव चेतनामय अजीव जड सप्त तत्व आना।
दरसन ज्ञान चरणमय शिवपथ, या विन उरझाना।
तुम परसाद किये परिवर्तन अत नही पाना।
'पारस' प्रभु पद पकज सेय अब दुठ तोहे पहचाना।

---

२१८ १ प्रति 'अ'—लषि। २. प्रति 'अ'—साडा।
३ प्रति 'अ'—वज्त। ४ प्रति अ'—मोतियन।
५ प्रति 'अ'—भाग। ६. प्रति 'त'—उच्छ।
७. प्रति 'अ'—जन्माभिसेक। ८ प्रति 'अ'—वनि।

*यह पद प्रति 'त' मे नही है।

*यह पद प्रति 'त' मे नहीं है।

*(२२१)

सुने हम बैन श्री गुरु ज्ञानी सैं ।।टेक।।
सब तत्वनि मैं सार है जो आतमा ज्यो मुष ऊपरि नैन।
याहि लषैं सब ही लषैं जी, या विन नही सुष चैन।
याकी महिमा को कहैं जी, जाकू ध्यावत मुनि दिन रैन।
'पारस' ध्यावो तास कू जी, पावो शिव भाषो बच जैंन।

राग आसावरी

(२२२)

धनि मुनि जिन की लगी लौ[1] शिव और नं[2] ।।टेक।।
पंचेद्रिय विषयन कू तजि कै वसि कीयो चित चोर नैं।
बाहिर कृयाकाड नही चूकत आराधत[3] तप घोर नैं।
रतनत्रय दश लक्षण धन करि, साधत निज बल[4] जोर नैं।
'पारस' धरि करुणा समझावत[5] ससारी जिय[6] ढोर नैं।

(२२३)

साधरमी सतसंग ही दुल्लभ ससार ।।टेक।।
तत्वारथ कथनी करैं विकथा[1] न लगार।
निज पर द्रव्य विचार मैं इनको अधिकार।
मिथ्या अलट मिटाय दे करिहै निरधार।
जैसे भानु प्रकास तें नसिहै अंधकार।

---

*यह पद प्रति 'त' मे नही है।

२२२ १ प्रति 'अ'—लौं। २. प्रति 'त' – नैं।
३ प्रति 'त'—आराध। ४. प्रति 'अ'—वल।
५ प्रति 'त' एवं 'न'—समुझावत। ६ प्रति 'अ'—जीय।

सार ग्रंथ नाटक कथा ये अमृतसार।
पीवै और फुनि पायइं करि करुणा[2] सार।
और जिते परसंग हो वांच कुगति मझार।
'पारस' तारनहार है सतगुरु विचार[3]।

राग आसावरी

(२२४)

जिन जी का भजन करि ये ग्यानी[1] ॥टेक॥
जिन जपिया[2] तिन निज गुण[3] लहिया जिन[4] न जप्या तिन कै हानी।
आतमरूप सुधारन[5] जिनतें प्रतिमा प्रतिष्ठा जानी[6]।
जिनदेवन के भजत[7] मिटै दुख शान्ति[8] रूप शिव[9] सुखदानी।
'पारस' दास भजन है यातें चाहै निज पद सुखदानी[10]।

(२२५)

कोयो नहीं जानै शुभाशुभ चाल[1] ॥टेक॥
आदीसुर[2] कू भोजन काल, बाहु[3] कियो चक्री बेहाल[4]।
चक्रीसुत चालै बेचाल,[5] मेघेस्वर[6] की कीरति भाल।
बडे भ्रात रघुपति वनपाल,[7] भरत विरक्त[8] भये भूपाल।

---

२२३ १. प्रति 'अ' एवं 'न'—विकथा। २ प्रति 'अ'—करुणा।
३ प्रति 'न' मे अन्तिम दो पंक्तिया नही है।

२२४ १ प्रति 'अ'—ज्ञानी। २ प्रति 'अ'—जजिया।
३ प्रति 'अ'—सुख। ४ प्रति 'अ'—जे न।
५ प्रति 'अ'—सुधारण। ६ प्रति 'अ'—जानी।
७ प्रति 'अ'—भजन तैं। ८-९ प्रति 'अ'—सान्ति, सिव।
१० प्रति 'अ'—सुखखानी।

दुरजन तौ भूलै सुषपाल,[९] सज्जन कू करिहै पैमाल।
श्रेणिक से श्रोता सुबिसाल,[१०] तिन को होवै इस विधि काल।
अब[११] काटिहै[१२] करम[१३] को जाल, मस्तग रहो पारस
प्रतिपाल।

राग आसावरी

(२२६)

वचन सुनो अनगार के इन ही मैं सार।।टेक।।
जनम मरण पाये घने तिनको नहिं पार।
मिथ्या भेषी बहू[१] मिले न मिले अनगार।
कवु[२] न मिली सुभ देसना, सुष[३] को आधार।
धन्य भाग्य[४] अब[५] ही भयो, मिलियो श्रुत सार।
हित अनहित समझ्या[६] विना, नमिये[७] जु अपार।
निश्चय सो समुझायसी,[८] श्रुत ही आधार।
जग मंदिर मैं जोति हैं बीतराग[९] बच[१०] सार।
'पारस' इनहो कू चहै, शिव के दातार।

---

२२५ १ प्रति 'अ'—टेक मे करमा हू दी चाल' प्रक्षिप्त है। २. प्रति 'अ'—आदीश्वर। ३ प्रति 'अ'—वाहु। ४ प्रति 'अ' - वेहाल। ५. प्रति 'अ'—वेचाल। ६. प्रति 'अ'—मेघेसुर। ७,८ प्रति 'अ'—वनपाल, विरक्त। ९ प्रति 'अ—सुखपाल। १०. प्रति 'अ'—सुविसाल। ११ प्रति 'अ'—अव। १२ प्रति 'त' एव 'न'—काटि हूं।' १३. प्रति 'अ'—कर्म।

२२६ १. प्रति 'अ'—वहु। २. प्रति 'त'—कहु। ३ प्रति 'अ'—सुख। ४. प्रति 'अ'—भाग। ५. प्रति 'अ'—अव। ६. प्रति 'अ'—समझ्या। ७. प्रति 'त' एव 'न'—अमियें। ८ प्रति 'अ'—समझावसी। ९,१० प्रति 'अ'—वीतराग, वच।

राग आसावरी

(२२७)

सुनि लै र[1] महरम तेरा जो हित दो वतिया ।।टेक।।

भोत काल विषयन सगि षोयो, अब तौ[2] छाडो[3] ये लतिया।

सग दोस[4] ते निज गुण भूले, भ्रष्ट भयी है[5] मतिया।

जिनवर भायित धर्म गहौ रे, ज्यू पावो सुभ गतिया।

दुरलभ[6] अवसर[7] पाय कै[8] रे भजि पारस दिन रतिया[9]।

राग वरवो

(२२८)

नेम पिया की संग मात मोहे[1] जाने दे री ।।टेक।।

असन न भावै वसन[2] न सुहावै, भावै दरस अभग।

गिरवर जावू पिया कू पावू, राचूगी वाही कै रग।

'पारस' घनि रजमति या बय[3] मैं, षड्यो[4] चंड अनग।

---

२२७. १ प्रति 'अ'—र। २ प्रति 'अ'—तो।
३. प्रति 'अ'—तजो। ४ प्रति 'त'—दोष।
५ प्रति 'त'—सु ६ प्रति 'अ'—दुर्लभ।
७ प्रति 'अ'—अवसर। ८ प्रति 'अ'—कै।
९ प्रति 'अ'—सभी तुकान्त शब्दों 'रतिया' आदि मे अनुनासिकता का लोप है।

१ प्रति 'अ'—मोये। २ प्रति 'अ'—वसन।
३ प्रति 'अ'—वय। ४. खड्यो।

राग माढ़, आसावरी

(२२९)

सय्या[1] जू[2] हमारे दीक्षा लै गये क्यू करि रहू जी घर माय ।।टेक।।
मात पिता सू रजमति[3] बीनवें[4] सीष दिवावो सजम काज ।
यो ससार असार है यामैं सार कछु[5] नाय ।
देह रोग को गेह है यामैं नेह किम काज ।
बिनसत[6] बार[7] लगै[8] नही काचा घट उनिहार ।
भोग सरप[9] के भोग से धर्म बिनासनहार ।
देत भ्रमण दुरगति विषै 'पारस' तप एक सार ।

अलय्या बिलावल

(२३०)

जाचतु है हम श्री जिन नायक ।
अन्य कुदेव[1] न[2] देनें लायक ।।टेक।।
ज्ञानाबरणादिक दुखदायक,
इन कू जड तै आप नसायक,
पर परणति तै भ्रमत जीव जग,
सो मेटो आये तुम पायक ।
अष्ट द्रव्य प्राश्रुक ले पूजू,
अष्ट कर्म[3] नासन जगज्ञायक[4] ।

---

२२९ १ प्रति 'त'—सया । २. प्रति 'अ'—जु ।
३ प्रति 'अ'—रजमत । ४ प्रति 'अ'—विनवै ।
५. प्रति 'अ'—कछू । ६,७. प्रति 'अ'—विनसत वार
८ प्रति 'अ'—लगै । ९ प्रति 'अ'—सरम ।

का पै जावू तुमरो कहायक।
तुम सो करि सुनि 'पारस' बायक।

राग सारंग

(२३१)

अरज सुनो[1] जो महाराज हो जी जिनराज[2],
तुम विन[3] कोन[4] सुनें जी म्हारी ।।टेक।।
अनादि काल तें भौत[5] भ्रमै[6] हम, ना जान्यो[7] हित काज।
देव जानि वहुतेरे पूजे तिन मैं तुम सिरताज।
यातें अरज करूं तुम ही तें, औसर मिलियो आज।
अनत चतुष्टय युक्त[8] ज्ञान घन भवदधि तरन जिहाज।
मुक्तिमार्ग[9] रतन त्रय भाष्यो, सो तो कठिन इलाज।
हीणशक्ति सहनन हीण मम क्यू करि वनत समाज।
पुण्य उदै तुम भक्ति मिली[10] मम ससारा बुधि पाज।
या दृढ होहु कृपानिधि जौ लू, पावू शिवपुर राज।
तुम त्रलोकपति सुरनर मुनि नुत हौ[11] सबके अधिराज।
'पारस' दास कहा कैं पर कूं[12] सेवत आवै लाज।।

---

२३० १. प्रति 'अ'—देव। २ प्रति 'अ'—नहिं।
३ प्रति 'त'—द्रव्य। ४ प्रति 'त'—जगनायक।

२३१ १. प्रति 'अ'—सुनो। २ प्रति 'अ'—'हो जी जिनराज' की पुनरावृति।
३ प्रति 'अ'—विन।
४. प्रति 'अ'—कोनं। ५ प्रति 'अ'—भोत।
६ प्रति 'अ'—भ्रमे। ७. प्रति 'अ'—जान्यो।
८ प्रति 'अ'—जुक्त ९ प्रति 'त'—भक्ति मार्ग।
१०. प्रति 'अ'—मिलि। ११ प्रति 'अ'—तुम।
१२. प्रति 'अ'—कै।

राग सारंग

(२३२)

हा रै तोये वरज वारूवार रै विसन[1] मघ मति नै जाय ।।टेक।।
दुरगति दुख सहे इन सेती हाय हाय बिललाय[2] ।
अति दुल्लभ मानुष भव पायो करि[3] कछु सुगति उपाय ।
करि अनीति रावण 'रघुपति सू नरक माय पछिताय ।
तप व्रत कीना[4] राम ज्यानकी, मुक्ति सुरग मै थाय ।
दोन्यू भव इन सेती विगडै तन धन धरम पलाय ।
'पारस' तजो संग विसनी[5] को तप धारो शिवदाय[6] ।

राग धानी

(२३३)

जिनवानी[1] मो मन भावै, या ससय तिमिर मिटावै जी ।।टेक।।
नव तत्त्वनि की समझि करावै, स्वपर भेद दरसावै ।
मिथ्या अलट मिटावण कारन स्यादवादमय थावै ।
चंद्रभानुमणि नांहि पठंतर वाहिर तिमर मिटावै ।
बाह्य[2] अभ्यतर मेटै वाणी तीन लोक सिर नावै ।
तप व्रत सजम यामैं गर्भित श्री गुरु[3] श्रुत मैं गावै ।
या विन दूजो शिव[4] पथ नाई,[5] यातै सुभ गति पावै ।

---

२३२ १ प्रति 'अ'—विसन । २ प्रति 'अ' एवं 'त'—विललाय ।
३ प्रति 'अ'—'करि' का लोप । ४ प्रति 'अ'—कीना
५. प्रति 'अ'—विसनी । ६ प्रति 'अ'—सिवदाय ।

रत्नत्रय याही तै मिलिहै, या बिन[6] नहिं उपजावै।
'पारस' जौलू शिव[7] नहिं होहै[8] उर तिष्टो या चावै।

राग धानी

(२३४)

श्री चिमतकार जिन ध्यावै सो मन वंछित सिद्धि पावै ।।टेक।।
आधि व्याधि सुमरण तै नसिहै दुष दरिद्र विनसावै।
सुष सपति सहजा ही[1] थावै, सुर धरि गुण गण गावै।
माधोपुर ढिग एक कोस पै,[2] आलणपुर दरसावै।
पौण छतीसू के नर नारी, जात करण उमगावै।
देस देस के[3] जात्री आवै, दरसण करि सुष[4] पावै।
महिमा[5] वचन अगोचर जिनकी मुष[6] तै कहिय न जावै।
सवत उगणीसै[7] रु वीस को सस्कृत पूज[8] रचायो।
वुदि वैसाष अष्टमी 'पारस', जात्रा करण[9] आयो।

---

२३३ १ प्रति 'अ'—वानी। २ प्रति 'अ'—वाह्य।
३ प्रति 'त' एव 'न'—गुर। ४. प्रति 'अ'—सिव।
५ प्रति अ'—नायी। ६ प्रति 'त'—विन।
७ प्रति 'अ'—सिव। ८ प्रति 'अ'—होवै।

२३४ १ प्रति 'अ'—यी। २ प्रति 'अ'—पं।
३ प्रति 'अ'—सू। ४ प्रति 'त'—सुख।
५ प्रति 'अ'—महिमा। ६ प्रति 'अ'—मुख।
७ प्रति 'अ'—उनीसै। ८ प्रति 'अ'—पूजा।
९ प्रति 'अ'—करणे।

लोकगीत की चाल मैं

(२३५)

निति ध्यावू[1] हो सावरा थारी बानी,[2]
शिव मघ की दरसानी ।।टेक।।
साषि सुनि जगतरन तारनी भबि जन कू सुष[3] षानी।
स्यादवाद निरवाघ अन्य तै निज सपति की दानी।
आपा पर को भेद लषावं, करै असुभ की हानी।
निज रस पुष्ट करत या बानी,[4] दया बेलि[5] नही[6] छानी[7]।
'पारस' तुम प्रसाद जाचत उर, वानी हो शिव[8] थानी।

करहा की चाल मैं

(२३६)

जियरा रै श्री गुर सीष सम्हारि ।।टेक।।
अनादिकाल को मोहनी रै जीया निज पद दीयो रै भुलाय।
विषय कषाय कुफासि[1] मैं रै जीया निरदय[2] दीयो रै फसाय।
मात तात सुत मुतलबी[3] रै जीया उदयाधीन बिचारि[4]।
बिन[5] मुतलब[6] जग बंधु[7] है गुरु[8] करुणानिधि सुषकारि[9]।
जा मैं दुष[10] सुष[11] ल्हेस नही रै जीया तामैं रह्यो रे लुभाय।
दु ष नाहि सुष षानि है रै जीया, तो कू[12] सो सुधि नाय।
विषय भोग बहु[13] सुरग[14] मैं रै जीया, भोग बार[15] अनत।
या भव मैं सजम बडो[16] रै, जीया धारै पुरष[17] महंत।

---

२३५ १ प्रति 'त' एव 'न'—ध्यावू। २ प्रति 'अ'—वानी।
३ प्रति 'अ'—मुख। ४ प्रति 'अ'—वानी।
५. प्रति 'अ'—वेलि। ६ प्रति 'अ'—नहिं।
७. प्रति 'अ'—छानी। ८. प्रति 'अ'—सिव।

इन्द्र[18] चहै या लोक कू रै जीया, सजम कारण एक।
'पारस' पायो सहज मै रै जीया, सो धारो तजि टेक।

करहा की चाल मैं

(२३७)

जियरा रे जिन वाणी उर धारि ।।टेक।।
मोह नासि[1] सम्यक्त कू[2] रै जीया प्रगट करै उरमाय[3]।
सुषकारी[4] माता भली रै जीया जिन बानी[5] अवगाहि[6]।
हित समझ्यो तू अहित कू रै जीया हित की नाहि पिछाणि।
पुण्य उदै पायो भलो रै जिया सो समझाव वाणि।
करत इद अहमिदया रै जीया चक्रवर्ति[7] सुषवान[8]।
वानी[9] कल्प लता भली रै जीया चाहै सो दे दान।
साचो[10] सुष सो मुक्ति मैं रे जीया अबिनासी[11] अविकार[12]।
ताहि[13] लषावै भगवती रै जीया 'पारस' तारनहार।

---

२३६ . १ प्रति 'अ' – कुफामि। २ प्रति 'अ' - निरदयी।
३ प्रति 'अ'—मुतलवी। ४ प्रति 'अ'—विचारि।
५ प्रति 'अ'—विन। ६,७ प्रति 'अ'—मुनलव, वधु।
८ प्रति 'त' एव 'न'—गुर। ९ प्रति 'अ'—सुखवान।
१०,११. प्रति 'अ'—दुख, मुख। १२ प्रति 'अ'—कूं।
१३ प्रति 'अ'—वहु। १४ प्रति 'त'—स्वर्ग।
१५. प्रति 'अ'—वार। १६ प्रति 'अ'—वडो।
१७ प्रति 'अ'—पुरुप। १८ प्रति 'त'—ईद।

२३७ : १ प्रति 'अ'—नासि। २ प्रति 'अ'—कू।
३. प्रति 'अ'—माय। ४. प्रति 'अ'—सुखकारी।
५. प्रति 'अ'—वाणी। ६ प्रति 'त'—अवगादि।
७ प्रति 'अ' एवं 'त'—चक्रवर्ति। ८. प्रति 'अ'—सुखवान।
९ प्रति 'अ'—वाणी। १० प्रति 'त'—साचो।
११ प्रति 'अ' एवं 'न'—अविनासी। १२ प्रति 'अ' एव 'न'—अविकार।
१३ प्रति 'अ'—ताय।

झूला की ढाल में

(२३८)

जीया रै जिन वाणी सुषदायनी[1] उर धारो हो।
जिन सूत्र[2] बिचारि[3] आन कथा दुषदायनी।
जीया रै सबर[4] निरजरा समझि समझि उरधारो हो।
हित रूप विचारि आश्रव बधन जानि कै इन[5] टारो हो।
जीया रै मुक्ति त्रिया की या जु[6] सषी उर जानो हो।
स्यादवादिनी[7] माय दोय तत्व परकासिनी निति ध्यावो हो।
जीया रै[8] मिथ्यातम कू चद जोति सम जानो हो।
आपा पर दरसाय हेयाहेय प्रकासिनी उर धारो हो।
जीया रै जिन मुष[9] पकज बासिनी[10] सुषषानी[11] हो।
'पारस' निति ध्याय भव समुद्र मैं नवका[12] सम जिन बाणी हो।

कलाली की चाल मैं

(२३९)

शिव तिय बाला[1] जिन जी नै जोवण दीज्यो हे ।।टेक।।
पूज्या सू होय सुख भारी, ये कुमता काली ये दुरगति हाली पूज्या सू
होय सुख भारी।[2]
भव भ्रमदानी तू न रहै[3] छै छानी।
अब तोहे[4] खूब पिछानी,[5] हे कुमता काली, ये दुरगति हाली
जिनजी नै जोवण दीज्यो हे ।।१।।

---

२३८ · १. प्रति 'अ' एव 'न'—सुखदायनी। २ प्रति 'त'—शूत्र।
३. प्रति 'अ'—विचारि। ४ प्रति 'अ' एव 'त'—सवर।
५ प्रति 'अ'—इनै। ६ प्रति 'अ'—जो।
७ प्रति 'त'—स्यादवादनी। ८ प्रति 'अ'—तै।
९. प्रति 'अ'—मुख। १० प्रति 'अ'—वासिनी।
११. प्रति 'अ'—सुखवानी। १२. प्रति 'त' एव 'न'—नोका।

भगनी तू मोह मिथ्यात की है सुमता[6] की सौकि वपानी ॥२॥
अव[7] सुमता रम चापियो ये त्यागो[8] थारो सग कुसगी ॥३॥
समता लषाया 'पारस' जिन लष्या है छाडी तोहे आजि कुसगी ।

रातीजगा का गीत मे

(२४०)

जीवा जी ये जागो जी जागो तो जगावू सुमति मषी रा महल मे ।
जागो जागो चेतन सुभट सुवीर ॥टेक॥
पैहेलै तो पैडे त्यागो कुगुरु कुदेव कू,
सातू ही विसन निवार[1] ।
दूजै तो पैडै जी ज्ञारा प्रतिमा[2] आचरो,
त्यागो जी असजम भाव ।
तीजै तो पैडै जी महाव्रत धरो समति गुपति दृढ[3] पालि ।
चौथै तो पैडै अप्रमत्त[4] दसा धरो, सब ही प्रमाद विडारि,
पचवै तो पैडै क्षपक श्रेणि चढो मोहनी कर्म, नसायजी[5] ।
छठै तो पैडो जी जोग निरोधि कै मुकति धरापति थाय ।
सतवे तो पैडै जी 'पारस' सिद्ध भया अविनासी सुप[7]पुज ।

---

२३९ १ प्रति 'अ'—वारा । २ प्रति 'त' मे यह पक्ति नही है ।
३ प्रति 'त'—रही । ४ प्रति 'अ'—तोयै ।
५ प्रति 'अ'—पिछा । ६. प्रति 'त'—समता ।
७. प्रति 'अ'—अव । ८ प्रति 'अ'—त्याग्यो ।

२४० · १. प्रति 'अ'—निवारि । २ प्रति 'अ'—प्रतिमा ।
३. प्रति 'अ'—अय । ४ प्रति 'अ'—अपमत ।
५ प्रति 'अ'—मे यह पक्ति छूट गई है । ६ प्रति 'अ'—पचवै ।
७ प्रति 'अ'—सुख ।

राग सोरट, मलार

(२४१)

प्रभूजी नें जोवण चाला हे पूजन चाला हे तीन लोक[२] प्रतिपाल ।।टेक।।
वामादेवी[३] रा लाडिला हे अस्वसेन[४] जी रा नद।
जाकू पूजत है दुनी रै[५] ध्यावत है मुनि वृंद।
जा दरसन तै अघ नसैहै हे, भव भव के दुष दुद[६]।
आन देव उडगनि[७] विषै सोहत है पूनिमचद।
'पारस' मन बिचि धारि कै हे काटो भव के फद।

राग गौंड, मलार

(२४२)

श्रावक कू क्या क्या चय्ये, वैर विरोध नसय्ये
व्रत विन कैसे रहिये[१] भजि श्री अरहन सुनि लेहु सही[२] ।।टेक।।
हितू मितू रही साची बोलै[३] मुष[४] तै उर मै समुझै भायी।
श्री जिनेंद कू यादि करत रहै[५] नुति करिये गुरु पावक कू।
दान सील तप भावना भावै, सक्ति प्रमाण छिपावै नायी[६]।
प्रतिमा ग्यारह क्रम तै धारै, 'पारस'[७] स्वै दरसावक कू।

---

२४१ १. प्रति 'अ' मे प्रथम पक्ति मे 'जोवण चाला हे तथा 'तीन...... प्रतिपान' के मध्य मे 'पूजन चाला हे' लुप्त है।
२. प्रति 'त' मे 'लोक' के बाद 'के' प्रक्षिप्त है।
३. प्रति 'अ'—वामदेव जी।
४ प्रति 'अ'—विश्वसेन।
५ प्रनि 'अ'—है।
६ प्रति 'त'—द्वंद्व।
७. प्रति 'त'—उडगन।

२४२ · १ प्रति 'त' एव 'न'—रय्ये।
२. प्रति 'त'—सपी। प्रति 'न'—सयी।
३. प्रति 'अ'—वोलै।
४. प्रति 'अ'—मुख।
५ प्रति 'अ'—है।
६ प्रति 'अ'—नाही।
७. प्रति 'अ'—पार।

राग मलार

*(२४३)

मुनिवर वन मै हरसैं मेहरवा अहो वदरिया गरजि गरजि मायी
अति ही डरावै ।।टेक।।

घर गरजे घन वीज चिमक्कै, पिपिया पिय की टेर सुनावै।
कहा करू कित जावू सपी, इम कायर थरसैं। मुनि० ।।१।।
पवन झकोरै तरु टूटत है, गिरवर भूजुत घरसै
कप दिगवर ममता त्यागी पर सैं ।।२।।
तीनू रुति मैं सहत परीसह सह करम जरै ते जर सैं।
'पारस' उनके दरस कू करत हो उर मैं आनद वरसैं ।।३।।

राग सोरठ, मलार

(२४४)

हे सखी वन मे ठाडे धीर, मुनीस्वर जोवण चाला हे, मुनीश्वर
पूजण चाला हे[1] ।।टेक।।

कडकि कडकि करि विजुरी चिमकै, मूसलधारा नीर।
मिथ्यातम पोवण चाला।
उमडि घुमडि करि मेहा वरसै नहचल ठाडे वीर[2]।
दुकृतमल धोवण चाला।
'पार्श्वदास'[3] बाईस[4] परीसह सहत लहै नहि पीर।
मुकति तिय मोहण चाला।

---

*यह पद प्रति 'अ' मे नही है।

२४४ १ प्रति 'त' मे इसका पाठान्तर है—
सुपी वन में ठाडे धीर मुनास्वर पूजन चाला हे।
२ प्रति 'अ'—धीर। ३ प्रति 'अ'—पारसदास।
४ प्रति 'अ' एवं 'त'—बावीस।

राग सोरठ, मलार

(२४५)

प्रभूजी थारा दरसन रो म्हारै चाव ।।टेक।।
या दरसन तै मिटत मिथ्यातम प्रगट होत निज भाव।
स्व[1] पर भेद तब[2] ही नर पावत, ये[3] ही परम उछाव।
निजानद रस पीयतु ही तै[4] वमत अज्ञान कुभाव।
'पारस' फिरन भ्रमत चहु गति मैं असो दरस प्रभाव।

राग सोरठ, मलार

(२४६)

निरग्र थ जती उर भावै साचो शिव[1] पथ जचावै ।।टेक।।
विन निरग्रंथ साच कथनी कू चाहवान[2] किम पावै।
जोवे चाह निग्र थ दिगवर सो शिव[3] पथ दरसावै।
ज्यो कुलटा निज सुता पुत्रवधु[4] शुचि[5] मारिग न लगावै।
त्यो ही कुगुरु भेष के धारक सम्यक पथ न लखावै[6]।
रुधिर न धुपै रुधिर तै कवु ही जल तै रुधिर धुपावै।
या तै द्विविध[7] सग त्यागी रागादिक मैल जरावै।
आपहि विषय कषाय न त्यागै[8] पर कू कहा तजावै।
'पारसदास' दिगवर गुरु को कुगुरुन कू नहि नावै।

---

२४५ : १ प्रति 'अ'—सु। २. प्रति 'अ'—तव।
३. प्रति 'अ'—वो। ४ प्रति 'त' -तें।

२४६ १. प्रति 'अ'—सिव। २ प्रति 'त'—आशाधर।
३ प्रति 'अ'—सिव। ४ प्रति 'अ'—पुत्रवधू।
५ प्रति 'अ'—सुचि। ६. प्रति 'त'—लगावै।
७ प्रति 'अ'— द्विविध। ८ प्रति 'अ'— त्यागै।

राग राति की पूरियां में, धीमो तितालो

(२४७)

सुघर मना गावो सब मिल[1] बिश्वसेन सुत प्यारो ।।टेक।।
चिर, चिर जीवो माय वामा[2] को नदन, जौ लौ धरन ध्रुवतारो ।
निति प्रति ध्यावो ताय काटै सौ फदन, पावो अनतो सुष[3] भारो ।
थिर चित मन कू ल्याय 'पारस' बदन, कीजे विघन[4] हरै थारो ।

राग देवगिरी

(२४८)

पिया सै री[1] जाय असै कहना[2] हो ।।टेक।।
मोसी तिया[3] तुम त्यागि कै प्रीतम किन कू करि लीना अपना जाय ।
मुक्ति त्रया[4] सगि उमग तुमारै, या ही सै[5] गाहि लीनो सजम धाय ।
हमहू कू संगि लीजिये[6] प्रीतम, पारस गृह तजि देवू सेवू[7] पाय ।

(२४९)

कुमति री तू को परि करत गुमान ।।टेक।।
मोह करम की जायी गायी कलि जुग कियो है प्रधान ।
हिंसा माया भैण रु भ्राता राग दोष अभिमान ।

---

२४७ १. प्रति 'अ'—मिलि । २ प्रति 'अ'—वामा ।
३ प्रति 'अ'—सुख । ४ प्रति 'अ'—विघन।।

२४८ १. प्रति 'अ'—जी । २ प्रति 'त' मे "पिया ····कहना" के बाद "हो उनसे री जाय असै कहना" प्रक्षिप्त है ।
३. प्रति 'अ'—त्रिया ।
४ प्रति 'अ'—तिया ।
५ प्रति 'अ'—तै । ६ प्रति 'अ'—लिजिये ।
७ प्रति 'अ'—सेवू का लोप ।

क्रोध लोभ छल दंभ कटब करि वंध करात अमान।
सील सतोष विवेक ज्ञान सै वैर करत न अघान।
चेतन प्रभू कू कुगति अभावत दुष[1] दीये[2] अप्रमान।
पति कू दुख देवत न अघावत पाप करम की थान।
तेरै जोर हकार पुत्र को, मित्र विसन विषवान।
चौथै वारै तोये चेतन काढी, सुमता को सुण्यो सुज्ञान।
'पारस' जिन मत जाणि तजी तोय तेहु ते सुखवान।

राग गोपीचंद का दोहा मैं

(२५०)

श्री गुरु सिक्षा साभलो नवघा उर मायी ।।टेक।।
मुक्ति कामिनी सहजा[1] मिलसी, सुरग सपदा दासी।
सक्री चक्री सेवा करसी, तू सब[2] परि हो जासी।
कुगुरु कुदेव कुधर्म संग तजिहै,[3] निगोद दातार।
सात बिसन[4] मध तजो दूर[5] तै नरक नगर के द्वार।
पाच पाप दुगति[6] की पौरी, अभष[7] अन्याय चलासी।
इद्रया प्रवल हुयी दुष द्यासी, मारग[8] छुडवासी।
जिन मारग[9] किम पासी रै भया, समिति रीति विन चलिया।
तजि परमाद समिति गति चलिया, तिनै सिवापुर[10] मिलिया।
छ आवस्यक अवस्य ही पालो अष्मानादिक सात।
या विधि मूल गहे गुण मुनि के, पालै ते शिव जात[11]।
अट्ठाईस[12] मूल गुल पालो, सुषमय[13] सील सभालो।
सुनिये है दक्षण मैं अब भी[14] मुनि चारित को चालो।

---

*यह प्रति 'त' मे नहीं है।

२४९ · १. प्रति 'अ'—दुख। २ प्रति 'अ'—दीनै।

ह्या न वर्णं मुनि चरित तृदशविध, तौ अणुव्रत ही धारो।
स्वाध्याय मैं लीन रहौ, यू[15] पारस होय उधारो।

*(२५१)

कब[1] ग्रह तजि कै जाय विजन मे[2] मुनि होने की भावना मन मै ।।टेक।।
पर सबध[3] तजि रोकि चित्त निज रूप लीन रहू रति तजि तन मै।
आसन धारि अडोल चित्त ह्वै, सहू परीसह तीनू पन मैं।
मृग पसु[4] ठूठ जानि मोहि षुजिहै, मै न चिगू रहू ध्यान भवन[5] मै।
'पारस' तब[6] ही सफल जन्म सो करू प्रार्थना श्री जिनद[7] मै।

राग आसावरी

*(२५२)

भया तुम चोरी त्यागो जो, विन दया मति अनुरागो जो ।।टेक।।
पाच पाप कै मध्य विराजै, नाम सुन्या[1] सुधि भाजै।
हितू मिलापी लषि[2] करि[3] लाजै, सुष[4] सुपनै नहिं छाजै।

---

*यह पद प्रति 'त' मे नही है।

२५० १ प्रति 'अ' – सहज ही। २ प्रति 'अ'—सव।
३ प्रति 'अ'—'हरिहै'। ४ प्रति 'अ'—विसन।
५. प्रति 'अ'—दूरि। ६ प्रति 'अ'—दुर्गति।
७ प्रति 'न'—अभक्ष। ८,९. प्रति 'न'—मारिग।
१० प्रति 'न' –शिवापुर। ११. प्रति 'त' मे 'छ आवश्यक...... शिव जात' चरण नही है।
१२ प्रति 'अ'—अठाईस। १३ प्रति 'अ'—सुखमय। १४ प्रति 'अ'—श्रावकी।
१५ प्रति 'अ'—ज्यो।

*यह पद प्रति 'त' मे नही है।

२५१ : १ प्रति 'अ'—कव। २ प्रति 'अ'—'जाय विजन मैं' के स्थान पर केवल 'जावू'।
३. प्रति 'अ'—सवध। ४ प्रति 'न'—पशु। ५. प्रति 'न'—वसन।
६ प्रति 'अ'—तव। ७. प्रति 'अ'—जिनेंद।

राजा दडै, लोका मडै सज्जन पच विहंडै ।
पंच भेद जुत समझि तजो ज्यू पद्धति थारी मंडै ।
प्राण समान जाणि धन पर को, मति कोयी हरण विचारो ।
हिंसा तै भी अधिक पाप यह, भाषी श्री गणधारो ।
सत्यघोष[५] यातै दुख पाये, आषर कुगति डुलाये[६] ।
'पारस' त्याग किया सुष[७] पाये, दोवू लोक उजलाये ।

राग झंझोटी

(२५३)

काहे गर्भ[१] करत हौ, झूठा है ससार ॥टेक॥
धनी होत षिण[२] माय दरिद्री निर्धन[३] धन[४] भडार ।
टेडे चालत पेच सवारत ते डोलत पर द्वार ।
हाथी चढि चालो वा भू परि जीना है दिन च्यार[५] ।
इक दिन औसा आसी जासी सव[६] तजि कै घर बार[७] ।
अथिर जानि जग गर्भ त्यागि भजि 'पारस' शिव[८] दातार ।

---

*यह पद प्रति 'त' मे नही है ।

२५२ : १. प्रति 'अ'—सुनत । २ प्रति 'अ'—लखि ।
३. प्रति 'अ'—करि । ४ प्रति 'अ'—सुख ।
५ प्रति 'अ'—सत्यघोस । ६ प्रति 'अ'—हुलाये ।
७ प्रति 'अ'—सुख ।

२५३ १ प्रति 'अ'—गरभ । २ प्रति 'अ'—षिण ।
३,४ प्रति 'अ'—निरधनिया । ५. प्रति 'अ'—च्यारि ।
६,७. प्रति 'अ'—सव, वार । ८. प्रति 'अ'—सिव ।

राग झंझोटी

(२५४)

धनि धनि श्री गुरु प्रसाद जैन धर्म पायो ।
तिन ही को सफल जन्म ज्ञानी बतलायो ।।टेर।।
महाभाग केवू गहे नारिन तेरह प्रकार,
केवू अणुशिक्षा गुण समकित उर धायो[1] ।।१।।
दान सील तप सुज्ञान, भावना गहो सुजान,[2] ।
भव निधि घटि गयो[3] है[4] जिनै ज्यों जोग गायो ।।२।।
सम्यक गुरु संजोग दुर्लभ या[5] कलि मे[6] ।
'पारस' लखि सम्यक श्रुत गुरु सरण पाय कुगुरु संग तजायो ।।३।।

राग झंझोटी, उझाझ

(२५५)

श्री जी मैं दास तिहारो, आयो चरणा की सरन ।।टेक।।
दास तिहारो चेरो तिहारो मेरो करो निसतारो[1] ।
अष्ट करम के नासक तुम ही कीजे ज्ञान उजारो ।
'पारसदास' तिहारो निश्चै, तुम ही[2] तै होत उधारो ।

---

२५४ १,२ प्रति 'त'—दोनों पंक्तियों का लोप । ३ प्रति 'अ'—गई । ४ प्रति 'अ'—'है' का लोप । ५ प्रति 'न'—भया । ६ प्रति 'अ'—में ।

२५५ १ प्रति 'त'—'कीज्यो मो निस्तारो । २ प्रति 'न'—ही ।

राग जंगलो, झंझोटी

(२५६)

मिला जी मोहे[1] श्री जिनवर म्हारे[2] पुण्य को उदय बिसाल ।।टेक।।
वीतराग सरवज्ञ[3] जिनोतम[4] करुणानिधि रसिपाल[5] ।
भक्त होत सुरपति अभक्त नर अबिनय[6] तै पाताल ।
तिर गये नाम मत्र तै बहु[7] जिय बिनवू[8] कर धरि भाल ।
भक्ति मुक्तिदाता 'पारस', प्रभु मोहे दोजे निज चाल[9] ।

राग झंझोटी, वरवो

(२५७)

सुज्ञानी जीया हो पर घर कबु मति जाय रै ।।टेक।।
क्यौं[1] परमातम जाति लजावै रै[2] ज्ञान तेज घटि जाय रै ।
चेतन नाम विगाड्यो अपनो रै क्यौं[3] जड सग रचाय रै ।
सुगुरु प्रसाद जाणि निज घर सदरै 'पारस' गहिये ताय रै ।

---

२५६ १ प्रति 'अ'—महानै । २ प्रति 'अ'—म्हाकै ।
३ प्रति 'अ'—सर्वज्ञ । ४ प्रति 'अ'—लोकपति ।
५ प्रति 'अ'—रिसिपाल । ६ प्रति 'अ'—अविनय ।
७ प्रति 'अ'—वहु । ८ प्रति 'अ'—विनवू ।
९. प्रति 'न' मे पूरी पक्ति का पाठान्तर—मुक्ति दान करिये पारस प्रभु, मोहे दीने निज चाल । प्रति 'अ' मे "प्रभु ... ... चाल" के स्थान 'जाचै हरि वसु विधि जाल' पाठ है ।

२५७ : १,३ प्रति 'अ'—क्यो । २ प्रति 'अ'—'रै' का लोप ।

राग झंझोटी

(२५८)

पूजत जिनराज आजि पाप मग पलायो ।
ध्यावत उर माय[1] दुष्ट मोहनी विलायो ।।टेक।।
दरसन के करत ही मिथ्या तिमिर उडायो ।
सम्यक निज रीति लखी प्रतिमा बतलायो[2] ।
वीतराग सर्वज्ञ[3] निर्दोस[4] देव पायो ।
या सम नहि देव आन पटित[5] जन गायो ।
क्रोध मान माया लोभ, पावक कू बुझायो ।
शांति[6] छवी नयन मेरै, आनंद उमगायो ।
परमातम जोति[7] पाय सकल दुख[8] भुलायो ।
तुम बिन[9] मैं पुद्गल मझि नाहक विलमायो[10] ।
पूजन करि[11] बार बार 'पारस' सिर नायो ।
दुष्ट कर्म हरो मेरे तातें ढिग आयो ।

राग झंझोटी

(२५९)

समझि विषया रा लोभी रै विषय तै कुगति परोगे ।।टेक।।
विषय संग तै बहु[1] जिय बूढे दुख भरोगे ।
इन तैं तृष्णा बढत त्याग तै मुक्ति वरोगे[2] ।
'पारस' तृषा धारि तप, जामण मरण हरोगे ।

---

२५८ १ प्रति 'अ'—माय । २ प्रति 'अ' एवं 'त'—बतलायो ।
३ प्रति 'अ'—सर्वज्ञ । ४ प्रति 'अ'—निरदोस ।
५ प्रति 'अ'—पटत । ६ प्रति 'अ'—साति ।
७ प्रति 'अ'—देव । ८ प्रति 'अ'—दुख ।
९ प्रति 'त'—विन । १० प्रति 'अ' एव 'त'—विरमायो ।
११ प्रति 'त' एव 'न'—पूजत हू ।

२५९ १ प्रति 'अ' एव 'त'—बहु । २ प्रति 'अ'—वरोगे ।

राग झंझोटी

(२६०)

रसिक छबीलो बाको तलवरियो होय, रह्यो मन बार बार[1] ।।टेक।।
मोह करम बसि[2] हित न पिछानत, भ्रमत भ्रमत कीयो जिय कू ख्वार।
उदय पाप तद्रूप होय सठ, कर्म गहत रहू लार लार।
तुम प्रसाद तें अब समुझ्यो उर, अनेकान्तमय धारि धारि।
'पारस' एक चाह निज धन की याकू कीजिये छार छार।

राग जंगलो

(२६१)

सुद्ध रूप[1] आनद दा मेरा मनवा श्री गुरु हरा हरा
जात रूप आनददा ।।टेक।।
पर परणति तजि निज परणति गहि ध्यान धरै वे तौ
षरा षरा।
सुकल ध्यान परताप सेती, सब[2] बिकलप[3] तै टरा टरा।
'पार्श्वदास' उनको संग चाहत, ज्यू[4] मछिया दह भरा भरा।

राग जंगलो, धानी

(२६२)

कोई मोहो कू स्याम मिलाव री ।।टेक।।
प्रतिवन हेरि सकल वन हेर्यो गुण मानूगी वताव री।
एक सषी तब[1] ही उठि बोली,[2] हम पेषे ढिग जाय री।

---

२६० : १. प्रति 'अ' एव 'त'—वार वार। २ वसि।

२६१ : १ प्रति 'अ'—जातरूप। २ प्रति 'अ'—सव।
३. प्रति अ'-एव 'त'—विकलप। ४ प्रति 'अ'— ज्यो।

हरषित चित तप धार्‌यो श्री जिन गढ गिरनारि मझाय री ।
'पारस' धनि[3] रजमति[4] इम सुनि कै, तप करि कै सुरथाय री ।

राग जंगलो तथा धनाश्री की धानी

(२६३

जग जिय निपट अज्ञान[1] देह मैं रमि रह्यो जी ।
पाचू इद्री चोर यामैं इनकै विषय कुजाल जीव यामैं फसि रह्यो जी ।।टेक।।
च्यार कषाय महा ठग, यामैं रतनत्रय कू यामैं फसि रह्योजी ।
दुरगति पोरि[2] पाप करि सवला[3] अवला[4] नागनि ढसि रह्यो जी ।
'पारस' जानो[5] देही आनी, विन[6] जाणे निज रूप जगत यू ही नसि रह्यो जी ।

राग जगलो, झझाटी

(२६४)

वतिया[1] रसीलो सुपकार, जिन तेरी गुरु नैं सुनायो ।।टेक।।
सात[2] तत्व को निरणो जामैं दरपण तुल[3] उनिहार ।
आपा पर को भेद लखावत,[4] मोक्ष वध विसतार ।

---

२६२ १ प्रति 'अ'—तव । २ प्रति अ'—वोली ।
३ प्रति 'अ'—घन । ४. प्रति 'अ'—रजमत ।

२६३ १ प्रति 'अ'—अयान । २. प्रति 'अ'—पोरी ।
३,४ प्रति 'अ'—सवला, अवला । ५ प्रति 'अ'—जानी ।
६ प्रति 'अ'—विन ।

अनेकान्तमय मुनिजन प्यारी, निज सुष[5] की दातार।
मेटै तिमिर अज्ञान जीव को भविजन कू आधार।
या बिन[6] मुक्ति पथ नहिं दूजो 'पारस' तारनहार।

राग झंझोटी

(२६५)

मोह ठग मो सिर भुरषी डारी याही तै भयी षुवारी।
भूलि गयो जिन भूप रूप मम, पर मैं निजता धारी।
इष्ट अनिष्ट मानि धरि रति रिसि[1] वृत्ति गही अघकारी।
ताही करि[2] परिवर्तन भुगते, यादि करत भय भारी।
तुम तैं छानी नांहि[3] लोकपति मैं कहा कहू अनारी।
याही तैं सुर नर मुनि तुम पद सिर नमि मोह रज झारी।
'पारस' नमू तृकाल दुष्ट तैं, गैलि छुडावो म्हारी।

(२६६)

ज्ञान थारो षोसि कै करि नाख्यो जड उनिहार,
मोह करम यो वादीलो नादिकाल[1] को लार ।।टेक।।
क्रोध लोभ मान माया, याही को परिवार।
से परिवार विनासीलो[2] करि जिनवाणी सू[3] प्यार।

---

२६४ : १ प्रति 'अ'—वतिया। २ प्रति 'त'—सा।
३ प्रति 'त' एवं 'न'—तल। ४ प्रति 'त' एव 'न'—वतावत।
५. प्रति 'अ'—सुख। ६ प्रति 'अ' एव 'त'—विन।

२६५ : १ प्रति 'अ'—सि। २ प्रति 'अ'—ते।
३. प्रति 'अ'—नाय।

जिनवाणी हितकारणी या कल्पलता सुषकार[४]।
'पारस' त्रिविधा ध्यायीलो[५] ह्वै मोह करम की छार।

*(२६७)

विनासीक पर कर्म कुरग रग कहा रग्यो है अज्ञानी।
सम्यक[१] ज्ञान सास्वतो निजरंगमय होवै तव है ज्ञानी ।।टेक।।
याही रग रंगीले तिन कू आप बरत[२] है शिव नारी।
वसु विधि कर्म कुरंग रगे जिय दुरगति मैं भोगै ख्वारी।
या रग रगे नमित है सुरपति, नरपति षगपति वहुमानी।
जस तिनको गावत है मुनि पति, हम कहा थुवै अलप[३] ज्ञानी।
या मे दाम लगै न वल लगै ना सहाय कोडी[४] कानी।
"पारस" सम्यक गुरु प्रसाद तै सहज मिलत सो सुषपानी[५]।

ठूमरी

(२६८)

जिन दरसन ते मोह काप्यो थर रै रै रै रै रै रै ।।टेक।।
इन्द्रया वसि करि सुधि[२] जो लगावू, सुधि ही को लाग्यो मानू तीर
निकस्यो सर रै रै रै रै रै रै।

---

*यह पद प्रति 'त' मे नही है।

२६६ १. प्रति 'अ'—अनादिकाल। २. प्रति 'अ'—विनासीदो।
३. प्रति 'अ'—से। ४. प्रति 'अ'—सुखकार।
५ प्रति 'अ'—ध्याइलो।

*यह पद प्रति 'त' मे नहीं है।

२६७ १. प्रति 'न'—सम्य। २ प्रति 'अ—वरत।
३. प्रति 'अ'—अल्प। ४ प्रति 'अ'—कोडो।
५ प्रति 'अ'—सुखखानी।

असुभ प्रकृति मैं रस सब[3] विनस्यो सुभ मैं बढि[4] गयो नीर,
देषो अर र र र र र र।
'पारस' जप तप जदपि न वनिहै मस्तग रहो दृढ वीर,
गाजो घर रै रै रै रै रै रै[5]।

ठूमरी

(२६९)

नाल की श्रुति[1] शिव जावन की ।।टेक।।

सुनिया तृविध बसु[2] कर्म नसत है धार्‌या[3] होत प्राप्ति पावन की।

पापन[4] गहत मूढ ते निश्चै,[5] चद जोति द्योतक भावन की।

शिव पावत[6] नर गहत जास कू, 'पारस' फेर न गति आवन की।

ठूमरी

(२७०)

मोहे ले चाल जहा री मेरा बालम[1] वा ।।टेक।।

कहा री करै आली भोजन की बतना[2] भावै मोये सालिमवा[3]।

कहा री करै आली अतर अरगजा[4] पिय की सुधि करि मालिमवा[5]।

---

२६८ १, ५ प्रति 'अ' मे र र र र र र। २. प्रति 'अ'—सुधी।
३ प्रति 'अ'—सब। ४. प्रति 'अ'—वढि।

२६९. १ प्रति 'त'—श्रुते। २. प्रति 'अ'—वसु।
३ प्रति 'त'—धारव। ४. प्रति 'अ'—पायन।
६. प्रति 'अ'—निश्चय। ६ प्रति 'त'—जावत।

षान पान अब नाहिं करैगे पिय[६] संगि धरिहू[७] सजमवा।
'पार्श्वदास' धनि धन्नि[८] राजमति, तप करि तिय लिंग गालिमवा।

ठूमरी

(२७१)

अज्ञानी जीयो न मानै जी, भोत कही समझाय[१] ।।टेक।।
मैं तौ कहू करि ध्यान बावरे यो राच्यो जग माहि[२]।
मैं तो कहू निज रीति समझि रे आपो तजि पर माहि[३]।
जिन विषयन[४] तें भव[५] दुष[६] पायो फिर फिर उनही मैं जाय।
तुम समरथ अैसे भी त्यारो, हो 'पारस' जिनराय।

*(२७२)

तुम बिन[१] तीन लोक मैं मेरो[२] वाली वारिस ना कोयी।
जो दीसै सो सकल विनस्वर, वसुविधि वसि दीसै वोयी ।।टेका।।
का पै जावू दीसै न कोई, पराधीनता विन जोयी।
ज्यो सागर विचि नौका[३] पंछी, परसरण बिन[४] मै सोयी।
मैं तुम विन भरमे[५] दुष भुगते, तुम तैं छानी[६] ना[७] कोयी।
अब[८] मम दुष[९] मेटो सुष दीजे, या तैं सरण गहू योयी।

---

२७० १ प्रति 'अ'—वालम। २. प्रति 'अ'—वतना।
३ प्रति 'अ'—सालमवा। ४ प्रति 'अ'—अरकचा।
५ प्रति 'अ'—मालमवा। ६. प्रति 'अ'—पिया।
७ प्रति 'त' एवं 'न'—धारै। ८. प्रति 'न'—धनि।

२७१. १ प्रति 'त'—भौत कही समझाय अज्ञानीडो नै मानै जी। २ प्रति 'अ'—माय।
३. प्रति 'अ'—परमाय।
४ प्रति 'अ'—विषयनि। ५ प्रति 'अ'—भव।
६ प्रति 'अ'—दुख।

तन धन जोवन दगावाज है, निरणो[10] करि लीनो योयी।
पर परणति विन निज परणति मय, वर मागू 'पारस' ध्योयी।

राग लावणी

(२७३)

दुरित सू डरता रहौ भाई।
सत गुर साषि सुनो[1] हम नीकी पाप भलो नाई[2]।
बाल वृद्ध बनिता[3] रु तरुण नर, वृद्ध लोक माई[4]।
षट मत वाले या ही वोले पाप भलो नाई[5]।
तीन लोक के नाथ प्रभूजी कही वेद माई[6]।
वेद पुराण को योही तत्व है सो सतगुर गाई[7]।
पुन्य उदै तै पाय देवगति क्रम तै शिव जाई[8]।
वचन अगोचर पाप उदै तै, नरक दुष[9] पाई।
'पारस' दान सील तप व्रत भावना धरो भायी।
नर भव पायो जम वसि होसी, तब[10] करसी कांयी[11]।

---

*यह पद प्रति 'त' मे नही है।

२७२ : १ प्रति 'अ'—विन। २ प्रति 'अ'—मोरो।
३ प्रति 'अ'—नवका। ४ प्रति 'अ'—विन।
५ प्रति 'अ'—भरम्यो। ६-७. प्रति 'अ'—छानी, ना।
८ प्रति 'अ'—अव। ९ प्रति 'अ'—दुख।
१० प्रति 'त'—निर्णय।

२७३ १ प्रति 'अ'—सुणी। २ प्रति 'अ'—नायी।
३. प्रति 'अ'—वनता। ४-८ प्रति 'अ'—मे इन शब्दो मे 'ई' के स्थान पर 'यी' प्रयुक्त हुआ है।
९ प्रति 'अ'—दुख। ११ प्रति 'अ'—काई।
१० प्रति 'अ'—तव।

राग लावणी

(२७४)

वीनती[1] सुणों नाथ मोरी ।

सुणि त्रिभुवन पति तो करुणानिधि सरन गही तोरी ॥टेक॥

दुष्ट करम मोहि[2] भव भव माह्यो,[3] दुख दीनो जोरी ।

तुम सब जानो अंतरजामी, तातै कहू थोरी ।

भाग्य उदै अवसर अब पायो, मागो बुधि भोरी ।

'पारस' दास तुम भक्ति चहै, निस वासर[4] शिव पोरी ।

(२७५)

अपना धरम[1] धारियो रे जानो निरमै सुखदातार[2] ।

श्री जिन धर्म धारियो रे ॥टेक॥

या कारण तीर्थंकर[3] चक्री हलधर भये उदासी ।

राज संपदा त्यागि त्यागि कै[4] जाय भये[5] वनवासी ।

भरतराय पर वसि[6] घर वसि[7] भी ह्वै धरम[8] निवासी ।

अवसर पाय धारि तप कीनो ज्ञान ज्योति परकासी ।

या कारण श्रावक मुनि किरिया श्री गुरु श्रुत मैं भासी ।

द्वादसांग[9] को रहस्य बतायो, उर धरि रहो हुलासी ।

सब निज धर्म धर्या ही सोहै पर सो मैल विनासी[10] ।

धर्मी धर्म भेद कहने मैं वस्तु रूप इक आसी ।

---

२७४ १. प्रति 'अ'—वीनती । २ प्रति 'अ'—मोय ।
३ प्रति 'अ'—मायी । ४ प्रति 'त' एव 'न'—वासुर ।

नां तीरथ मैं ना मंदिर मैं ना वन मै[11] किन[12] पासी।
'पार्श्वदास' घट मैं अवलोको, पा जासी सुषरासी[13]।

*(२७६)

सुज्ञानी जी कै असुभन वंध परसी[1]।
पडै तौ शुभ वंध सातिसय प्रकृति लिया परसी[2]।
जिन तै वधै मिथ्याती ज्ञानी तिन ही तैं षुलसी ॥१॥
क्रया काड तैं ज्ञानी षुलै, अज्ञानी वंधि डुलसी।
सो तो समभि देसना सेती, सो गुरु ढिग मिलसी।
या कलि मैं सम्यक गुरु नाही, मिथ्या सगि डुलसी।
कुगुरु सग तजि सुगुरु रचे श्रुत को अभ्यास करसी।
सो निश्चै लगै मोक्ष पथ 'पारस' शव वरसी[3]।

(२७७)

अज्ञांनी कांयी चालै लाग्यो रै कायी हठ लाग्यो रै[1] ॥टेक॥
कुमता सगि चौरासी[2] रुलियो रै सुमति[3] की तरफ न चोघ्यो रै ॥१॥
करुणा धरि श्री गुरु समभायो रै, देसना पथ नहिं पाग्यो रै।

---

*यह पद प्रति 'त' मे नहीं है।

२७५ : १. प्रति 'अ'—धर्म। २ प्रति 'अ'—सुखदातार।
३ प्रति 'न'—तीथकर। ४ प्रति 'न'—कर।
५. प्रति 'अ'—वये। ६–७. प्रति 'अ'—वनि।
८ प्रति 'अ'—धर्म। ९ प्रति 'अ'—द्वादशाग।
१०. प्रति 'अ'—विनाशी। ११-१२ प्रति 'अ'—दोनो शब्दो का लोप।
१३ प्रति 'अ'—सुखरासी।

*यह पद प्रति 'त' मे नहीं है।
२७६ : १.२ प्रति 'अ'—पडसी। ३ प्रति 'अ'—बरसी।

मोह नीद तजि कवहु[४] न जाग्यो रे, तास तै अघ मघ राग्यो रे।
अवसर पाय 'पारस' अघ दाग्यो रे, जगत मैं सो ही वडभाग्यो रे।

राग वसंत

२७८)

वारो जी ई[१] जैन धरम की रीति नै जाग्यो म्हारो आतम
भान[२] ।।टेक।।
शान्ति छवी छे श्री जिनदेव की गुर निग्रथ प्रमान।
सव ही जीवा की जहा करुणा कही, उर मै जचावे भेद विज्ञान।
सातू तत्वारथ की कथनी सुनी, और[३] समुझावै[४] नय परमाण।
छवू ही द्रव्या की जो चरचा शुचि[५] भनी वचन भणै छै दो
नय वान
पाचू ही पाप तजावण व्रत लिषै, और छुडावै बिसन कुज्ञान।
पुन्य उदै सू जी 'पारस' पायियो[६] दृढ उर धारू त्यागू आन।

---

२७७ १ प्रति 'त'—हठीला काई हठ लाग्यो रे, हठीला कांयी चालै लाग्यो रे।
२ प्रति 'अ'—'चौरासी' के वाद 'मैं' अतिरिक्त।
३ प्रति 'अ'—सुमत।
४. प्रति 'न'—कवु।

२७८ १ प्रति 'त'—इ।
२ प्रति 'त'—मे 'नै'.....'भान' अंश नहीं है।
३ प्रति 'अ'—ओर।
४ प्रति 'अ'—समझावै।
५ प्रति 'अ'—सुचि।
६. प्रति 'अ'—पाइयो।

(२७९)

अर हो विषयां रा लोभो,[1] हा रै हो माया रा लोभी, दुल्लभ
नर भौं[2] मैं,

निज हित साधि लै, तोय गुरु समझावै ।।टेक।।
माया तै कुल ना मिलै जी जाति मिलै अनपाति।
माया ह्या की ह्या रहैगी, समझावू बहु[3] भाति।
अंनतकाल पूरो कियो जी रुल्यो निगोद मझार।
एक सास मैं जनमियो अरु मर्‌यो अनती बार।
विकल त्रय मे फिर लही जी कठिन कठिन परजाय।
पंचेद्रिय मे उपजियो, पणि हुवो असैंनी आय।
तिरजंचनि मैं फिर लही जी, हिंसक की[4] परजाय।
पाप ठानि नरका गयो जी तहा नारकी थाय।
तहा पाप हलको पड्यो जी, पायो नर परजाय।
तृष्णा वसि तप ना[5] कियो, सुर हूवौ[6] मद कषाय[7]।
सुरपति हू शिव करणै जी, जाचै[8] नर परजाय।
नर भव विन तप ना वनै जी, कैसे शिव[9] पुर जाय।
तप व्रत नर भव माय है जी, मंद करम की चाल।
'पारस' सक्ति विचारि धारि[10] तप ज्यो काटो भव जाल।

---

२७९ · १. प्रति 'अ' मे अर ' लोभी' अश 'हारै हे माया रा लोभी' के वाद मे है। २ प्रति 'अ'—भव।
३ प्रति 'अ—वहु। ४ प्रति 'अ'—ही।
५. प्रति 'अ'—ना। ६ प्रति 'अ'—हूओ।
७ प्रति 'अ'—कसाय। ८ प्रति 'अ'—जांचे।
९ प्रति 'अ'—सिव। १० प्रति 'अ'—करि।

मोर्या की चाल मैं

(२८०)

जियरा रै जिन वानी[1] कू रचाय लै ।।टेक।।
जिन मदिर चलि श्री गुर वोलै तौ वोलै छै अमृत वानी[2] रै।
जीव अजीव को निरणो भी होवं,[3] होवै असुभ की हानी रै।
वर्द्धमान सुप या तै होवै तौ आषर[4] शिव[5] सुषदानो[6] ।
याही तै उधर र उवरसो या भव तै भ्रम हानी।
'पारस' आन काज सव[7] तजि कै याही उर दृढ मानी।

लोकगीत की चाल मैं

(२८१)

म्हानै[1] बीतराग[2] री वाणी प्यारी लागै जी ।।टेक।।
रागी ह्वै सो पक्षपात सू साची कहै न एक।
बीतराग ही पक्षपात विन[3] समझा सकै अनेक।
वस्तु सरूप न पावै रागी राग अघ सो अघ।
त्याग उपादे हित अनहित किम भाषै[4] मुक्ति र वंध।
आपहि राग दोष मोह वसि सो पर कू कहा वचावै[5]।
रागादिक कर्मनि कू जीतै 'पारस' सो गुरु गावै।

---

२८० १ प्रति 'अ'—वाणी। २ प्रति 'अ'—वानी।
३ प्रति 'अ'—होहै। ४. प्रति 'अ'—आखर।
५ प्रनि 'अ'—सिव। ६ प्रति 'अ'—सुखदानी।
७ प्रति 'अ'—सव।

२८१ : १ प्रति 'अ'—महानै। २. प्रति 'अ'—वीतराग।
३ प्रति 'अ'—विन। ४ प्रति 'अ'—भाषै।
५ प्रति 'अ'—वचावै।

लोकगीत की चाल में

(२८२)

विसन मद्य त्यागो जी थानै श्री गुर कहै समुझाय[1] ॥टेक॥
एक एक कू सेय कै जो कोयी नरक निगोद्या जाय।
सरस बेदना[2] भोगवै जो, कोयी दुषोया[3] ह्वै[4] विललाय।
रावण से राचे घणें[5] जी ज्याका दोवू लोक नसाय।
त्याग्या ते सु पायिया[6] जी कोयी सुरगा मै[7] सुर थाय[8]।
दुरलभ नर तन[9] पाय कै जी मति वादि गुमावो ताय।
फिर पीछै पछितायस्यौ[10] जी यातै 'पारस' सीष सुनाय।

राग सोरठ

(२८३)

अब तन[1] बार[2] बार[3] समझावू रै चेतन कुमति सग मति जाय
अब तन[4] सुमति नारि समझावै रै चेतन कु० ॥टेक॥
कुमति नारि संग सुष[5] नहि पासी, क्यू करि रह्यो लुभाय।
च्यारू गति मैं दुष तै पाया[7] या[8] री संगति पाय।
अब तू म्हारी[9] सगति आ जा, पासी सुष सुरगा कै[10] माय।
अब तन सुमति[11] नारि समुझावै[12] रै चेतन सीष[13] धरो दिल माय।
काम क्रोध मद लोभ मोह तै प्रीति तजो उर माय।

---

२८२ · १ प्रति 'अ'—समझाय। २ प्रति 'अ' एव 'त'—वेदना।
३. प्रति 'त'—दुखिया। ४ प्रति 'अ'—होय।
५ प्रति 'अ'—घणा। ६ प्रति 'त'—पामिया।
७,८ प्रति 'त'—माय् वसत। ९ प्रति 'अ'—भव।
१०. प्रति 'अ'—पछिनायस्यो।

हिंसा रति और राग द्वेप कू घर तै धो निकलाय।
सील सतोष विवेक[14] ज्ञान कू, रापो घर कै माय।
क्षमा दया और साति बुलावो जिण वाणी र रचाय।

(२८४)

अब मै थारै ही घर रहस्यू हे कुमति सग[1] छिटकाय।
अब मै थारा कह्या मैं रहस्यू हे अप्ट पहर दिन राति।
काम क्रोध मद मोह न रापू राग दोप दुपदाय[2]।
विसन[3] दभ हकार त्यागस्यू[4] मन और[5] वचन सुकाय।
अब मैं क्षमा दया घर माय रापस्यू जिन वाणी अपनाय।
क्यू करि दुरगति जास्यू प्यारी सुमति नारी सुपदाय[6]।
अब मैं सुमति[7] सपी श्रद्धा अनुप्रेक्षा रापू प्रीति वढाय।
वहुत दिनन मैं पाया[8] 'पारस' अव मै तजस्यू नाय।

डूंगजी झवार जी का ख्याल मैं

(२८५)

धरि लीज्यो सुगुरु[1] पुकार हीया[2] रै माई[3] ॥टेक॥
पाच पाप सू डरता रीज्यो सातू विसन निवार।

---

२८३ १,४ प्रति 'अ'—तनै। २,३ प्रति 'अ'—वार।
५. प्रति 'अ'—मुख। ६. प्रति 'अ'—क्यो।
७ प्रति 'त'—पाम्या। ८ प्रति 'अ'—सा।
९. प्रति 'अ'—महारी। १०. प्रति 'त' एव 'न'—रै।
११. प्रति 'अ'—सुमत। १२ प्रति 'त'—समभावू।
१३ प्रति 'अ'—सीख। १४ प्रति 'अ'—विवेक।

२८४ १ प्रति 'अ'—सगि। २ प्रति 'अ'—दुखदाय।
३. प्रति 'अ'—विसन। ४ प्रति 'अ'—त्यारास्यू।
५ प्रति 'अ'—अर। ६ प्रति 'अ'—सुखदाय।
७ प्रति 'अ'—समिति। ८ प्रति 'त'—पाम्या।

कुगुरु[४] सग[५] करि हित नहिं समुझ्यो[६] अब समझण
री वार।
पर नारी सू डरता रीज्यो या लाबी तरवार[७]।
रहतं बीच को[८] बीच मैं[९] पहुचन दे शिव द्वार।
तप व्रत कबहु[१०] नहिं धारिया स थे हूवा बहु ख्वार।
'पारस' अवसर पाय कै स थे हित समझो धरि प्यार।

राधा का बारामास्यां की चाल मैं

(२८६)

राजुल विचार[१] करै मन मैं रे हम कू छाडि[२] चले नेम प्यारे ।।टेक।।
सखिया किलोल करै सखियन मैं राजुल बिचार करै मन मैं रे।
नेम पिया गिरनार सिधारे हम हू द्वार तजै छिन मैं रे।
हम सै कहा छल कीनो सावरे, जाय चढे तट गिरवर के रे।
बारा भावना भायी सावरे जीव दया उर मैं धरि कै रे।
द्विविध परिग्रह तजि कै सावरे लोच कियो सेसाबन मैं रे।
देव रिषी करि कै जु प्रससित मुक्ति तिया[३] सगि रति धरि कै रे।
नेम प्रभू से पायन वरिहू[४] आन पुरुष सब पित सुत सम रे।
हम हू तप करि तिय[५] लिंग तजि कै 'पारस' थावू निज तन मैं रे।

---

२८५ . १ प्रति 'अ'—सुगुर। २. प्रति 'अ'—हिवडा।
३ प्रति 'अ'—मायी। ४, प्रति 'अ'—कुगुरुन।
५ प्रति 'अ'—सेती। ६ प्रति 'अ'—समझ्यो।
७. प्रति 'अ'—तलवार। ८. प्रति अ'—का।
९. प्रति 'अ'—'पहुचन' से पहले 'सया' शब्द अतिरिक्त। १० प्रति 'त' एव 'न'—कछु।

२८६ . १ प्रति 'अ' विचार २ प्रति 'अ'—छोडि, प्रति 'न' छाटि
३ प्रति 'त' एव 'न'—त्रिया।
४ प्रति 'अ'—वरिहू। ५. प्रति 'त' एवं 'न'—तिय।

लोक गीत की चाल में

(२८७

प्रभू जी थानै पूजन आयो जी राजि ।।टेक।।
काम क्रोध वसि होय कै जी[1] अबला[2] सगि रहति[3] ।
असे देव बहुधा मिले,[4] पणि तुम सम्यक अरहत ।
एक द्रव्य करि पूजिये[5] ते[6] सुरगा माय वसत ।
अष्ट द्रव्य जुत भाव पूज्या[7] होसी शिव के कत ।
जे तुम कू पूजे नही ते दुरगति माय[8] भमत ।
'पार्श्व' प्रभू कू पूजि कै अब[9] मूरिष[10] आन नमत ।

(२८८)

हा रे जीया कुमति त्यागद्यो रे या भव जाल माय रषती ।।टेक।।
याके सगि भ्रमे अनादि के ज्ञान रीति नसती ।
मोह क्रोध मद लोभ पुत्र तिह राग[1] दोष बसती[2] ।
सील प्रबोध बिबेक[3] सुमति सुत, इन सगि करि रसती ।
'पारस' कुमति त्यागि सुमती भजि सुगति होय ससती ।

---

२८७ १ प्रति 'त'—जि । २ प्रति 'अ'—अविला ।
३ प्रति 'त'—वहति । ४ प्रति 'अ'—लषे ।
५ प्रति 'अ'—पूजिया । ६ प्रति 'अ' थानै ।
७ प्रति 'त' एव 'न'—भावनि सहित ते । ८ प्रति 'अ'—माय ।
९ प्रति 'अ'—अव ।
१० प्रति 'अ'—मूरष ।

२८८ १ प्रति 'त'—विहराग । २ प्रति 'अ'—वसती ।
३ प्रति 'अ'—विवेक ।

राग गोपीचंद का दोहा की चाल मैं

(२८९)

जिनमत का सरधान कू ज्ञानी जन धारै, बडे बडे मतिवान विचारै,[1]
अजी आन मिथ्या हठ टारै[2] ।।टेक।।

जैसैं फूल कडीर का केतगी एक सा प्यारा।
निज सुगध सै भेद लषावत क्यो कर एक निहारा।
जैसै आक दुग्ध अरू महिषी दुग्ध स्वेत[3] विस्तारा।
आक दुग्ध प्राणनि को हारक, वो पोषक[4] सुखकारा।
पीरी रीरी होत है र पीरी, सुवर्ण की माला।
वू[5] तोला का रिप्पा अठारा, वाकी कौडी वारा।
कहा कोयल की टेर माधुरी, कहा काक की कारी।
तरुवर[6] डारि स्याम इक दीसैं वोलत न्यारी न्यारी।
कहा भानु[7] तेजस्वी भारा, कहा आगिया विचारा।
प्रकृति उद्योत उदै करि इक सै, करै न सदस उजारा।
ज्यो पून्यू का होत उजारा मावस का अधियारा।
पदरै दिन आवत इक सारा लखि गुण दोष[8] विचारा।
'पारस' पक्ष छाडि करि[9] परख्या, परखै सार असारा।
जिनमत परभत भेद इतो है, कुगति सुगति दातारा।

---

२८९ १ प्रति 'अ'—विचारो। २ प्रति 'अ'—टारो।
३ प्रति 'न'—भेद। ४. प्रति 'त'—पोषै।
५. प्रति 'त'—वा। ६ प्रति 'न'—तुरुवर।
७. प्रति 'अ'—भान। ८. प्रति 'अ'—दोम।
९. प्रति 'अ'—पक्षपात धरि।

(२९०)

प्रीति करी जिन धर्म सैं जी हे जी जिनवानि सैं,
ज्याका सुनौं विचार ॥टेक॥
तन धन जानैं छार से भोग अग्नि की झाल।
सुत दारादिक बागुरा[1] संसार असार।
विसन[2] पाप तै यूं डरै, स्याम नाग उनिहार।
मिथ्या कुगुरु कुसग ये दीसैं व्रिटमार[3]।
दुर्जन दुर्जनता करैं तवु न कटैं विकार।
सज्जन सज्जनता करैं उन तैं समधार।
'पारस' लच्छण जानि कैं धरिये सतोस[4]।
अन्य सकल ही तैं सदा तजि राग र रोष।[5]

राग षट्

(२९१)

कीनो अपूर्व सुक्रत तैं भायी,[2] याही तैं जिन धर्म मिल्यो रे ॥टेक॥
उत्तम कुल श्रावक को पायो भली भई सतसग मिल्यो रै।
असुभ त्यागि गहि सुभ सो भी तजि उत्तम जन मन।
शुद्ध हिल्यौ रे।
'पारस' सो जाचो जिनपति सू, रचताई मन मुख अम्रत
गिल्यौ रै।

---

२९० : १ प्रति 'अ'—बागरा। २ प्रति 'अ'—विसन।
३. प्रति 'त'—'वटपार', प्रति 'न' विठपार।
४ प्रति 'अ'—'धरिये सतोष' का लोप है।
५ प्रति 'अ' मे पद के अन्त मे प्रक्षिप्त है—दोस्ती कर जिन धर्म सैं त्याका सुनो विचार'।

२९१ १. प्रति 'न'—कीनो। २ प्रति 'न'—भयी।

*(२९२)

भजि लै महावीर का सरनां जा तै भवदधि पार उतरना ।।टेक।।
वीतराग सर्वज्ञ दोष विन इन विन दूजा है ना।
जो दीसै सो राग द्वेष मैं मोह काम वसि दीना।
सील सतोष विवेक न जिन मैं ना समतामय रहना।
दया सत्य अरु सौच न जिन मैं, जिन कै जन्म रू मरना।
नीकै सकल लषे मत हम नै, इन विन ना है तरना।
'पारस' जांनि कांमदेव सब भजि सन्मति के चरनां।

मांगडली की ढालमैं

(२९३)

भवि भाई धरि चाव जिन वाणो ।।टेक।।
जिन वाणी भावो तौ भवि म्हारै घरि आवो।
जिन वाणी भावै तौ सुमता कै घरि आवो।
थानैं मिथ्या हो रुचै तौ कुमता कै भलि जावो।
वैठि सभा मैं इद्र सुनावै, सुरपति फणपति मुनि घ्यावै।
स्व पर तत्व याही तै पावै, अघ विनसावैं मिथ्या भावै।
वोधि लाभ याही तै होहै 'पारस' शिव तिय सुख दरसावै।

(२९४)

सुनि तू जीया रै, अैसी नर परजाय पाय विरथा न गमाय ।।टेक।।
याकू चाहै सुरपति फणपति इक सजम की चाय।
चक्रवर्त्ति तीर्थंकर तजि तजि, राज गये वन माय ।।१।।

---

*क्रमाक २९२ से आगे सभी पद केवल एक ही प्रति 'अ' में उपलब्ध है।

दुर्लभ मिल्यो जाति कुल उत्तम और निरोगी काय।
सतसंगति सद्गुरु की सिक्ष्या पायी पुण्य वसाय।
शक्ति प्रमाण धारिये संयम, सब विधि कर्म वसाय।
'पारस' औसर चूक गये ते दुर्गति में पछिताय।

गोपीचंद का ख्याल की चाल में

(२९५)

थाका दरसण री मरनो नाथ में अति दुल्लभ पायो ॥टेक॥
पूरो कीयो काल अनंतो, दुखित निगोद्या माय।
जनम मरण ठारा बर कीना, इक सास के माय ॥१॥
लट चीटी भौंरो माखी तन, विकल त्रय उपजाय।
मन वच विन कर्म दुख भापू, अनभव भी कछू नाय।
तहा तै भयो असैनी पसु भी, नाबु सिक्षा दाय।
सैनी पसु पाप अघ धायो, माया क्रोध बढाय ॥२॥
नाग बघेरो चीतो स्यालो, सरप मगर गति पाय।
पाप ठानि नरका मैं रुलियो, सागरा मित थित थाय।
तहा पच विधि दुख भुगते मैं, यादि करत अकुलाय।
मिनख होय भी दुख ही भुगते, यातै करम वसाय ॥३॥
सुरगति मै भी दास कर्म वा भुवन तृक सुर थाय।
देखि सपदा अधिक तनी मैं, सुख न लह्यो उपजाय।
मरण मास छ तै दुख भोगे, नारक तैं अधिकार।
विन तुव दर्शन सुख न कहा ही यो ही निर्णय पाय ॥४॥
अधम उधारक नाम सुन्यो मैं या तै सरण लहाय।
अधमन की कथनी मुनि गायी, तुझि आगम के माय।
अब के वारो म्हारो स्वामी, वसुविध अग छुडाय।
वेर वेर विनवू 'पारस' प्रभु कीजे निज सम राज जी ॥५॥

(२९६)

वात भली छै उर धारि लै गुरु सीष सुनावै हो,
ज्ञानवर थारा दिल मैं जचावै ।।टेक।।
कुगुरु कुदेव कुधर्ममय सुपना मैं मति चावै हो।
आतमा रै भूलि मति चावै ।।१।।
वीतराग निरग्रथ का वच हृदय रचावै हो।
चेतना घर सिव तिय पावै ।।२।।
स्व पर तत्व नय भंग तै, समझि र क्यू नै ध्यावै।
हो आतमा निज पर दरसावै ।।३।।
ध्यावै सो पावै सही रै 'पारस' इम गावै हो।
आतमा रै चूके पछितावै ।।४।।

नणदोई की ढाल मै

(२९७)

कौडा सू थे आया जी चेतन जी कौडे डेरा ढाल्या, सुभता सू
साची कह्यो।
निगोदि सू चलि आया, जी सुमता जी, कुमता कै डेरा ढाल्या,
विषय भोग दी षातर।
ता करि दुख उपजाया जी सुमता जी, वचोतीत दुष भोगे,
थावर गति मैं जाकरि।
सो दुख कैसैं भाषू जी सुमता जी, जियो मर्यो वर ठारा,
एक सास कै मा कर।
विकल त्रय मैं आयो जी सुमता जी, सो दुख जाणै ज्ञान,
मैं भाषू मत का कर।

सैनी पशु भयो मै नार वघेरो माकर, नारक दुष मैं भोगे,
सप्त नरक मैं जाकर।
नर सुरगति मै भोगी, वसु विधि वसि ह्वै रोगी,
अव मम हित समझावो, वूझू तो ढिग आकर,
'पारस' सम घर दीज्यो, कुमता नें नजि दीज्यो,
सीष यही गहि लीज्यो, ह्वै तृभुवन को ठाकर॥

(२९८)

तू नें सुमति सुनपणी समझावें विषया मैं मति जा रे ॥टेक॥
या विषया रै कारणै तू नरक दुष भुगते,
सुख लव हेत मेर सम दुख सहि, अव तौ तजि जा रै ॥१॥
पराधीन पर आपर विनसत, तिहुपन मैं दुष की सेव हुआ,
ताप जीव कै इनि तै विनसत, रहत उपजता रै ॥२॥
इन मारिग लखि व्रत नें धारे तलफत हरि प्रति हरसा रे।
'पारस' सुमति सीष धरि करि व्रत, भव समुद्र सू तिर जा रे ॥३॥

हूका की चाल मैं

(२९९)

जी शिव रमणी रा प्यारा, आपरा दरसन मै मनड़ो म्हारो
लाग्यो जी, राजि जी।
प्रभु केवल ज्ञानी, आप री सुचि वानी भौत पियारी
लागै जी राजि ॥टेक॥
गणधर भाषी गुर परपाटी, चाली हम तक आय,
वानी हित उपदेश दियो म्हानै, श्री जिन दरस रचाय जी ॥१॥

मुनि उर राषी तीन लोक के सकल पदारथ साथ,
दीप सिषा सम है परकासक, ध्यावू अह निसि ताय जी ।।२।।
सात छवी या लखत फटत मनु, वसुविधि गिर के व्रात,
'पारस' या रस मगन भये ते, जगत पूज्य विष्यात ।।३।।

(३००)

थाका वार वार गुण गावा नाथ म्हानै त्यार्‍या ही सरै ।
शिवानदन जिनराज सावरा, तुम विन करुणा कौन करै ।।टेक।।
कर्म मोहनी बडो दुष्ट मोय, दुरगति माय धरै ।
ज्ञानादिक गुण लूटि हमारा, जडवत अज्ञ करै ।
तुम ही कृपा दृष्टि विन सजम, धरि धरि नाहि तिरै ।
तुम पद जतन विचार तै, मीडक सुर तिय जाय वरै ।
भव दुखहर तुम विरद जानि कै, 'पारस' तोय सुमरै ।
पडित मरण दीजिये अब कै ज्यौ भव भ्रमण टरै ।।

(३०१)

देह मै कायी रै लुभायी. काया मै कायी रै ।
जीया साथि नाही रै थारी लार नायी रै ।।टेक।।
मात पिता रज वीरज सू उपनी भय सात कुधात ।
दस द्वारनि करि श्रवत पूति नित वमत पित्त कफ वात ।
रोगनि की ढेरी देह तेरी, सो भी नाहि रहात ।
धन्नि दिगवर तप करिया तै सुखमय मुक्ति लहात ।
या उपगार एक नहि मानत, पोषी दुरगति घात ।
सोषी शिव देया तै 'पारस' तप व्रत पथ्य उदात

(३०२)

जिनमत ना लह्यो रै या तै डुल्यो चतुर्गति माय।
दया दया मुष सुक ज्यू भाष्यो दया भेद नहिं जान्यो।
स्व पर तत्व पहचानि विना किम दुविध दया पहचान्यो।
झूठ वोलवा को व्रत लीनो, झूठ भेद नहिं चीनो।
साच झूठ के भेद समझि विन, वृथा पेद ही कीनो।
चोरी तजे कुसील परिग्रह, जिन आगम उर आनो।
'पारस' जिन आगम विन सव ये नृत्य मयूर वषानौ।

(३०३)

या मन की गति रोको ना रुकै ।।टेक।।
समझायो समझै नहि फिर फिर विषयन माय झुकै।
पाप काज मैं आघो होहै, सुभ मैं नाय डुकै।
तुम ढिग पग न धरत मृति भय तै, या तै सकल छुपै।
'पारस' चहै अतिंद्रिय सुख कू, ता तै तोय जुपै।

राग जंगलो, झंझोटी

(३०४)

लैरा वे लैरा मैनू ले चलो ।।टेक।।
दूर दिगा नास्यो री वे तुमकू न जाना।
मैंडे विना ह्या अपना नही लाजना।
दया तजो न मोरी वे, तुम ही कू कीया मैनू पिया,
ह्या अपना कछू काज ना।

मया करो पै गोरी वे 'पारस' कदमू सरना लीया,
गह्या सजम तुमरा भना।

राग माढ

(३०५)

हो परमात्मा जिनद।
कोई थाकै म्हाकै करमा ही रो आटो हो ।।टेक।।
जाति लाभ कुल रूप सब तुम हम एकामेक।
व्यक्त सक्ति करि भेद द्वै कीने कर्म अनेक ।।
अधम उधारक विडद सुनि 'पारस' सरन गहीन।
वत्ती दीप समान प्रभु मोहि आप सम कीन ।।

राग परज, कालिंगडो

(३०६)

सुमरि सुमरि मन श्री नौकार ।।टेक।।
जिन सुमरे तिन ही सुख पायो उतरे भवदधि पार।
अजन अजन सुमरत भयो, तिरज स्वान सिंघ मजार।
और सुनें आगमैं बहु जिय सुमरण ही आधार।
विन सुमरण भरमण ही करिहै, रुलिहै भवदधि प्यार।
'पारस' सुमरण सार एक है या ससार मझार।

(३०७)

गुरु उपदेश दियो रै वाकू , धार्‍या सुख ह्वै मीत ।।टेक।।
प्रथम विसन मिथ्यात तजो जो और अभक्ष अनीति।

मन वच तन करि आठ मूलगुण, धरि सुख होइ अचित।
बारा व्रत सामायक प्रोपध, त्यागो वस्तु सचित्त।
दिवा फुफुनि ब्रह्मचर्य आरभ परिगह त्यक्त।
गुरन अनुमति तजि उद्दविहारी श्रावक व्रत इम गीत।
'पारस' या भव पूजित पद होय, पर भव सुख पवित्त।

(३०८)

पूव तहकीक किया हमनै,
इन वानू सैं दुख गलिहै सुख मिलिहै ॥टेक॥
पच परम पद सुमरण करिये, हरिये विसदस नैं।
स्यात्पदचिह्नत वानी उर धरि, हरि विकथादिक नैं।
सास्त्राभ्यास सार्धमिक सगति, भावो निज पर नैं।
तजो कुसग कुविद्या कुमता, जोवो निज घर नैं।
विपय कपाय त्यागि भजि निज, चावो निज सुख सम्यक नैं।
'पारस' वर्तमान सुखिया ह्वै, पर भव पावो शिव नैं।

(३०९)

आजि हम चेतना लषाई।
लषत ही आनद उर न मात, मानू भूली निधि पाई।
अनादि काल के गुरु नियोग, विन निजता पर भायी।
मानि मानि चउगति भरमाये, अब समता आई।
जिन वानी सिव पथ दरसानी, मेरै मन भाई।
या प्रसाद मिथ्या पर परणति, तजी विषमतायो।
या उर वसियो सम्यक् सुख दी, अत समय ताई।
'पारस' करै प्रार्थना प्रभु स और कछु न काई।

राग झंझोटी

(३१०)

जिनद जी थायी को दरसन निति चावू जब लू
भव वास वसावू ।।टेक।।
थायी को दरसन, थाई को अरचन थाही के गुण गावू ।
थाही के पूरव भव को कथन सुणि, सो ही मै रीति रचावू ।
थाहो की वानी सिव सुखदानी, दिढ उर माय जचावू ।
तुमरो कथित वृष द्विविध धारि कै, रुचि धरि सुनहु सुनावू ।
'पारस' यही प्रार्थना करिहू, और कहा नहिं जावू ।
तुम विन आन देव वृप भेषी, सुपनें हू न लषावू ।

राग कानड़ो

(३११)

सावरे नें कोई आनि कै मिलावै ।।टेक।।
तोरन तै रथ फेरि चले गढ गिरनारी तै मुडावै ।
सुनिहै सेसावन जाय कै देवरिषी वैराग दिढावै ।
पच महाव्रत धारन कीने मुक्ति तिया पै उमगावै ।
हम हू तिन सगि सजम धरि कै, आवागमन मिटावै ।
'पारस' धनि रजमति की ये मति, तप करि सुरपति थावै ।

(३१२)

श्री जिनवानि पियारी रै उर धारि हितकारी ।।टेक।।
सात तत्व को निरणो यामैं नय प्रमाण सवारो रै ।

चउ अनुयोग रूप विस्तारी, याकी महिमा भारी रे।
राज सपदा त्यागि होय मुनि, या ही कू दृढ धारी।
या के विन उधरे न उधरसी, यो भव जलनिधि प्वारी।
भव आताप मिटावण जलमुच, अमृत वरषाकारी।
याही भवनिधि तारनहारी, मिथ्या रीति निवारी।
'पारस' तीन लोक मदिर विनि, दीप सिपा उनिहारी।

राग सोरठ

(३१३)

विपयनि सग त्यागो जी श्री गुरु सिक्षा साभलो।
इन ही तै चौरासी भुगति करि करि अनुरागो जी।
निज निधि भूलि हेत इन ही के क्यो भयो नागो जी।
तीन लोक को ठाकुर ह्वै चाकर ह्वै भागो जी।
निज गुण भूलि मोह वसि सूते अब तो जागो जी।
वडे वडे वुद्धि के भाजन तजियो सागो जी।
भजियो सग दिगवर को क्यो काढो आगो जी।
पुण्य उदै यो जोग मिल्यो विपयनि कू दागो जी।
'पारस' धरि करुणा गुरु गायो ती पथ लागो जी।

(३१४)

रमि गही हो मो मनि श्री जिनवानि ।।टेक।।
आन काम सव फीके लागत, मीठे जिन वच कान।
आन वैन न सुहावत मोकू, भावै जिन गुन गान।
'पाश्र्वंदास' जिन वच रस रसिया, पावै केवल ज्ञान।

[

(३१५)

सतगुरु की सीष सुनोज्यो जी नर भव लाहा लीज्यो ।।टेक।।
षट मत सुर गुर वृप भाषै, विन समझि पक्ष ही राषै,
थे कु गुरु कु देव कुधर्म [कुनर को, परसंग ही तजि दीज्यो।
तजि सातू विसन गलीज्यो, फुनि पाचू पाप टलीज्यो।
या भव पैठि उपद्रव विनसै, पर भव सुषमय रीज्यो।
पर निंदा निज गुण ससा तजि, निज सम लखिर इरसा
स्वाध्याय माय रत रीज्यो।
'पारस' या सीष सुनाई, धनि नर जे सुनी सुनाई, ज्ञानामृत पी
चिर जीज्यो।

(३१६)

लैरा लगो मैं थारी मोहे लीज्यो लारी ।।टेक।।
विषय भोग मोहे कछू न सुहावत, भासै भव भयकारी।
जैसी सयम तुम नै धार्यो, सोही रीति हमारी।
'पारस' धनि रजमति मति अैसी भव तन प्रीति विडारी।

(३१७)

हे काया तोये मुतलबनि जानी ।।टेक।।
भक्ष अभक्ष षात न अघावत दोष जीव सिर ठानी।
ताके उदै कुगत मैं चेतन, दुष भुगतैं विविधानी।
जनम समय तूनू तन उपजत, ताकी सुनहु कहानी।
गर्भ मास नव जोनी सकट, भुगते चेतन ज्ञानी।
तप सजम हित धरै जीव तव, असन तजत विलषानी।
'पारस' धन्नि दिगवर यातै, तप करि शिव उपजानी।

(३१८)

जिया थे हिंसा त्यागो जी, दया कै मारग लागो जी ।।टेक।।
हिंसा पाप दया वृष, सब मतवारे भाषै याही।
लच्छण भेद जाति कुल काय, जीव के समझा नायी।
इतनी स्वर्द्धा झे तुमारी, जो नही तो रहस्य वतावू भाई।
तुमै बुरी सोई तजि पर प्रति वटकायन कै मायी।
रतन स्वर्ण अत भूमिदान इक जीव दया सम नाही।
'पारस' मूल उतर गुण भाषे याही हेत घुसाई।

(३१९)

जिया थे झूठ त्यागद्यो जी सत्य वच मुख तैं बोलो जी ।।टेक।।
ज्ञानी अज्ञ अधर्मी धरमी नीच ऊंच सतसगी।
बोल्या होत परष मानुष की, कामो एक अनगी।
यातैं वैर घुपैं सुघरैं गति दोऊ लोक सुचिया तैं।
जा तैं भये त्रिलोकनाथ जिन वोलि सत्य वच यातैं।
नाय तालवो कटैं जीभ मुख ना घन छीजैं जामैं।
'पारस' सुजस बढै अपजस हर सत्य समझ हिरदा मैं।

(३२०)

जीया थे शील धारिल्यो जी कुसील नर सगति तजिद्यो जी ।।टेक।।
विद्या मन्त्रौषधि साधन मैं, करामाति सव याकी।
माता आदि सील फल पायो, महिमा प्रगटी जाकी।
रावण गयो नरक याके विन, धर्‍या देव गति ताकी।

कुल अरु जाति उच्चता गुण सव, पैठि बढत है वाकी।
मिनष जनम को मडन जानौं, मिल रतन यू मानो।
'पारस' दुरलभ मिल्यो धारि दृढ रत्न अमोलिक जानो।

(३२१)

जिया थे सग त्यागद्यो जी दिगवर भेष माडल्यो जी ।।टेक।।
सव पापनि को बाप संग है, कलेस करत तिहूपन मै।
उपजत रषत विनास होत भी समझि लेहु निज मन मैं।
या जुत काज सधै नहि या तं तज्यो तीर्थंकर छिन मैं।
कामदेव हलधरु चक्रवरु, त्यागिर गये विजन मैं।
'पारस' धनि जे द्विविध सग हरि, जो न जोगता विधि को।
करि परिणाम त्यागि तृष्णा हो कह्यो उपाय सिद्धि को।

(३२२)

धनि जीवनि है तिनका सुचिया रुचिया जिनवानी की ।।टेक।।
मोह तिमिर विघटै प्रगटै चिद्ज्योति सुज्ञानी की।
पर परणति छुडवाय करै, निज परणति ध्यानी की।
वहिरातमता तजि अतर कै परमातम दानी की।
वरतमान वरतै स्वभाव तजि उदै परानी की।
'पारस' सेवा फल ये जाचू चाह न आनी की।

(३२३)

म्हारी सजनी आजि तौ चेतन घरि आसी।
आसी आसी ज्ञानामृत रस पासी ।।टेक।।
कुमता सौकनि कू छुटकासी, पर परणति भी तजासी।

धरि गलवाह सवेग धूपजुत, सजम सहित हुलासी।
सील मित्र जुत लखि कै सुमता निज परणति उमगासी।
जिन वानी सब मेल मिलाया, अनुभव सुत उपजासी।
ये मिलाप महाभाग्य लषत है, जनम सफल करवासी।
मोहादिक की सगति तजि कै 'पारस' धन्य कहासी।

राग माढ़

(३२४)

त्यारो महारा प्रभुजी त्यारो हे म्हारा सावरिया जिनजी त्यारो
त्यारो जिन जी ।।टेक।।
कीचक से त्यारे अधम और अजन से चोर।
उनहू तै कहा पातगी, झाको म्हारी ओर।
नाम तुमारो कान सुणि, पशु पंछी तिरजात।
मैं घ्यावू अनुभव सहित, क्यौ न कटै अघ व्रात।
अधम उधारक विरुद तुम, त्यारे अधम अनेक।
विरद बिगाडोगे कहा, मोहि टारि कै एक।
मोह उदं भरम्यो जगत, जान्यो तोय न मोय।
अब त्यारो औसर मिल्यो, 'पारस' विनवै तोय।

(३२५)

थे राग द्वेष तजि दीज्यो थे आकुलता तजि दीज्यो जो
सुनि वीतराग रा वैन ।।टेक।।
आकुलता करि भरत वाहुवलि दुखिया हुवे अैन।

अर्ककीर्ति मेघेश्वर याके वध्या कियो जुद्ध गहैन।
वलि नारायण पाडव जोवा, राग धारि दुष लैन।
तृष्णा वसि दुषिया कोटीध्वज, कहिं भी सुखिया ह्वै न।
तीन लोक के सुरपति नरपति रागी सुषिया है न।
वीतराग लषिहै दलद्र हू मैं उनकै सुख चैन।
'पारस' धारी वीतरागता, राज त्यागि प्रभु जैन।
सुख चाहो तो राग त्यागि रहो वीतरागता लैन।

(३२६)

प्याला पिलाया वाणी ज्ञान का ज्ञानी जन छकिया ।।टेक।।
वेष वरी भई परभावनि की निज रस मैं मतवाला।
आनंदकद आतम रस पीन, अदीन भये गुण वाला।
या तै छके जात नहिं वाहिर, मिट गये आल जजाला।
अदभुत आनंद मगन ध्यानमय भविजन हाल सभाला।
या अवसर के सुख की महिमा, जाणे ज्ञान विसाला।
'पारस' जन्म सफल भया तिनका पिया ज्ञान का प्याला।

राग आसावरी

(३२७)

अव थे क्यो दुष पावो म्हारा जीवरा इम सुखिया हो जावो रै।
क्रोध लोभ छल मान मोह मद, धरि नाहक दुष पावो रै।
इनकू तजो भजो समता उर, जीवन मुक्त कहावो रै।
वडे बडे वुद्धि के धारक, कहा कीयो उर लावो रै।

या मैं तन धन बल न चहैं काहू आगम सार चितावो रे।
श्री जिन गुरु श्रुत मंत्र सुनायो, 'पारस' उर में रचायो रे।
आलवाल जग के कोलाहल, अन्य मति सुनो सुनायो रे।

सारंग की होरी

(२२८)

ज्ञानी खेलैं सम्यक्ज्ञान भव आताप मिटै ॥टेक॥
जल विवेक भरि नादि काल सों लिग मिथ्या का राग
मिथ्या मैल कटै।
निज परणति ना सुगंधित केसरि निज रमिकमी गुलाल,
सुन्दर रंग घुटै।
ज्ञान ध्यान अबीर अरगजा समता पिचकोदान,
फवारा धार छूटै।
'पारस' रचो जिके या होरी, मुक्ति कामिनी राग,
क्यू नहिं प्रीति जुटै।

(२२९)

जिन मंदिर चलि शुभ उपजावै, अघ विनसावै ॥टेक॥
छः सूना के पाप मिटावे, खोटा विकलप टलि जावै।
आवश्यक षट् कर्म सधै जहां, बहु श्रुती संग मिलि जावै।
कलह हास्य कौतक निद्रा सब, क्यू आप ही रुकि जावै,
'पारस' निज हित सहज बनत जहां, ज्ञान ध्यान रुग बढ़ि जावै।

राग काफी

(३३०)

भाग्य उदै अव आया भला तै जिनतम पाया ।।टेक।।
मद्य मांस मधु पच उदवर जनमत ही न चषाया ।
विन छाणया जल राति का भोजन, आरभ गमन घटाया ।
घिरत न चष्या विन ताया ।।१।।
हिंसा रूप व्योपार न जामैं कुल को रोति लहाया,
साधरमिन की सगति सेती तत्वारथ समझाया,
ज्ञान सम्यक दरसाया ।।२।।
दोष रहित सम्यक्त धारि अव कीज्यो मद कषाया,
'पारस' धरि समता ममता तजि नर भव सफल कराया,
चूक्या तेही पछिताया ।।३।।

(३३१)

अरजी करहू सकास ठाडो जिनवर सै ।।टेक।।
मोह करम अैचि खैचि काढत निज घर सै ।
निज परणति सुख निधान ताय हरी जर सै ।
अप्रमाण काल भ्रम्यो परणति भई पर सै ।
सुख को न ल्हेस कही दुख ही दुख भरसै ।
जो तुम मोहादि नास रहित भये पर सै ।
तैसै अव मोहि करो रहित मोह कर सै ।
'पार्श्वदास' अरज करत पारस जिनवर सै ।
अरज करत सरम आत, तुमरे विन पर सै ।

राग बरवो

(३३२)

सुनि जिया रै जिनवानी निधानी गुण रतननि की या पावनी ।।टेक।।
रतन दीप नर भव विषै, या रतनन की है खानी।
रतन त्रय यातै पाय कै रे, परनी सिव रानी ।।१।।
व्रत सयम यम ज्ञान ध्यान तप रतन घनेरे।
एक एक ही पाय गये तेही मुखित भये रे ।।२।।
इन रतनन के दाम पटै सुरग मुकति कै मायी,
या भव मैं इण मोल जोग्य सो पदारथ नायी,
याके सेवक सेयहै, तिहू जगपति करि कै,
'पारस' सेवा आचरी, तन मन सुध धरि कै।

राग आसावरी

(३३३)

जीव तोय शिव नारी परणावू रै,
भवातति कुमारि सो तजावू रै ।।टेक।।
सात प्रकृति उपसमवाद्य करि समता करू कढाई रै।
पच परम पद सरण विनायक, अजपा गान गवावू रै,
स्वाध्याय पच वरणी मिठाई, भीमू और भिमावू रै।
रतन त्रय सिर सेहरा भी धरि कै, सील वसन पहरावू रै,
अष्ट करम फुलवाद लुटावू, असी निकासी कढावू रै।
शुक्ल ध्यान अग्नि विचि, मन वच तन घृत होम करावू रै,
केवल ज्ञान दान करि 'पारस' सिव तिय सुख विलसावू रै।

राग सोरठ

(३३४)

मै तो कीनो यो निरधार सार मत जैन है ।।टेक।।
अष्टादश दोषन विन जिन प्रभु गुण अनत भडार।
गुर निरग्रथ मुक्ति पद साधक धर्म दया आधार।
षट् कायन की दया प्ररुपै, न करे काहू को विगार।
दुष्ट जाणि मध्यस्थ भाव धरि, गुणवता सुषकार।
जो कोई करै विगार तास परि, आप करै उपकार।
चंदनादि लखि उदाहरण उर, कबहु न धरै विकार।
आदि अत अविरुद्ध देसना, न तजै सूत्राधार।
'पारस' विनवै जवलौ शिव, मम राचो शिव दातार।

(३३५)

श्री गुरु वीतराग करुणा धरि हित समभावै सो उर धरि लै रे ।।टेक।।
वहिरातम तजि नादि काल की अतर ह्वै परमातम भजि लै ।।१।।
या मै कछु नहिं पराधीनता सो तो मै तू ही आचरि लै ।।२।।
ग्रह तजि मुनि वन मैं जो करिहै, यो ही काज तू इहा करि लै ।।३।।
'पारस' आन काज सव तजि यू साधि सहज मैं शिव तिय वर लै ।।४।।

गोपीचंद का दोहा की चाल मैं

(३३६)

जिन वाणी माता निज पुर मैं वास कराय दे ।।टेक।।
निकसि निगोद भ्रमे वहु धरि करि तृस थावर के भेस।

नर सुर पसु नारक चउगति मैं, लह्यो न सुख को ल्हेस।
दुख ही दुख भुगते मैं माता, कवु नहिं मिट्यो क्लेस।
सुखकारी दुखकारी लषि तोय, कदमा आयो ऐस।
मोह हर्‌यो मम ज्ञान तास करि, स्वपर भेद नहिं पायो।
ता करि करो वध की करणी, अनहित हित दरसायो।
विषय कषाय जाणि सुखदायक, तरु धतूर उगायो।
थारो दरसण मिल्यो न माता, याही तैं भरमायो।
कल्पलता तू जै करि माता, कृपा दृष्टि करि झाकै।
इंद्र विभव निसार लपत सो, साचो सुख है वाकै।
थारी महिमा कौन कहि सकै, सहस जीभ करि थाकै।
अब तौ सरणो आनि लह्यो मैं पुण्य उदय भयो म्हाकै।
काल हीन अर सहनन हीना, ना गुरु मिले अदीना।
ना सहाय हित चरण करण प्रति, ना कछु लवा जीना।
थारो जोग मिल्यो अब 'पारस' या तैं सरण गहीना।
अपनो सुजस जाणि वर दीजे, पडित मरण प्रवीना।

(३३७)

हेली चिद प्रीतम कव ग्रह आसी।
तदि भव भ्रमण मिटासी ।।टेक।।
सुभ अरु असुभ निमित पय वाधि सुभासुभ कर्म।
भाव सुभासुभ होत यू नाहिं गहत; निज धर्म।
कुमति नारि वसि वहु भ्रम्यो, विना सुमति के सग।
सुमत सग धारत जिके सुखित भये सरवग।
'पारस' याही के बढे सुद्ध होत उपयोग।
तदि वसविधि नमिटै मटो ननन मुक्ति को जोग।

(३३८)

मुक्तिवाला जिनवर जतिया ।।टेक।।

मेटि दिया अज्ञान अंधेरा, और विनास्या भव वन फेरा।

तप संजम की रीति वढावत, असुभ करम का करत नमेरा।

'पारस' आवत ताय लखावत, सूधो मारग सिवपुर केरा।

लावणी

(३३९)

अथिरता मानी धन जोवन की,

धन्नि दिगवर तप करि जारी गति वसुकर्मनि की ।।टेक।।

कामदेव चक्री हरि हलधर और देवगन की।

दीसत है विजुरी सम सव ही थिरता नहिं किनकी ।।

'पारस' पद पूजत तिनका लति ग्रही तपोवन की।

मो कू सो वर देहु जिनोतम वाछा मो धन की ।।

सारंग की होरी

(३४०)

चिद नृप घरि आजि मची होरी ।।टेक।।

समकति सुचि जल माट भराया, ज्ञान गुलाल रग घोरी।

आठू ध्यान गुलाल के गोटा, समता मय पिचकी छोरी।

निजरसिमयी डोलच्या भरि भरि, वावत है सुमता गोरी।

अनुभव रूप अरगजा महकत ममता अरु सका तोरी।

गुर वच ढोल प्रतीति वासुरी, उहापोह ताल जोरी।
तप मोचिंग स्वाध्याय मिठाई, निज परणति पुष्पनि झोरी।
महाभाग्य लषत है 'पारस' पावै सिव पोरी।

राग सारंग

(३४१)

साधरमी षेलत या होरी ॥टेक॥
सात् प्रकृति उपारत जर सू ज्ञान अग्नि करि परि ज्वारी।
मोह को धूरि उडावत सारी, मिथ्या रजनी निरवारी।
तत्व प्रतीति तोय पिचकारी, आपस मैं भरि भरि डारी।
उज्जल दयामयी चादर परि सत्य तमोल वढत भारी॥
तप मेवा स्वाध्याय मिठाई, वाटत है भरि भरि थारी।
या होरी न लषत ससारो, 'पारस' संतन कू प्यारी॥

(३४२

सुज्ञानीडा रै गुरु दी सीष सम्हारि रै ॥टेक॥
अनत काल जग भरमत वीत्यो, अब निज हित अवधारि।
अविरत जोग प्रमाद कषाया, और मिथ्यात विडारि रै।
व्रत अरु समिति गुप्ति अनुप्रेक्षा, दश विध धर्म विचार।
'पारस' इण विधि सोष सम्हारो, शिव पावो अनिवार रै।

(३४३)

भजन इक मानुष भव को सार ।।टेक।।
षट् मत वाले याही भाषत या तै उतरै पार।
भजन विना संसार भ्रमत है च्यारु कुगति मझार।
सुनिये है आगम मै भी यह नाहि भजन उनिहार।
भजि भगवत सुखित होवु 'पारस' है सिवफल दातार।

(३४४)

निर्णय करि गहि लीनी या सैली मुक्ति पुरी की गली ।।टेक।।
देव धर्म गुरु को जहा निरखो, नाहि रीति अघ मैली।
दिगवरन की देसना वरतत जहान कु लिषी फैली।
या ही को उपगार लख्यो अव, सुघरे विसनी घैली।
या के रचत मिथ्यातम विघटै, सम्यक सरधा ह्वैली।
'पारस' भाषत साधरमनि[1] सू, या सरधान अहैली।
या प्रताप फिर नर भव धरिकै निश्चै मुकति उपजैली।

लावणी

(३४५)

जीव सतसगति मैं रहना।
मिथ्याती पायी विसनी सगि भूलि न रति करना ।।टेक।।
जैसैं अगनि लोह की संगति, घन का घात सहना।
पुष्प सग करि तृण सिर ऊपरि देव मिनख धरना।

---

३४४ : १. प्रति 'अ'—साधरनि।

चाडाल मुनि की सगति करि छत्र चमर ढुरना।
जीवक संग पाय सुर उपज्यो, स्वान शास्त्र भनना।
'पारस' इम गुण दोष जानि, सतसगति अनुसरना।
तजि कुसंग मानुष भव दुर्लभ, मिल्यो सफल करना।

(३४६)

श्री जिनदेव सुगुरु सारदा पूजवा चाला हे ।।टेक।।
दोष अठारा रहित सहित गुण षट् चालीस विराजै,
है अनत गुण जुत त्रभुवन पति पूजित पद नित जजो।
मूल उत्तर गुण धरे दिगवर सव पर महिमा छाजै,
रत्नत्रय धारक गुरुपद[1] सकल इण विना तजो।
सप्तभंग करि वस्तुरूप दरसक मिथ्यातम भाजे
जाकै सुने होत भवि ज्ञानी, निस दिन ता रस रजो।
नादि काल के मिथ्या त्रय भजि, भ्रमे चतुर गति माय,
'पारस' पय[2] सार्घमिक सग, अव तो मिथ्या तजि[3] लजो।

(३४७)

जिन मत कै भायी तिन लिंग वरनन किया ।।टेक।।
प्रथम लिंग मुनिवर को भाण्यो श्री जिन मुद्रा धारी।
द्विविध सग त्यागी अनगारी, जातिरूप अविकारी।
दूजो लिंग उदड विहारी ज्ञारा प्रतिभा धारी।

---

३४६ १ प्रति 'अ'—गुरु प। २ प्रति 'अ'—पय।
३ प्रति 'अ'—जजि।

खंड वस्त्र कोपीन पात्र एक इन विन सव सग छारी।
तीजो लिंग अर्जिका सती को एक वस्त्र तन धारी।
तीनू असन तजै उद्देस्यो राग द्वेष मोह जारी।
सुरपति नरपति खगपति पूजै, आप तिरै जग त्यारी।
प्रथम नमोस्तु इछामि दूसरा तथा वदनाकारी।
इन विन उदर भरण की जानो सव ही दुकादारी।
'पारस' लखि कलजुग को महिमा तजि रति द्वेष असारी।

राग सोरठ, उभाभ

३८८

तेरे हित दी वातडी सुनि लीजे रे भाई ।।टेक।।
अति दुर्लभ नर भव तैं पायो, जाय चहै सुररायी।
उत्तम कुल जिन धर्म पाय, सग रचो सुखदाई।
पाच पाय अरु विसन कषाया, मद मिथ्यथा तत जायी।
वै ही नर सुरगति सुख पैहै, सत जिके गुण गायी।
रावणादि विसनादिक राचे, गये नरक के मायी।
'पारस' सुपथ चलो सुख पावो अब चूक्या पछितायी।

राग सोरठ, उभाभ

(३४९)

नर भव पाय भवि सुरग मुकति को कीज्यो जी सामो ।।टेक।।
कुगुरु कुदेव कुधर्म तजो ये निश्चय सिव सुख पामो।

करि प्रमाद वहु जिय पछितैहै, उद्यम करि हित कामो।
आलस तजि 'पारस' प्रभु सुमरो अष्ट पहर दिन यामो।

गोपीचंद का दोहा की चाल मैं

(३५०)

मारो वसुविध कर्म कू योही दुख देहै ।।टेक।।
नार वघेरा दुष्ट नृपति अरि साकनि डाकनि मारी।
ाग सोग विसमय याही के वल करिहै दुषकारी।
नारक तिरजच दुषी दलद्री रचि रचि कोईषुवारी।
मनु परजाय पाय अव सभलो, याहि हतन की वारी।
अरि मिता सुभ असुभ कर्म यू जानत है मतिधारी।
सिंघ वृति गहि तजै स्वान वृति याकू धरै अनारी।
याकू हत्यो दिगवर जग मै व्रत सजम तपधारी।
'पारस' रीति देस तै धारो त्यौ सुख ह्वै अविकारी।

राग पट्

(३५१)

वीतराग सर्वज्ञ जिनोतम तेरी महिमा की मुख कहिए।।टेक।।
निर आयुध विन क्रोध हते, वसुविधि प्रचंड अरि शिवपुर लहिये ।।१।।
तुमरी भक्ति करत है जे नर, ते सुरपति होय सुख तैं रहिये ।।२।।
जे अभक्त विपरीति तुही ते, ते कुगतिन मैं दुष करि दहिये ।।३।।
असन वसन भूषण तजिये, तवू समवशरण सपति करि सहिये ।।४।।

इद्र सतक मुकटनि करि नमिये, असि मुनि तोय ध्यान धरि रहिये[1] ।।५।।
'पारस' तोय पाय सब तजिये, अमृत लहि विष को बुध गहिये ।।६।।
आप समान कीजिये स्वामी, वत्ती दीपक न्याय समझिये ।।७।।

राग भैंरू

(३५२)

मो माही मैं थावूगा तव शुद्धातम हो जावूगा।
वहिरातमा तजि अतर होय कै, दोवू नय दरसावूगा।
निश्चै अरु व्यवहार भेद करि सम्यक रीति रचावूगा।
पचेद्रिय कषाय मन वसि करि अतर दृष्टि लगावूगा।
श्री सर्वज्ञ देव पद उर धरि, भेद विभाव नसावूगा।
अनादिकाल तै पर परणति भई, ताकृत दुख भुलावूगा।
सुखमयी निजपरणतिमय, सोह सोह निज पद ध्यावूगा।
सम्यक गुरु दी पाय देसना, एक महूरत भावूगा।
'पारस' या विधि सेती निश्चय केवल ज्ञान उपावूगा।

(३५३)

अविनासी सुख कारणै जीया क्यौं न सजै रै ।।टेक।।
जन्म मरण दुख सहे जगत मैं वोध धारि अव क्यो न तजै रै।
विषय कषाय माय रुचि रुलियो, अव इनै तजि जिन क्यो न भजै रै।
अति दुर्लभ नर भयो जो चवै, सुरपति हू नरक व उपजै रै।
राग द्वेष तजि 'पारस' समता गहि, ज्यू सहजा ही उपजै रै।

---

३५१ १ प्रति 'अ'—चतुर्थ और पचम चरण के मध्य मे 'जे अभक्त विपरीत तुही तै कुगतिन मैं' प्रक्षिप्त है।

(३५४)

श्री समुदविजै जी रा ललना पलना मैं भूलै री ।।टेक।।
धनद रचित रतनन रो पलना रेसम डोरि लगाई।
सक्र सचीजुत विनय देव गन होडाहोड भुलाई।
मात तात उर हरख न मावत, उठि उठि लेत वलायी।
वस्त्राभूषण अगन सोभा, मुख तैं वरनी न जाई।
तीन लोक की लक्ष्मी मिलि मानू याही घर चलि आई।
जा घर जन्म लियो त्रैलोकपति, 'पारस' तहाई आई।

(३५५)

दीनानाथ मेरी सुनाई करो ना।
हा हा षाय तोरे पया परत हू, अजहू कान परी ना ।।टेक।।
तुम नें त्यारे अधम घनेरे, तिनकी संष्या भई ना।
तुमारी भक्ति विना मुनिवर भी, तप करि मुक्ति वरी ना।
मैं तृसधि रति धरि ढिग आयो, तो भी सार धरी ना।
अैसी पोलि सुणी न कवी हम घर त्रैलोक्य पती ना।
अव तो गही तुम चरना की सरना आन की सरना षरी ना।
'पारस' वसु विधि सक्ति नासि नृप दीजे[1] मुक्तिपुरी ना।

(३५६)

हो जिन स्वामी दरस मोय देना ।।टेक।।
तुमरे दरस विर जग भरम्यो सो तो भ्रमण टरै ना।
विषय कसाय जाल मधि फसियो, सोभी जाल जरै ना।

३५५ · १. प्रति 'म'—कीजे।

जप तप सजम भी आचरिया, सो भी सफल फलै ना।
जग की सव विद्या अम्यासी सम्यक ज्ञान फुरै ना।
द्रव्य लिंग धरि धरि सुर उपज्यो, करमा के वध जडं ना।
'पारस' दरस मरण लू जाचत, फिर जनमै न मरै ना।

(३५७)

वरज्यो नहिं मानत मानी, कुमता कै घरि जाय ॥टेक॥
या कुमता म्हारी जनम की वैरन मोहि लियो पीव ज्ञानी।
याकू विषयनि सगि लपटानी ॥१॥
चौरासी के दुख भुगताये तौ हु न दिल विचि आनी।
या तौ है दुरगति दुखदानी ॥२॥
'पारस' सीष सुमति की सिषिये, तजि कुमता दुखदानी रै।
या तै पावोगे सिवरानी ॥३॥

राग षमावच की ठुमरी

(३५८)

निपट षटन मोह हठ भीनो हे सय्या वार वार समभावू ॥टेक॥
देव धरम गुरु पयानै परत है, मिथ्या मघ न तजावत।
मोह की जायी कुमता सगि रायी, पायी मो घर आवत लजावत।
या सगि सहे पच्च परिवर्त्तन मो घर गुरु समभावत।
'पारस' एक महूरत थावै, तौ शिवपुर सुख पावत।

---

३५६ · १ प्रति 'अ'—कीजे।

(३५९)

काय समझि करि थिरता माडी नर भव मायी ।।टेक।।
कोडि पूर्व की आयु वांधि आये ते करि गये कूच ।
लाष सहस सत वरसन थाकी थे क्यू वरिण रह्यो भूच ।
अर्द्ध आय तौ सोवत वीती आधी मैं वहु रोग ।
वाल तरुण अरु वृद्ध अवस्था आपति रोग रु सोग ।
धनि पुरुष जे या अवसर मैं, विरचे भव तन भोग ।
अधम रचे ते ही पछिताये, तजि चिंतामरिण जोग ।
'पारस' हित कारिज करि भोरे, फेरि करैगो कव ।
सकल विचार धरे ही रहैंगे, जम आवैगो जव ।

राग झंझोटी

(३६०)

मदछकिया अजहू चेति रै, यो नर भव निरफल जाय ।।टेक।।
अनतकाल भटकत ही वीत्यो विषयनि संगि लुभाय ।
सक्री चक्री के सुख भोगे, तोहू तृप्ति न थाय ।
धन्य पुरुषा भव मैं तप करि केवल ज्ञान उपाय ।
जो न वणै तप धारि देश व्रत, या ते सुरपद पाय ।
'पारस' आप धारि व्रत सिव ह्वै, भाषी श्री जिनराय ।

(३६१)

वटोहीडा नै क्यो भूरो रै भाई ।।टेक।।
आता लार न जाता लार न तृया सीष सुनायी ।।१।।
यो जिन धर्म सुसगति लहि, परभव वटसारी वधायी ।
जो न वधो तौ कुगति रुलोगे, अैसी चिंता चितायी ।।२।।

उत्तम नर तप करि सिव पाई, मध्यम सुरपुर जायी।
अधम कुज्ञानी कुगति परत हैं, यू समझो दिल मायी ॥३॥
'पारस' धरि समता ममता तजि, विषय कषाय घटायी।
श्री जिनेंद पद सरण धारि, अधम की रीति द्यो तजायी ॥४॥

(३६२)

वस्तु स्वरूप सो ही श्री जिनमत,
याही तै अनादी अकतृ'म कहिये ॥टेक॥
मोहजनित अज्ञान तास करि, जग जन लषत न हेरत रहिये।
तीन लोक तिहुकाल माय सो, रागादिक परणति तन कहिये।
श्रावक अरु मुनिभेष भेष सब, ताही साध के साधन गहिए।
निश्चय अरु व्यवहार रूप सो, जिन आगम ही तै सो पये।
धर्म अनंत वस्तु मैं गर्भित, नय प्रमाण करि सुचि मति रहिये।
'पार्श्वदास' जब लौ सिव होवै, तब लौ सरन जिन मत ही चहिये।

(३६३)

जनमत मैं भेषी भया कलिजुग के जोरै ॥टेक॥
कपडा रंग सुरग पहरैगे, गैणा भी घडवावै।
गाय भैंसि रषि तुरंग पालकी, ज्यां परि चढै चढावै।
देत उधारा व्याज फलावै, जागा नई चुणावै।
टौणा टामण वैद्य सजोतिस, राति मसाण जगावै।
नीच देव की करै उपासना, मिथ्या देव पुजावै।
संदृष्टी सद्व्रतधारी, श्रावक सू नमन करावै।

द्रव्यानुयोग की वात न भावै, करता सू रिस ल्यावै।
सूत्र सुनावै दाम कमावै, ज्ञानी लषि रोस वढावै।
'पारस' लखि इन कू मति वोलो, रति रिस दोवू तजावो।
कलिजुग को महिमा चित धारि सौ, घर जिन सगि रचावो।

राग वरवो

(३६४)

सुनि जीया रै निज अवलोको अनादि काल ।। टेक ।।
तुझ घर मैं नव निधि धरी, अनत चतुष्टय भारी।
सो तोकू न षवरि परो, तू क्यू भ्रमैं है विषारी।
रागादिक काची कामली, करि भोगी षुवारी।
वीतराग गुरु करुणा धरि हरि लषवायो।
'पारस' समता आचरो, तजि ममता दुखकारी।
याही तै सिव पायहै, पायी आवै अगारी।

(३६५)

विधि दुख नाना परकार देत जिन मानौ तो सहो।
या कू विनासि सिव देहु नाथ चर, तुम पद सरन गयी ।।टेक।।
थावर की परजाय मांय कू जड उनिहार दयो।
विकल त्रय मैं छिन्न भिन्न घसो, प्रो कोयी नही दया लयी।
तिरजचनि मैं भूष प्यास दुख मुख नै जात पयी।
तात मात नहि राज पच माही जणि षाय गयी ।।२।।
देव नरक के दुख नाना विधि छानी तुम तै नही।
नर भव पाय वीनवै 'पारस' अवसर भलो ययो।

राग षट्

(३६६)

सात विसन प्रय व्रात मति कीज्यो जी ॥ टेक ॥
द्यूत विसन तैं पाडव नरपति डोलत फिरे विषारी ।
मास खाय वकराय विगुठ्यो, कथा पुराण मझारी ।
सूरापान दोस तैं जादव, सुत द्वारिका प्रजारी ।
चारुदत्त वेस्या वसि भोगे, दुख नाना परकारी ।
व्रह्मदत्त नृप हू सिकार तैं, सुख सपति विगारी ।
सत्यघोष चोरी तैं वूडयो, व्रिपदा सही अनारी ।
पर नारी सकल्प धारि, रावण डूब्यो मझधारी ।
'पारस' जानि पाप घर सातू, तजि परणो सिवनारी ।

गोपीचंद का दोहा मैं

(३६७)

त्यागो त्यागो जी अनुराग आजि परभाव सै ॥ टेक ॥
मोह कै उदै पिछाणि भई नहिं पर ही पर मैं जान्यो ।
अव मैं मैं पर पर सव ही थये, यू निश्चय उर-ठान्यो ।
भ्रमे वहुत वहिरातम होय कै, अतरातम न पिछान्यो ।
सैलो के परताप लष्यो प्रभु, सुख नै जात वषान्यो ।
'पारस' प्रभु सू याही जाचत, मरण-समय प्ररवानो ।
ज्ञान भाव मम रहो सास्वतो, निश्चै भ्रम तम भान्यो ।

---

(३६८)

कुमति तो मै या छै वडी कुवाणि चेतन नै जग भरमायो ॥ टेक ॥
पाच भेद मिथ्यात तास मैं, यू थायो मद पायो।
विषयनि मैं सुख की धरि आसा, प्यासा मृगवत धायो ॥ १ ॥
सात विसन मय यू लपटायो, कफ मांषी वत गायो।
पाच पाप तै दुख भुगतायो, श्रुत मैं सो सुणि आयो।
थारै सगि चेतन तै जड भयो, भव कानन भरमायो।
सुमति कहै मो 'पारस' आवो सो ही शिव पहुचायो।

राग षट्

(३६९)

तुमारी इतजारी मे बहुत दिन वितीत भये अव तौ उवारोगे
श्री जिन देवा ॥ टेक ॥
अंजन एक मास ही त्यार दीनो, चाडाल कहा कीनो सेवा।
सक्तिवत तप संजम धरि करि, तिर गये ता मैं तुम कहा केवा।
सम से सक्तिहीण कहालहीन भये, हमारे तौ एक आधार
तुम एवा।
पार्श्वदास कहलाय कहा जावू, दूजी ठौर नौ पच्ची ज्यू शरण
तुम एवा।

(३७०)

जा मै जम हू का है वासा, पुदगल दा की विसवासा ॥ टेक ॥
नयी नयो त्यारी वनवा कै भोजन करते षासा।
पहर दोय मैं ताय वुलाकर फेरू वनि गया प्यासा ॥ १ ॥

पूरत पूरत गलत तवू पूरण का तजत न सासा।
वीती आयु चलने की भई त्यारी, ताका फिकर न मासा ॥ २ ॥
असुभ उदै दुख भुगत ता समय कोउ करि सकै न दिलासा।
तन धन की गुमरी मैं करत अघ, दिल मैं धारि हुलासा ॥ ३ ॥
या ही दोष तै नव नारायण करत नरक मैं वासा।
'पारस' नव वलभद्र भए शिव करि विस्वास विनासा ॥ ४ ॥

(३७१)

हा रै हो सुज्ञानी जीवरा कुगुरा सगि मति जाय रै ॥ टेक ॥
सम्यक श्रधा लूटिसी थारी, खोटी तर्क सुनाय।
ज्ञान गाठि को खोयसी थारै, मिथ्या ज्ञान थपाय ॥ १ ॥
सजम व्रत थारा सीथल होयगा मिथ्या रीति रचाय,
कुगुरु कुदेव उपासना करि, कुगति परोगे जाय।
काज सुधारो आपनो साधरमिन सग रहाय।
विसन पाप मिथ्यात तजि यू 'पारस' सिव दरसाय।

(३७२)

सुभ गति नर भव की भारी,
सुरपति चहै पाय कव सिव ह्वै सो तैनै धारी ॥ टेक ॥
वालपणू बेलन मैं खोयो, भयो अघ सचारी।
ज्वान पणे मैं काम सतायो, नगिनी थारो म्हारी।
मध वय मैं ग्रहभार- वह्यो, परणी तृष्णा नारी।
वृद्धपणै अग सिथल बुद्धि वल रोगनि तै ख्वारी।
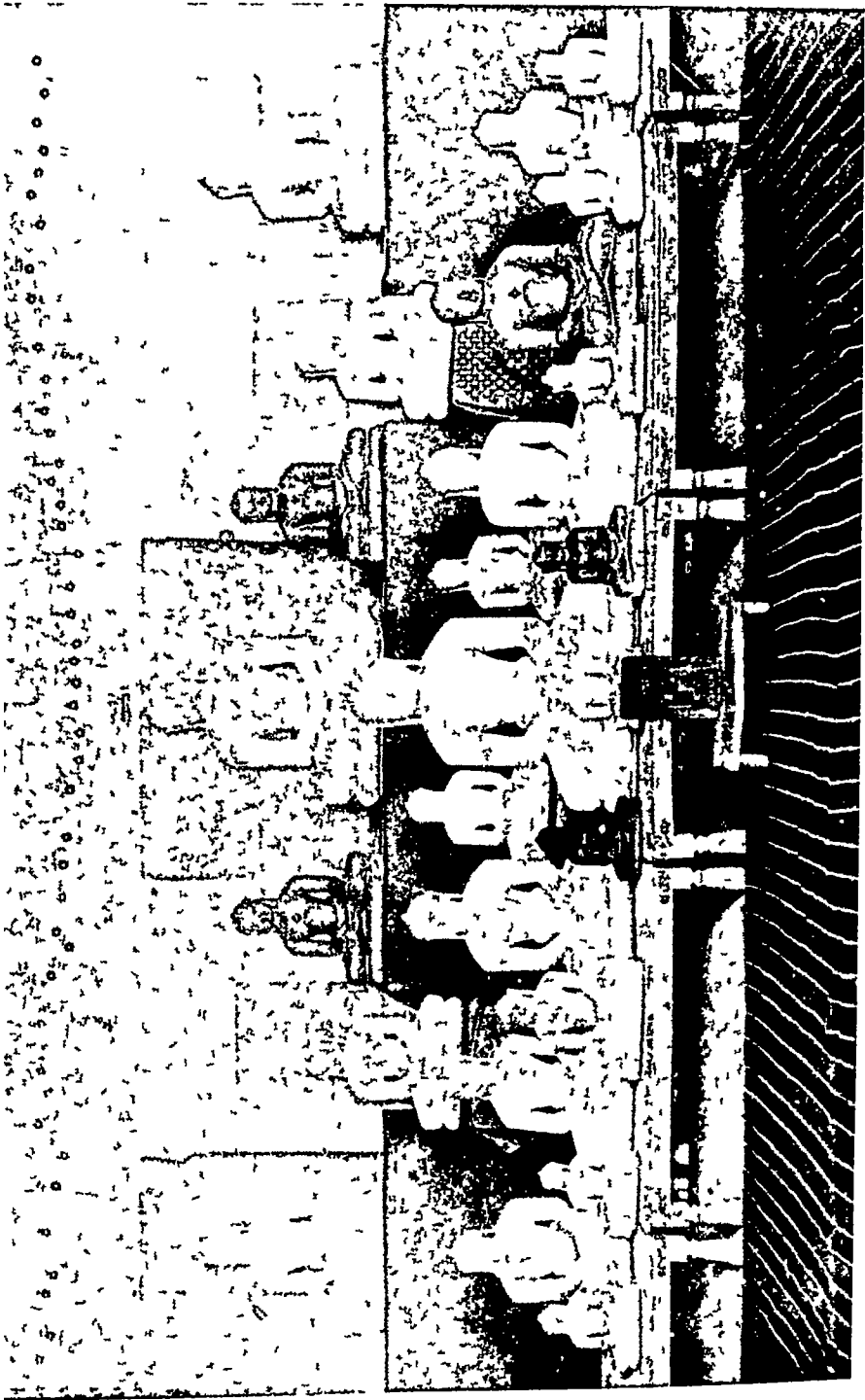
टोक मे भूगर्भ से प्राप्त २६ तीर्थङ्कर प्रतिमाये

यू पन षोय जाय दुरगति ये मूढन की त्यारी।
ज्ञानवत की रीति सुनो अव सो तारनहारी।
वालपर्णं विद्या अभ्यासैं, जोवन तपचारी।
मध वय श्रुत सन्यास अत 'पारस' वरै सिवप्यारी।

(३७३)

मत लखियो नारि विरानी रै,
या तौ विष की छुरी समानी रै ।।टेक।।
छुरी तो अग कै छिप्या प्राण ले, याकू लषत मरत जग प्रानी रै।
आगम अनुभव प्रगटानी।
रावण आदिक सुने शास्त्र मैं, लखत भये विषपानी रै,
या तै हो गये नरक स्थानी।
'पारस' दुरलभ नरगति गानी, याहि तज्या सफलानी रै।
पावो पचम गति रानी।

पद चौबीसी*

राग काफी

(१)

अजित जिनेस[1] अजित करि मोय।
नृप जित शत्रुक[2] वर तृभुवनपति ।।टेक।।
तुम बसु[3] कर्म विनासि जगत मैं प्रगट्यो[4] कोवु नहिं जीतै तोय।

---

*भगवान ऋषभदेव, पार्श्वनाथ और महावीर तीन तीर्थंकरो से सम्बन्धित पद क्रमश क्रमसख्या ८७, २६ एव १०३ पर उल्लिखित किए जा चुके हैं।

राग द्वेष हत सब[५] कुदेव लषि, क्रोध करि लुटि गये सोय।
वीतराग सर्वज्ञ[६] अजित तुम, 'पारस' पूजें सका षोय।

राग झंझोटी

(२)

सभव जिनपद प्रसाद सम्यक भव होयो ।।टेक।।
आन देव सेये तै हित न सध्यो क्यो यी।
ज्ञान गयो गाठि को कुजोनि[१] भ्रम्यो योयी।
अब[२] जिन बचन[३] श्रवन पाय पर परणति षोयी।
पारस' निज परणति गही,[४] चनमूरति[५] जोयी।

राग काफी

(३)

अभिनंदन पद मैं चित दीनो।
जनम[१] होत तिहुँ जग आनद्यो, ता तै नाम अभिनदन कीनो।
जा प्रसाद निज आतम चीनो, आनद घन दुख[२] रहित प्रवीनो।
पारस अैसे देव सिरोमणि, पाय न रूचत आन सुर हीनो।

---

१ : १. प्रति 'अ'—जिनेश।
३ प्रति 'अ'—वसु।
५ प्रति 'अ'—सव।
२ प्रति 'अ'—सब्रुक।
४. प्रति 'अ'—पगटे।
६. प्रति 'अ'—सरवज्ञ।

२ . १ प्रति 'अ'—कुजोन।
३ प्रति 'अ'—वचन।
५. प्रति 'अ'—मूरति।
२. प्रति 'अ'—अव।
४. प्रति 'अ'—गहि।

३ : १ प्रति 'अ'—जन्म।
२ प्रति 'अ'—दुख।

राग विलावल

(४)

सुमतिनाथ को सुमरू नाम कुमति विनासक[1] सुमति प्रकासक।।टेक।।
इन्द्र[2] सुरेंद्र[3] नरेंद्र[4] नमित पद हित दरसावक जोतिर्धाम
वड़े[5] वडे[6] गणपति रिपि वदत[7] गावत ध्यावत आठू जाम।
जिनको मति ढिग सव[8] मतवारे, पारस त्यागे परपि निकाम।

राग धनाश्री

(५)

सुमरू[1] पदम प्रभ जिनराजं[2]।
लोकोतम लपमी के नायक लजि तृलोकपति लाजं।
समवश्रुति विचि तीन पीठ परि अतरीक जिन छाजं[3]।
कोटि भानु[4] करि जो नहिं विनसत, सो तम लषत[5] ही भाजं।
'पारस' अैसो लपि प्रभु अतिसय, अपनो साघो काज[6]।

---

४ १ प्रति 'अ'—विनाशक। २-४ प्रति 'अ न' इन्द, सुरेंद, नरेंद।
५-६. प्रति 'अ'—वडे, वडे। ७ प्रति 'अ'—वदित।
८ प्रति 'अ'—सव।

५ १ प्रति 'न'—टेक के प्रारम्भ मे 'मैं' अतिरिक्त।
२ प्रति 'अ'—जिनराज। ३ प्रति 'न'—साजं।
४ प्रति 'अ'—भान। ५. प्रति 'अ'—लखत।
६ प्रति 'अ'—कारज।

राग धनाश्री

(६)

श्री सुपास[1] जिनंद पूजो[2], सुप्रतिष्ठ नृप को नद ॥ टेक ॥
इक्ष्वाक कुल मैं चंद उगयो, पृथ्वीदे सुषकंद[3] ।
वाणारसी मैं भये उच्छव, नचत सुरपति वृद ।
बाजे[4] बजे तिहु लोक मैं, सुर कीयो[5] हरष अमंद ।
पाचू कल्याणक सुमरि, पारस मिटै भव दुष[6] दुंद ।

राग लावणी

(७)

चद जिन भवाताप मेटै,
या कारण सुर नर मुनि सव मिलि, चरण कमल भेटै ॥ टेक ॥
तीन लोक त्रिजयी[1] कोवु जाकै, पडि न सकै षेटै ।
अैसो मोह महातम जिनकै, आप भयो हेटै ।
अघ हम हरो अज्ञान तिमिर वहु, काल रह्यो पेटै ।
'पारस' वडो भाग्य जिन पाये, चद चरण सेटै ।

राग धनाश्री

(८)

भजि मन पुष्पदत जिन सायी ।
जा तै[1] शिव जाचै मुनिरायी[2] ॥ टेक ॥
जाकू चितवत मिटत भवातप, सात भाव हुलसायी ।

---

६ १ प्रति 'अ'—सुपार्श्व । २ प्रति 'अ'—सुमरो ।
३ प्रति 'अ'—सुखकुद । ४ प्रति 'अ'—वाजे ।
५. प्रति 'अ'—कियो । ६ प्रति 'अ'—दुख ।

७ : १ प्रति 'न'—विजइ ।

श्री सुग्रीवराय कुल द्योतक, पूजो मन वच[3] कायी।
पारस कूं सेवा फल दीजे, एक समाधि दरसायी[4]।

राग धनाश्री

(९)

श्री सीतल जिनचंद सोरपति सुनो हमारी अरज गरने की ॥ टेर ॥
भवातापे मिटि सीतलता मन तुम पद सुनि विन[1] नहिं वनने की।
तुमने सहाय पाय बहु सुरझे, तुम विन[1] शक्ति न विधि हनने की।
अब तुम भक्ति पाय नग डारचो, जो सब[2] सो न सक्ति भनन की।
'पारस' सीतलनाथ देव मम[3], हरियो व्यथा मरण जनने की।

राग लावणी

(१०)

श्रेय श्रेयांसनाथ देव[1], इंद, नरेंद, सुरेंद, गणेंद, फणेंद पाय सेवै ॥टेक॥
श्रेय कियो जनमन हो[2] जग में श्रेय नाम लेवै।
अन्य देव रागादिक वसि[3] सव[4] वध[5] उदय वेवै[6]।
उनके सेये श्रेय न मिलिहै, मूढ लोक ख्येवै।
'पारस' पाय श्रेय जिनवर भजि त्यागि सकल एवै[7]।

---

८ · १ प्रति 'अ'—मे। २ प्रति 'अ'—गुनि गाई।
३ प्रति 'अ'—वच। ४. प्रति 'अ'—दरसावी।
९ १ ३ प्रति 'अ'—विन। २ प्रति 'अ'—वतने की।
४ प्रति 'अ'—सुस। ५ प्रति 'अ'—ममै।
१० १ प्रति 'अ' में देवै से पहले 'नाथ' शब्द का अतिरिक्त प्रयोग। २. प्रति 'अ'—हि।
३-५ प्रति 'अ'—वसि, सव, वध।
६ प्रति 'अ'—वेवै। ७ प्रति अ'—एव।

लावणी

(११)

ध्यान धरि बासुपूज्य[1] जिन को।
तीन लोक तिहु काल माय नहिं तारक इन बिन[2] को।
हरिहरादि मद[3] भाजि लोकजयी, मदन नस्यो तिनको।
सुष[4] अनत गुण षानि जानि जस, गान करो विनको ।। १ ।।
गणधर से गुण कहत थके, पायो न अन्त गुण को।
गुण लषि धारि ईरषा मानू, दोष तजे इनको ।। २ ।।
नृप वसुपूज्य कुमार मारजित सुमरण इक छिन को।
शिव सुषदायक[5] 'पारस' जाचत ध्यावत[6] उस दिन को।

विहाग

(१२)

विमल जिनेश्वर पूजिया[1] निरमल[2] पद धारो ।। टेक ।।
निर्मल गुण करि जुक्त है, वसुविधि मल टारो।
ध्याया[3] बसु[4] बिधि[5] मल हरै, ह्वै निज सुष सारो।
जो निज भाव बिसुद्ध सो गत राग निहारो।
रागादिक जुत मलिन सो, किम लागै प्यारो।

---

११ १ प्रति 'अ'—वासुपुज्य ।
२. प्रति 'अ'—विन ।
३ प्रति 'अ'—प्रद ।
४ प्रति 'अ'—सुख ।
५ प्रति 'अ'—सुखदायक ।
६ प्रति 'अ' में ध्यावत शब्द का अभाव ।

विमल विमल गुण देय है, करि ध्यान प्रचारो।
'पारस' पाय विमल प्रभू मिथ्या मल झारो।

राग काफी

(१३)

अनत जिनेस भजो मन मेरे ॥ टेक ॥
अनत नाम इनही प्रभु पायो पूजत सुरनर जो मन मेरे ॥ १ ॥
अनत ज्ञान सुष वीरज जाकै, उत्तम गुणमय जो।
'पारस' सार्थवाह शिवपुर को, इनै भजि आन तजो।

(१४)

जनमे धर्मनाथ जिनद।
भानु नृप सुप्रभा माता, कुल गगन मधि चद ॥ टेक ॥
धर्म धर्म षट मत रटत पै[1], न काटिहै भवफद।
भव फद पद निकद समरथ वृप कह्यो जिनचद।
धर्मनाथ जिनेद ध्यावत, कटत है भव दुद।
पार्स[2] पच कल्याण मायी, नमैं तृजगत इद।

---

१२ · १. प्रति 'अ'—पूजिया। २ प्रनि 'अ'—निर्मल।
३ प्रनि 'अ'—ध्याया। ४,५. प्रनि 'अ'—तनु, विधि।
६ प्रति 'अ'—नुरा।

१४ · १ प्रति 'अ'—नै। २. प्रनि 'अ'— पार्श्व।

राग काफी

(१५)

मेटो साति[1] जिनेस जी भवदाह ज्वर कू , परकृत उपजी ।। टेक ।।
पच विषय आमासय सेती, तप संजम नहिं ल्हेस जी ।
वाही प्यास वधि रही मेटो ।
तुम ही वैद्य सिरोमणि जग मैं तपति हरो निरसेस ।
'पारसदास' की अरज ये ही है, कुरु मम हृदय प्रवेस,
नहि वैदन कौ वस मेटो ।।

राग काफी

(१६)

धर्म सुनायो साचो कुंथु[1] जिनेस ।।टेक।।
नय निश्चय व्यवहार भेद करि, तत्व बतायो[2] वेस ।
कोटि ग्रंथ को सार एक है, दृढ चरिये उपदेस[3] ।
पारस अंदर निकसायता वाहिर दया प्रबेस[4] ।

(१७)

श्री अरनाथ देव भजिये ।
अन्य सदोस कुज्ञान विमोहित, मन बच तन तजिये ।

---

१५ . १ प्रति 'अ'—शान्ति ।

१६ · १ प्रति 'अ'—कुंथ । २ प्रति 'अ'—वतायो ।
२ प्रति 'अ'—उपदेश । ४ प्रति 'अ'—प्रवेश ।

क्षुधा[1] तृष्णादि दोस[2] करि, दूसित स्वपर भेद रहिये।
तिन के सेयें दुप[3] किम विनसै, चहु[4] गति मैं भमिये।
दोष रहित सरवज्ञ जिनोत्तम, हित लषि[5] अनुसरिये।
'पारस' पावो अविनासी[6] सुप स्वर्ग मुक्ति चल्यिये।

राग पट्

(१८)

मल्लिनाथ पद भजि मन मेरा।
सवही काज सरै ज्यू तेरा ।।टेक।।
मेटै सकल अज्ञान अंधेरा।
काम मतंगज हरि सम हेरा।
सक्ति भक्ति जुत रहिये नेरा।
ज्यू होवै भव भ्रमण न मेरा।
'पारस' तप संजम न वनै[1] तो[2],
श्री जिन भक्ति मिटाय देगो फेरा।

राग काफी

(१९)

पूजो भवि मुनि सुव्रत जिन कू ।।टेक।।
राय सुमित्र मात सोमा घर तृभुवनपति उपजे है तिनकू।

---

१७ : १ प्रति 'अ' एव 'न'—त्रुटित। २. प्रति 'अ—दोष।
३ प्रति 'अ'—दुःख। ४ प्रति 'अ'—चउ।
५ प्रति 'अ'—लखि। ६ प्रति 'अ'—अविनासी।
१८ : १ प्रति 'त'—बनै। २. प्रति 'अ'—तो।

जिन प्रसाद मुनि जन व्रत धारे, मुक्ति मिली वसु विधि हरि विनकू।
जो भवि श्रावक धरंत देस[1] व्रत, वसि करि कै इंद्रिय अरु मन कू।
'पारस' सो ही सुरपति होवै, क्रम तैं पावत है निज धन कू।

राग बिलावल

(२०)

श्री नमिनाथ जिनेश्वर पाय, सुमर्‌या काज सिद्ध होय मेरो ।।टेक।।
रागी देव अनेक बंदिये, तिन तैं कछु भी सर्‌यो न उपाय।
राग तैं बंध[1] बंध तैं संसृति[2], वीतरागता मुक्ति सधाय।
'पारस' बीतराग प्रभु नमि भजि[3], ज्यू होवै निश्चं शिवराय।

राग सोरठ

(२१)

राणी रजमति रा भरतार नेमजी, त्यार्‌यां[1] ही सरै।
थारा वेर वेर गुण गावा जिनजी०[2] ।।टेक।।
सेवा नदन जिनराज सावरा तुम विन करुणा कौन करै।
वसु विधि मेरै असे कीजे, फेरन ज्ञान हरै।
तुम विन दुर्गति दुष मैं भोगे, सो अब[3] क्यौं न टरै।
तुमरो नाम सुनत पर सेती पशु[4] प्राणी उधरै।
'पारस' दृढ श्रद्धा धरि भजिहै[5] क्यू नहिं मुक्ति वरै।

---

१९ १ प्रति 'अ'—देश।

२० १ प्रति 'अ'—वध। २. प्रति 'अ'—सश्रृत।
३ प्रति 'अ'—भनि।

२१ १. प्रति 'अ'—त्यांरिया। २ प्रति 'अ'—सावरा।
३ प्रति 'अ'—अंव। ४ प्रति 'अ'—पसु।
५ प्रति 'न'—भजि तोकूं।

उगनीस पद

राग आसावरी

(१)

सम्यक दर्शन शुद्धता शिव की दातार ॥टेक॥
याही तै पावै सही निज ब्रह्म विचार।
या विन पर परणति भयो भरमे ससार ॥१॥
कारो नागनि समान है, सव विषय विकार।
ताप बुझावण मेघ है, आताप निवार ॥२॥
सकादिक मल त्यागि कै, धरिल्यो अविकार।
भक्ति[1] मुक्ति दाता रहै, तृभुवन मैं सार ॥३॥
अनत काल या विना भ्रमे, च्यारू कुगति मझार।
'पारस' पचम गति करै, सायो निरधार ॥४॥

राग जंगलो

(२)

विनय धर्म सुभ भावना विन आतम हित नहिं चीना रै ॥टेक॥
परकर्मनि तै जग माही फसि, उत्तम तै भयो हीना रे।
दर्शन ज्ञान चारित उद्धारक, इनका विनय न कीना रै।
तन धन सुत दारा सग रचि कै, हुवा आप मलीना रै।
मान अग्नि तै मति जलि जोयरा, विन या रस मृत रस पीना रै।
'पारस' विनय धर्‍या अति सोहै, ज्यो सुवरण मै मीना रै।

---

१ · १ प्रति 'अ' – भुक्ति।

२ १ प्रति 'अ'—तद्धारक।

राग आसावरी

(३)

निरती चार शील व्रत धारि, च्यारि प्रकारी तजि कै नारि।
या कू जो धरै सोई, चउगति तजि शिव तिय वरै।।टेक।।
तप व्रत सयम को यो जीव, है अविनासी सुख की नीव।
मन वच तन उपदेस न देय, लखि कुसील सुसग हरेय।
'पारस' तीन लोक मै सार, कुछ भी नाय शील उनिहार।
वाल वृद्धि तरुणी तिय जेम, पुत्री मात वहण लखि तेम।
सील प्रताप नमैं पद देव सक्री[1] चक्री करिहै सेव।

राग आसावरी

(४

ज्ञान[1] विना भरमाया रै अज्ञानी ज्ञान ।।टेक।।
या विन परिवर्तन हू निज पर भेद न आया।
चारित हू विन ज्ञान निरर्थक, यू सतगुर फुरमाया रै।
दोवू लोक सुचि याही तै होय, या विन वहु दुख पाया।
ज्ञानोपयोग निरतर धरिये, याकू सुर सिर नाया रै।
या मैं तन धन छीजे नायी, सुख की खानि वताया।
है जग पूज्य मुक्ति को दाता, ध्यायें मन उमगाया रै।
ज्ञान वृद्ध सव ही तैं उत्तम, या विन सव अकुलाया।
'पारस' सम्यक ज्ञान रचे नर, तिन कू सत सराया रै।

---

३ : १ प्रति 'अ'—चक्री।

४ : १. प्रति 'अ'—ज्ञानी।

राग आसावरी

(५)

श्री सवेग भावना सार। आत्मीक सुख की दातार।
याकू जो धरै सो ही, अविनासी सुख अनुसरै ।।टेक।।
देह भोग ससार असार, इम जानो सवेग विचार।
दश विध धर्म तथा फल सार। इनके भेदाभेद विचार।
पर कू तजि निज तत्व प्रचार। 'पारस' धार्या ह्वै सिरदार।

राग गुझाभ

(६)

सक्तितस्तप दृढ भावना अवधारो रे भाई ।।टेक।।
विषय कषाय मैल कू जारो, करि उज्जलता मायी।
तप ही अगिन जरावै असुभ सब, या विन नहिं उजरायी।
देव नरक पसु गति मैं नाही, सो या नर भव मायी।
'पारस' सक्ति सम्हारि धारि तप, चूक्या फिर पछितायी।

राग आसावरी

(७)

साधु समाधि ध्यान को नाम, या विन वहु भरमे ससार।
याकू जो धरै सोही जनम मरण दुख कू टरै ।।टेक।।
तीन जगत गुरु तै जहा प्रीति, उत्तम जन की याही रीति।

क्लेश नाय जिन चरण विचार, षरच असुभ क्षय है निरधार।
एक महूरत मनवा ध्याय[1] सिव सुख फल ह्वै आगम साखि।
'पारस' नीके करो विचार, कछु नहि कष्ट समाधि मझार।

राग दादरो

(८)

मूरख मन विषया रो लोभी वैयावृत्य नहिं चीना रे।।टेक।।
सकित निकाच्छित या मैं, निर्विचकित्स प्रवीना रे।
उपगूहन थितिकरण वत्सता, या मे सब गुण वीना रे।
सुत दारा ग्रह की तजि सेवा, भव भव मैं वहु कीना रे।
रत्नत्रय धारक नहिं सेये, याही तै भये हीना रे।
वैयावृत्य करण जग दुल्लभ, धारे विधि होय छीना रे।
'पारस' याहि धर्‍या अति सोहै, भूप मुकट सिर दीना रे।

राग विलावल

(९)

श्री अरहंत भक्ति एक सार, या मानुष भव रतन दीप मैं।।टेक।।
पाप विनासै पुण्य प्रकासै, भवसागर तै करत उधार।
नाम मात्र रुचि तै सुनि उधरे, कथा लिषी है पुराण मझार।
'पारस' भक्ति धरै ते होहै, निश्चै मुक्ति तृया भरतार।

---

७ १. प्रति 'अ'—त्रुटित।

राग विलावल

(१०)

श्री आचार्य भक्ति मैं भाव कवु नहिं कीनो अव करि भायी ।।टेक।।
एक वार मन वच तन कीया, फेर न भ्रमैं निठ मिल्यो दाव।
श्री आचार्य प्रत्यक्ष न दीसै, तो धरि उनके वन मै चाव।
आचारिज गुण कोन कहि सके, वेगहि करै मुक्ति को राव।
'पारस' जग मै आचारिज वच, विन को करतो कुगति वचाव।

(११)

भक्ति चहू सुखदायी ।।टेक।।
मिथ्या अलट मिटावण कारण सरधा दिव्य कराई।
स्वपर तत्व देव गुरु आगम, मिथ्या सत दे लषाई।
'पारस' इक वहुश्रुती भक्तिमय, हूज्यो मन वच काई।

राग झंझोटी

(१२)

प्रवचन भक्ति सम्हारि रै सुज्ञानीड़ा रै।
या तै सकल पदार्थ पिछानै, होवै स्वपर विचार रै।
या विन उरझि सुरझि किम भासै, या विन होत विगार रै।
'पारस' प्रवचन दीप दिखावै, सूघो शिव घर द्वार रै।

राग विलावल

(१३)

आवश्यक परिहाणिन की इन मैं हाणि हुवा तुम हारे ॥टेक॥

जप तप सजम ज्ञान सील व्रत, इन ही के सब साधन चीन।

मूल हरे सब हरे जानि कै, इन मे रहो निरंतर लीन।

'पारस' सधै साध्य इन ही तै याय[१] सध्या जानो परवीन।

राग आसावरी

(१४)

धनि जिनमार्ग प्रभावना जे धरै सुज्ञान ॥टेक॥

समतभद्र स्वामी भये, अकलक प्रधान।

कुदकुद इत्यादि के, सुचि वचन प्रमान।

सेठ सुदर्शन जू भये, धार्‌यो सील महान।

औसै ही दृढ धारिये तप व्रत श्रुतदान।

सात विसन तजि दीजिये, फुनि पाप कुज्ञान।

निंद्य काज नहिं कीजिये, जिनमत सुचि मान।

जै विधि जिन मारग दिपै, सो करो सुजान।

'पारस' जिनमत धारि कै, रहिये अमलान।

---

१३ . १ प्रति 'अ' – त्रुटित।

राग विलावल

(१५)

प्रवचन वत्सलता अवधारि, भव भव सुत दारा संगि राचे ।।टेक।।
प्रवचन जिन आगम कूं कहिये, याही तें ह्वै दुख निवार।
अति दुल्लभ जिन आगम पायो, पाय न रापि प्रमाद लगार।
स्व पर तत्व निश्चै करि 'पारस' फेर कब मिलै शिव दातार।

(१६)

उत्तम पिमा धर्म है सार, तृभुवन के सुख को दातार।
याकूं जो धरै सो ही निश्चै शिव नारी वरै ।।टेक।।
क्रोध उपाधि कहै दुखकार, याहि तज्या सुख होत अपार।
समरथ होय करै न कसाय तिनकै उत्तम पिमा विचार।
आतम रूप पिमा है सार, 'पारस' भजि ल्यो तजो विकार।

राग गुभाभ

(१७)

मार्दव धर्म गहौ, सुनो सुज्ञानी जीया ।।टेक।।
आठू मद ज्ञानी न करत है मिथ्या जानि जहौ।
कामदेव चक्री हरि हलधर, कोवू थिर न रहो।
सब सजोग वियोग सहित लखि, पर कूं काय चहौ।
'पारस' मान करै ते भोरे आप मैं आप रहौ।

राग गुभाभ

(१८)

आर्जव धर्म गहौ, अजि हो सुज्ञानी जीया ।।टेक।।
मन मैं जैसो चितवन करिहौ सोही पर कू कहो ।
जो कह्यो सो ही कारिज भलि, आर्जव भाव रहो ।
मात तात मत्री सुत भ्राता, सेवक स्वामी वहौ ।
मायावान कू कालो भाषत, ताय तज्या विसास वहौ ।
तिरजच गति को वध करत है, मायाचार जहौ ।
'पारस' या जुत मुनि पद निंदित याहि तज्या सू सुगति लहौ ।

राग गुभाभ

(१९)

बोलो जी सुज्ञानी जीया, सत्य वचन सुखदाय ।।टेक।।
सुरनर मुनि श्रुत सत्य सराहत, सत्य ही सुभगति दाय ।
झूठ तैं वसु नृप सिंहासण भरि, दुर्गति मांय पराय ।
मित्र कलत्र स्वामी सुत बाधव, सत्य विना अकुलात ।
आपहु पर तैं सत्य चहत निति, सव ही जन कू सुहाय ।
या के बोले दोष मिटे नृप, सब विसवास कराय ।
या तैं सर्प माल विष अमृत, सत्रु मित्र हो जांय ।
नर देही मैं सार सत्य इक, सुर नर तांय न माय ।
'पारस' वचन विगारत तिनके, दोऊ लोक नसाय ।

राग गुभाभ

(२०)

समभि गह् ज   शौच कह्यो जिनराय ।।टेक।।
धर्म ही उज्जल पाप मलिन है भाषी पट्मत माहि ।
धर्म को लच्चण दया कहत सब, हिसा कोवू न सराय ।
जल ही तै उज्जलता मानत, ते नर मूरिखराय ।
जल नहि सपरस करत जीव कू, कैसे सोघित ताय ।
जाकू जल परसत सो देही, सब कू मलिन कराय ।
सो कैसे सुचि मलिन होत पनि, जल तै पाप बनाय ।
जप तप ज्ञान घ्यान सजम यम, समभि गहे मुनिराय ।
'पारस' पाप मैल घोय सुचि हो, साचो यो ही है उपाय ।

राग आसावरी

(२१)

सजम घरहु सुजाण थे सो दुविघ प्रकार ।।टेक।।
पचेंद्रिय वसि कीजिये तजि चित्त विकार ।
छवू काय प्राण्या तणी, करुणा उर धारि ।
देव नरक पशु गति विषै, धरि सके न लगार ।
सो या नर भव मैं मिल्यो, धरि सुभ आचार ।
पहर महूरत मास को, धरि कै जु विचार ।
'पारस' गहो प्रमाद तजि पावो शिव सार ।

राग आसावरी

(२२)

उत्तम तप धरि जीवरा शिव को दातार ।।टेक।।
सक्ति न लघि छिपायिये, द्वादश परकार।
तिहु गति मैं न मिल्यो कवो, निठ मिल्यो न अवार।
सर्व थको न वनै कबो, धरि देश विचार।
परपराय शिव सौख्य ह्वै, भाषी श्रुत सार।

राग विलावल

(२३)

जिन कै भव तिथि अत भयी, ते उत्तम त्याग धरै तजि राग ।।टेक।।
अंतर बाह्य परिग्रह तजि कै नासै वसुविधि अष्ट विभाग।
पर परणति तजि निज परणति गहि, स्वस्वरूप मैं राचै जाग।
'पारस' सो पद कब मम मिलिहै, तब ही हम होहै बड भाग।

राग विलावल

(२४)

पर परणति तै बहु दुख भोगे, आकिन्चन्य धर्म दृढ धारि ।।टेक।।
तू उपयोग रूप चिनमूरति, पर सजोग सकल दुखकार।
निज परणति मैं अतीन्द्रिय सुख ह्वै, ता सुष हू को नहिं पार।
जब लो निज सरूप नहि जान्यो, तवलू व्रथा भ्रमे ससार।
'पारस' सुगुरु प्रसाद लख्यो प्रभु, घट मैं कोन भ्रमै पर द्वार।

राग गुभाभ

(२५)

ब्रह्मचर्य वहु मोल्य रतन सगि वारो रै भाई ।।टेक।।
नर भव रतन दोप है या मैं, या सगि दूजो नाई।
महाभाग्य कै ग्रहण होत यह, तुछ पुण्य न लखायी।
सेठ सुदर्शन सीता सोमा, या तै महिमा पाई।
नरपति सुरपति पूजित पद होय, क्रम तै शिवपुर जाई।
तीन खड को राजा रावण, या विन कुगति भ्रमाई।
मत्र जप ज्ञान ध्यान सुचि, याही तै श्रुत गाई।
याकी महिमा कोटि जीभ करि, कहि न सकै सुररायी।
दोफ लोक सुधारण कारण, 'पारस' जाचत याही।

राग आसावरी

(२६)

रत्नत्रय सम है नाहि जीव को हितकार ।।टेक।।
धनि वनिता सगि राचि कै, वूडे मझधार।
रत्नत्रय समझे नहि, जातै भ्रमे अपार।
तीनलोक तिहुकाल मैं, या समान नहि सार।
या विन तिरे न तिर सकै, यो ही तारनहार।
या की महिमा को कहै, भव हर सुखकार।
तीर्थंकर भी या विना, सीझे न लगार।
'पारस' भव निधि नाशिहै, शिव को दातार।
दृढ रत्नत्रय धारिये, त्यागो अन्य विकार।

जंत्र को राग

(२७)

षोडस कारण जत्र कू पूजो तिरकाल ।।टेक।।
एक एक भावना विषै, चित धरि अविकार।
अष्ट दूजा गिणि दीजिये, सुचि अर्घ सुधार।
णमो णमो जयमाल कू, पढते मुख द्वार।
मधुर वजावत गावते, पर दिषण त्रिवार।
कनक रकावी धारि कै, वैभव अनुसार।
'पारस' पूजै व्रत धरै, ते ह्वै सिरदार।

अष्टपद्यां

(१)

साधर्मी[1] सतसग ही करिये सुखदाय ।।टेक।।
सव[2] सदेह मिटाय दे श्रद्धान[3] कराय।
सम्यक ज्ञान लहै[4] सही, शिव पथ पराय[5]।
सारत्रय नाटक बिनां,[6] किम ससय जाय।
इन ग्र'थिन[7] के अर्थ कू दे सुगम कराय।
बरष[8] वढे[9] न वडे कहे, गुण तै[10] जु कहाय।
गुण करि वडे सेयिये, भाषी जिनराय।
जिन तै आतम हित,[11] सधै[12] सो[13] गुण है भाय।
आतम काज करै नही, ते गुण अगुणाय।
दोस छुडावै जीव तै, फुनि गुण उपजाय।

आध्यातम बाच कहू साधरमा राय।
सकलकीर्ति भट्टारका, भाषी श्रुत माय।
वृद्ध सुसगत कीजिये, वहु गुण उपजाय।
इनकी महिमा कहन[१८] कू हम समरथ नाय।
मुक्तिमहल की नीव है, कछु ससय नाय।
'पारस' जाचत है सही, श्री तृभुवनराय।
मोकू सो[१५] निर्विघ्न द्यो, भव भव कै माय।

(२)

साधरमी सतसग ही कलि मैं एक सार।।टेक।।
नाहि अवै श्रुत केवली, नही केवल धार।
नाहि अवधि उपजै कही, इस क्षेत्र मझार।
सुनिये है दक्षण विषै, है सुगुरु प्रचार।
इस पेतर मैं नाय है, अज्ञान निवार।
ससय किन सै बूझिये, कोऊ दीसै न अवार।
साधरमी इक है सही, वहु श्रुत के धार।
इन ही तै पहचानि[१] ह्वै,[२] ये देव कुदेव।
सम्यक गुरू मिथ्या गुरू[३] फुनि धर्म विचार।

---

१ . १. प्रति 'अ'—साधरमी।
२ प्रति 'अ'—सव।
३ प्रति 'अ'—सरधान।
४ प्रति 'अ'—करै।
५ प्रति 'त'—पधू पराय।
६ प्रति 'अ'—विना।
७ प्रति 'अ'—अथन।
८ प्रति 'अ'—वरप।
९. प्रति 'अ'—वढे।
१० प्रति 'अ'—तै।
११. प्रति 'अ'—काज।
१२ प्रति 'अ'—सधै।
१३. प्रति 'अ'—ते।
१४ प्रति 'त'—करण।
१५. प्रति 'अ'—लोप।

जीव अजीव पदार्थ है द्रव[4] गुण परजय हार।
तिन मैं समझि कराय दे, इनको उपगार।
नय प्रमाण तै जानि कै, निश्चै व्यवहार।
कठिन ग्रंथ भाषा किये वाचो[5] बुद्धि[6] विसार[7]।
भेष धारि कपटी घणे, है विषय विकार।
वीतरागता नाय है, तिनकै जुलगार।
मिथ्या गुरु वहकायिये, भरमे जु अपार।
'पारस' इन हो तै मिट्यो, अज्ञान विकार।

(३)

वचन[1] गहौ अनगार के इन ही मै सार ॥टेक॥
विषय[2] कषाय तजै नही जिनकै न आचार।
तिनके वचन[3] प्रमाण तैं, बूडे[4] मझधार ॥१॥
जिन मदिर मैं मेलि कै, पूजै विटपार।
मिथ्या देव थपाय कै, अैसी मति ग्वार ॥२॥
दया धर्म मुख तै[5] रटै, नहिं दया लगार।
रात्रि विषै पूजा करै बहु, आरभ लार ॥३॥
सरद करै बत्या जुपै, पुष्पनि के द्वार।
कैसै दया सधो कहौ, पक्षपात निवार ॥४॥
जनम[6] मरण पाये घणे, तिनको नहिं पार।
मिथ्या भेषी वहु मिले न मिले अनगार ॥५॥

---

२ : १ २ प्रति 'अ'—पहिचानिये। ३ प्रति 'अ'—गुरू।
४. प्रति 'त'—लोप। ५ ७ प्रति 'अ'—वाचो, वुद्धि, विसार

कहु न मिली सुभ देसना, सुख की आधार।
धन्य भाग अब ही भयो, मिलिये श्रुत सार ॥६॥
हित अनहित समभ्या विना, भमिये जु अपार।
निश्चै सो समझावसी श्रुत ही आधार ॥७॥
जग मदिर मैं जोति इक, बीतराग[7] वच[8] सार।
'पारस' इन ही कू चहै, शिव के दातार ॥८॥

गोपीचंद की ढाल मैं

(४)

अरै सुज्ञानी उडता तौ दीसै बादल धूम्र का।
तैसैं जगवासी रह्या न दीसै रै जमी परि कोई ॥१॥
अरे सुज्ञानी कचन काया थारी सुधारि लै,
विषया[1] मे मति जाय।
फिर यो अवसर रै कबहु[2] नहिं होई जी ॥२॥
अरे सुज्ञानी भरत[3] सरी[4] सा नरपति चलि गये,
पृथ्वी का भोगी थिर न रह्या छै रै तू किम सोयी जी ॥३॥
अरे सुज्ञानी या काया को गरभ न कीजिये, निज कारिज करि लै,
जल वलि[5] होयगी,[6] षेह कहा तै धोयी जी० ॥४॥
अरे सुज्ञानी सुख सपति तौ थारो रूप है,
पर मैं क्यू बहक्यो पर बसि होय कै रै,
निज सपति षोयी जी ॥५॥

---

३ · १.३ प्रति 'अ'—वचन।
२ प्रति 'अ'—विषय।
४. प्रति 'अ'—बूडे।
५ प्रति 'अ'—तै।
६ प्रति 'अ'—जन्म।
७ ८. प्रति 'अ'—वीतराग, वच।

अरे सुज्ञानी मरण किया तैं बार अनंत ही,[7]
न समाधि कियो छै,
समाधि को अब रे अवसर योयी जी ॥६॥
अरे सुज्ञानी सुरपति चाहै कारण मोक्ष[8] के, मानुष कब होवै,
अब तैं पायो रे सहज मैं सोयी जी ॥७॥
और सुज्ञानी आतम ध्यावो ध्यांन लगाय के, ध्यारू आराधो,
'पारस' या तैं ही संत शिव जोई[9] ॥८॥

---

४ · १ प्रति 'त'—विषयू । २. प्रति 'अ'—कबू ।
३. प्रति 'अ'—भरथं । ४ प्रति 'अ'—सिरो ।
५. प्रति 'अ'—वलि जले । ६ प्रति 'अ'—होगी ।
७ प्रति 'त'—अनही । ८. प्रति 'त'—मुक्ति ।
९ प्रति 'त'—मुक्ति अवलोई जी ।

—०—

पार्श्वदास पदावली

अनुक्रमणिका

क्रमांक	पद	पृष्ठांक
२०.	अधिक सुहावै मोकू वेशा ती छवियां	७४
२१.	अनुभव कीया सूँ जी पावै प्रभु परम	७४
२२	अरज सुनो जी महाराज, हो जी जिनराज	१२९
२३.	अरजी करहू सकास ठाडो जिनवर सै	१८०
२४.	अपना धरम धारिल्यो रै	१५३
२५.	अज्ञांनो कायी चालै लाग्यो रै	१५४
२६.	अज्ञांनी जोयो न मानै जी	१५१
२७	अविनाशी सुख कारण जीया क्यौं न सजै रै	१९०
२८,	अजित जिनेस अजित करि मोय	१९९
२९.	अभिनदन पद मै चित दीनो	२००
३०	अनत जिनेस भजो मन मेरे	२०५
३१.	अरै सुज्ञानी उड़ता तो दीसै बादल धूम्र का	२२३
३२.	अथिरता मानी धन जोवन की	१८४
३३.	अर हो विषया रा लोभी, हा रै हो माया रा लोभी	१५६
३४	अंतर दा पट षोलो जी जीया मोरा	६७

(आ)

३५	आदीश्वर तोहे पूजन आयो	२
३६.	आजि वीर जिन मुक्ति पधारे	१२
३७	आजि रो दिन रूडो छै	१५
३८.	आकिंचन धरम धरि भायी	२२
३९	आजि तो जन्मे श्री महावीर छत्रधारी	२९
४०	आयो नी मैं तैंडे मिदरवा	४२
४१	आदि जिनेस ऋषभ जिनेस राजि रो दरस प्यारो लागै छै	४९
४२	आतम कथा विना सब व्रथा	७२
४३.	आली मोरा जीया की न पीया सुनता गया	७५
४४	आजि बधायी अजोध्या नगर मैं	१२२
४५	आजि हम चेतना लषायी	१७१
४६	आर्जव धर्म गहौ अजि हो सुज्ञानी जोया	२१६

क्रमांक	पद	पृष्ठांक

क्रमाक	पद	पृष्ठाक

क्रमांक	पद	पृष्ठांक
११५	जिनवर पूजो रे भायो	८४
११६	जिन दरसन तैं अघ क्यो न कटै जो	९१
११७	जिनंद बिन कैसें कटै भव ततिया	९६
११८	जिनराज देव ही भावै	१०१
११९	जिन नाम कू सुमरि लै	१०५
१२०	जिनराज एक ही भजना	१०९
१२१	जिनराज विना दुष कोन हरै	११३
१२२.	जिन ध्यावो जी आजि	११४
१२३.	जिन जी का भजन करिये ज्ञानी	१२५
१२४.	जिन वानी मो मन भावै	१३०
१२५.	जिन दरसन तै मोह काप्यो	१४९
१२६.	जिनमत का सरधान कू ज्ञानी जन धारैं	१६२
१२७	जिनमत ना लह्यो रे	१६९
१२८.	जिनद जी थायी को दरसन नित चावू	१७२
१२९	जिन मदिर चलि सुभ उपजावै	१७९
१३०.	जिनमत कै मायी तीन लिंग वरनन कीया	१८७
१३१.	जिनमत मैं भेषी भया कलिजुग कै जोरें	१९४
१३२.	जिन कै भव तिथि अंत भयी	२१८
१३३.	जियरा रै जिन वानी कू रचाय लै	१५७
१३४.	जिया थे हिंसा त्यागो जो	१७५
१३५	जिया थे झूठ त्यागद्यो जी	१७५
१३६	जिया थे शील धारिल्यो जी	१७५
१३७	जिया थे सग त्यागद्यो जी	१७६
१३८	जियरा रै श्री गुर सीष सम्हारि	१३२
१३९	जियरा रै जिन वाणी उर धारि	१३३
१४०	जियरा रै जिन बाणी सुषदायनी	१३४
१४१	जी शिव रमणी रा प्यारा	१६७
१४२	जीयरा हमारा बिलमाया, मनवा हमारा बिलमाया	५६
१४३	जीया पुद्गल तै रति रति छोर रै	६८

क्रमांक	पद	पृष्ठांक
१४४.	जीया सीष सुगुरु दी मानि रै	७१
१४५	जीया तू दृग ज्ञान सयी रै	८६
१४६	जीया तू चेतता क्यू नहिं रै	६३
१४७	जीया काहे कू विसन मघ आयो छै	१११
१४८	जीवा जो थे जागो जी	१३५
१४६	जीव तोय शिव नारी परणावू रै	१८१
१५०	जीव सतसगति मैं रहना	१८६
१५१	जै जैन बानी जगत को तरानी	४
१५२	जो मैं रिझावू मेरे प्रभु कू	४०

(प)

क्रमांक	पद	पृष्ठांक
२२१.	प्यालो पीवो जी सुज्ञान रो	८३
२२२.	प्याला पिलाया वाणी ज्ञान का	१७८
२२३.	परमारथ जानि गही अध्यातम सैली	६
२२४.	पर कू क्यू अपनाया रे अज्ञानी	२०
२२५.	पर थिया करि कै भूलि	६६
२२६	पर नारी विष वेलि कू मति जोवै रे भायी	८७
२२७	पर परणति तै वहु दुख भोगे	२१८
२२८	पर मै कैसे रमू म्हारा चेतन का गुण जाय	१०८
२२९.	पारसनाथ सुनो बिनती मोरी	१२२
२३०	पिया सैं री जाय असै कहना	१३६
२३१.	पूजत जिनराज आज पाप मम पलायौ	१४५
२३२	पूजो भवि मुनि सुव्रत जिनकू	२०७

(ब)

२३३	बतिया रसीली सुषकार	१४७
२३४.	ब्रह्मचर्य बहुमोल्य रतन संगि धारो रे भाई	२१९
२३५	बात भली छै उर धारि लै	१६३
२३६	बिगत घी भव बन मघ मति जाय	६२
२३७	बीनती सुणो नाथ मोरी	१५३
२३८	बोलो जी सुज्ञानी जीया	२१६
२३९	बंदू जिन बानी परमानद निधानी	६५

(भ)

२४०	भक्ति चहू सुखदायी	२१३
२४१.	भजि मन पुष्पदंत जिन सायी	२०२
२४२	भजन इक मानुष भव को सार	१८६
२४३	भजि लै महावीर का सरना	१६४
२४४.	भजि मन श्री जिन श्री जिनदेव	३७
२४५.	भया तुम चोरी त्यागो जी	१४१

क्रमांक	पद	पृष्ठांक
२४६	भवि भाई धरि चाव जिनवाणी	१६४
२४७.	भाग्य उदै अब आया	३७
२४८.	झूठी ना कहौ रे झूठी ना कहौ रे	१०७
२४९	भोर भयो मन वच तन करि जिन चरणा चित ल्यावो	३
२५०	भोर भयो जिनराज देव भजि	७

(म)

२५१	म्हारै होरी वसी तन मन मैं	११९
२५२.	म्हे तो थारा चरण उपासी	४३
२५३.	म्हारै दिल वसिया जिनदवा	१००
२५४	म्हानै वीतराग री वाणी प्यारी लागै जी	१५७
२५५	मत पीवो नै दारूड़ी रे	९९
२५६	महारी सजनी आजि तौ चेतन घरि आसो	१७६
२५७	मद छकिया अजहू चेति रे	१९३
२५८	मत लखियो नारि विरानी रै	१९९
२५९	मल्लिनाथ पद भजि मन मेरा	२०७
२६०	मानो मानू जी पिया साजनवा मोरा हो	४८
२६१	मानि लै म्हारी कही रे	८८
२६२	मारी वसुविध कर्म कू यो ही दुख देहै	१८९
२६३	मार्दव धर्म गहौ सुनो सुज्ञानी जीया	२१५
२६४	मिला जी मोहे श्री जिनवर	१४४
२६५	मुनिवर वदन जावू	२४
२६६	मुनि भेस लिया तिन कू नुतिया	५६
२६७.	मुझै वैराग भावै जी	७८
२६८	मुनिवर वन मैं हरसै	१२७
२६९	मुक्तिवाला जिनवर जतिया	२६८
२७०	मूरख मन विषया रा लोभी	२१२
२७१	मेरी तौ लाज सव तुमरै हाति है	३१
२७२	मेरै ध्यान नाथ तुमरो	३६

क्रमांक	पद	पृष्ठांक
२७३.	मेरा मन लाग्या आजि जी	६३
२७४.	मेरै जिनराज देव और नाहिं कोयी	६७
२७५	मेटो साति जिनेस जी भवदाह ज्वर कू	२०६
२७६.	मैं ध्यावूं तोयैं सुचि वानी कू	१००
२७७	मैं तो कीनो यो निरधार सार मत जैन है	१८२
२७८	मोहे डगर बता सुषकारो हो	७५
२७९	मौसैं प्रीति प्रभूजी नैं तोरी	११३
२८०	मोकू नाथ दीजिये तेरापथ जिनचद	१२३
२८१	मोह तम ह्या से उडि जाना	१२३
२८२	मोह ठग मो सिर भुरकी डारी	१४८
२८३	मोहे ले चाल जहा रो मेरा वालमवा	१५०
२८४	मो माही मैं थावूगा	१९०
२८५	मोहनी मो पै टोना कीना हे	२३

(य)

२८६	या विधि निति सुमरि भव्य श्रावक सुभ किरिया	१३
२८७	या जीव को हित जिनवानी है	२६
२८८	या विधि सुमरो आतमराम	२७
२८९	या मन की गति रोको ना रुकै	२६९

(र)

२९०	रमि गही हो मो मनि श्री जिन वानि	१७३
२९१	रथन की अद्भुत महिमा वनी	४७
२९२	रजमति पति नेम के व दू पाय	१०२
२९३	रसिक छबीलो वाको तलवरियो होय	१४६
२९४.	रत्न त्रय सम है नाहिं जीव को हितकार	२१९
२९५	राम भजन विन धृक धृक जनम	८६
२९६	राजुल विचार करै मन मैं	१६०

(ल)

(व)

(श)

क्रमांक	पद	पृष्ठांक

क्रमाक	पद	पृष्ठाक

(स)

क्रमाङ्क	पद	पृष्ठांक
३७७	सुज्ञानी जीया हो पर घर कबु मत जाय रै	१८८
३७८.	सुद्ध रूप आनंद दा मेरा मनवा	१८६
३७९	सुज्ञानी जी कं अमुमन वंध परसी	१८८
३८०	सुनि तू जीया रं	१६८
३८१.	सुमरि सुमरि मन श्री नोकार	१७०
३८२.	सुज्ञानीडा रै गुरु दी सीप सम्हारि रै	१८५
३८३.	सुने हम वैन श्री गुर ज्ञानी सं	१२४
३८४.	सुनि जिया रै जिनवानी	१८१
३८५	सुनि जीया रं निज अवलोको	१९५
३८६	सुभ गति नर भव की भारी	१९८
३८७	सुमरुं पदम प्रभु जिनराजें	२०१
३८८	सुमतिनाथ को सुमरुं नाम	२०१
३८९	सुनो सुनो जिन जी कैसें कटं गति करमनि की	५५
३९०	सुमति कहै घर आवो पिया	६०
३९१	सुनि लै रे महरम तेरा जो हित दी वतियां	१२७
३९२	सुघर मनां गावो सव मिल	१३९
३९३	सो प्रभू विरले ही नर पावै	१२१
३९४.	सभव जिनपद प्रसाद सम्यक भव होयो	२००
३९५	सजम गहहु सुजाण थे	२१७

(ह)

३९६	हमारे अघ क्यू न हरो	९१
३९७	हा रै भायी समझि करो मन मायी	१५
६९८.	हा रे ज्ञानवारे जरा मेरी सुनते जय्यो	१९
३९९.	हा जो पर पुद्गल की कायी पतियारो	९५
४००.	हा जि शिव कामिनी नै राजि जादू कोता वे	९७
४०१	हा रै तोये वरजू वारू वार	१३०
४०२	हां रै जीया कुमति त्यागद्यो रे	१६१
४०३	हा रै हो सुज्ञानी जीवरा	१९८

क्रमांक	पद	पृष्ठांक
४०४	हेलो चिद प्रीतम कब ग्रह आसी	१८३
४०५	हे जी मोकू सुरति तिहारी	३८
४०६	हे तू सुणि सतगुर की सोष रै	८०
४०७	हे,काया तोये मुतलवनि जानी	१७४
४०८	हो ज्ञानी कैसे विसरि गये मतिया	१७
४०९	हो वैरनि कुमता तजि मो लार	२४
४१०	हो दुविध नयवारो म्हारो मन लियो मोहि	३०
४११	हो वराजोरी मोह मतिया मरोरी	५१
४१२	हो गुराजी हो म्हा का राजि	५३
४१३	हो जी जीव जी थानै काइ काइ कहि समझावा	७८
४१४.	हो ज्ञानी कैसे विसरि गये मतिया	९८
४१५.	होरी को षिलय्या श्याम मेरे द्वारै ही आयो	११३
४१६.	होरी,को षिलय्या चेतन घर आयो	११८
४१७	हो परमात्मा जिनंद	१७०
४१८	होरी षेलै सम्यकवान भव आताप मिटै	१७९
४१९	हो जिन स्वामी दरस मोय देना	१९१

(ज्ञ)

४२०.	ज्ञान सूर्योदय नाटक ग्रन्थ दरसावै शिवपुर को पथ	१९
४२१	ज्ञान री रीति निहारी	३८
४२२	ज्ञान थारो षोसि कै करि नाप्यो जड़ उनिहार	१८८
४२३.	ज्ञान विन भरमाया रै	२१०

पार्श्वदास पदावली मे प्रयुक्त
समस्त राग

१.	अडाणो	२.	अलय्या विलावल	३	आसावरी
४.	ईमन	५.	ईमन कल्याण	६.	कल्याण
७	काफी	८.	कानड़ो	९	कालिंगड़ो
१०.	केदार	११.	खट्	१२.	खमावच
१३.	गौड़	१४.	गौड़ी	१५.	चैती गौडी
१६.	जगलो	१७.	झझोटी	१८	टोडी
१९.	धनाश्री	२०.	धानी	२१.	परज
२२.	पूरिया	२३.	पूर्वी	२४	भीमपलासी
२५	भैरवी	२६.	भैरू	२७	भोपाली
२८.	मलार	२९	माढ	३०.	मालकोश
३१.	रामकली	३२	ललित	३३	वरवो
३४.	वसत	३५.	विभास	३६	विलावल
३७.	विहाग	३८.	सारग	३९.	सिन्दूर्यो
३०.	सोरठि	४१	सोहनी	४२.	हमीर

पार्श्वदास पदावली मे प्रयुक्त
राजस्थानी लोक धुनें

१	करहा	२	कलाली	३	गणगौरि
४	गोपीचद का ख्याल	५	गधीका	६	डूग जी झवार
७	नणदोई	८.	भागड़ली	९	मोर्‌या
१०	रातिजगा	.	राधा का बारहमास्या	१२	हीदा
१३	हूका				

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	स्थल	अशुद्धिया	शुद्धिया
१	पद १/पंक्ति ५	भक्तया	भक्त्या
३	५/१	चरणो	चरणा
७.	१२/७	विचारिसंज	बिचारि सग
७	१४/२	उर भेरा	उरभेरा
८, १५.	१५/४, २८/८२	प्रव्य, कायी	द्रव्य, का यी
१६, २१.	३५/१, ३६/६	अवघारी, हचि	अव धारो, रुचि
२१, ३०.	३६/७ ५५/१	अराजिका, नम	अरजिका, नय
३१	५५/४, ५६/७	छुडवाव किरण	छुडवावैं, कृपा
३३, ३५	५८/४. ६३/४	नारी, सभवशरण	भारी, समवशरण
४१.	७३/७	तासुघ्यात	तासु घ्यात
४४, ४५	७८/१०, ८०/३	प्रामना, संदेह	प्रमाना, सदेह
४६, ५१.	८२/१, ८६/१०	नया, सुति	भया, सुनि
५५, ६२.	९६/३, १११/८	जापि, सहयि	जपि, सहायी
६६, ७१	१२४/२, १२७/३	दुल्लभ, अघ	दुल्लभ, अघ
७८, ७९	१४२/३, १२	वघु, झठा	वघु, झूठा
८३	१४८/१, २	ह, ज, मिथ्यातम	हो, जु, मिथ्यातम
९२	१६३/१०	सारवान	सारवानै
१००, ११६	१७८/५, २११/२	काप, वाव	का पै, वावै
१३२, १३३	२३६/८, २३७/५	भोग, समभाव	भोगं, समभावै
१४०, १५४	२५०/१२, २७६/८	गुल, शव	गुण, शिव

१६२, १६६. २८६/१६, २६७/१	परभत, सुभता	परमत, सुमता
१७० ३०४/७, ३०६/५	जम, ब्यार	सजम, ब्वार
१८०, १८१. ३३०/१, ३३३/२	जिनमत, कुमारि	जिनमत, कुनारि
१८६. ३४८/१, ४, ३४५/२	गली, सु, पायो	कै गैली, सुधरे, पापी
१८७, १८८. ३४७/२, ३४८/४	ाष्यो, मिथ्यथा	भाष्यो, मिथ्या
१६१, २०२. ३५६/२, ८/१	विर, मजि	विन, भजि
२०७, २०८. १६/१, २०/४	नुनि, निश्यै,	मुनि, निश्चै
२०६, २१०. २/५, ३/४	रसमृत, सुसग	रसामृत, कुसग
२१०, २१६ ४/२, १६/४	हू वाघव	हू भुगते, वाघव
२१६, २२२. २५/६ २/१५,	दोफ़, जुलगार	दोऊ, जु लगार
६. टिप्पणी, पद १७/७	लषि तू	तू लषि
३७, टिप्पणी, पद ६५/८	कोष	षानि